वृक्ष-विज्ञान

लेखक-द्वय

श्री प्रवासीलाल वर्म्मा, मालवीय

कुमारी शान्ति वर्म्मा, मालवीय

प्रकाशक

हिन्दी-साहित्य-मंडल

बनारस सिटी

अपनी दो बातें

•

विद्वानों के पढ़ने-योग्य साहित्य का सृजन करना विद्वान् का काम है। मैं विद्वान् नहीं हूँ—हिन्दी का एक बहुत मामूली-सा सेवक हूँ। मेरा ख़याल, हमेशा साधारण पठित-समाज की सेवा करने की ओर ही रहता है, इसी ख़याल से मैंने अभी तक कई पुस्तकों का प्रणयन किया है। प्रस्तुत पुस्तक भी इसी विचार का फल है।

इस पुस्तक की उपयोगिता का ख़याल बहुत वर्षों पहले मुझे हुआ था। कदाचित् सन् १९१७ ई० की बात है। जिन दिनों मैं खानदेश में रहकर जैन-समाज के 'मुनि' नामक पत्र का सम्पादन और संचालन किया करता था, उन दिनों ऑफिस की लाइब्रेरी से कुछ वैद्यक ग्रन्थों—निघंटुओं—को पढ़ने का सुअवसर मिला था। सब ग्रन्थों में मुझे भारत के आयुर्वेद-महार्णव परमपूज्य स्व० श्रीशंकर-दाजी शास्त्री पदे का 'आर्य-भिषक्' नामक मराठी ग्रन्थ बहुत पसन्द आया। इस ग्रन्थ में वैद्यक-विषय की अन्य ज्ञातव्य और अनुभवपूर्ण बातों के सिवा वृक्ष और लता-पत्रों के प्रयोगों पर भी भर-पेट मसाला भरा है। इसी ग्रन्थ में वृक्षों का वर्णन पढ़ते-पढ़ते, वृक्षों के मूल-फूल-फल-पत्र आदि से अनेक रोगों को दूर करने के कई प्रयोगों की परीक्षा भी की। मैं भुसावल के पास 'बोदवड़' नामक एक छोटे-से कस्बे में रहता था, जो चारों ओर लता-पत्रों-वृक्षों खेतों और पहाड़ियों से घिरा हुआ है। वहाँ के अनेक परिचित जनों ने वृक्षों के अमृत-भरे प्रयोगों से असीम लाभ उठाया और अपनी

आशीर्वादात्मक प्रसन्नता से मुझे आनन्द-विभोर कर दिया। ठीक इन्हीं दिनों मुझे ख़याल हो गया कि बड़े-बड़े नगरों-शहरों में अनेक वैद्य-डाक्टर, हकीम रहते हैं; अतएव वहाँ के लोग तो उनकी सहायता से रोग-मुक्त हो जाते हैं; पर छोटे कस्बों और गाँवों में, जहाँ वैद्य, हकीम या डॉक्टर का नामोनिशान भी नहीं होता, ऐसे वृक्षों के प्रयोग बड़ा लाभ पहुँचा सकते हैं। क्यों न इस विषय की एक छोटी-सी पुस्तक का प्रणयन किया जाय और गाँव के गरीब तथा साधारण पढ़े-लिखे लोगों को लाभ पहुँचाया जाय? पर यह विचार वर्षों दबा पड़ा रहा, और किसी अन्य लेखक ने भी इधर ध्यान नहीं दिया। जब भारत के अनेक प्रान्तों का प्रवास करके, बड़ेभाग्य से, मैं काशी में निवास करने की गरज से आया और 'आरोग्य-मन्दिर' का निर्माण किया, तो इसका स्मरण आया, और 'आरोग्य-मन्दिर' की पुश्त पर स्व-निर्मित अनेक पुस्तकों में 'वृक्ष-विज्ञान' के नाम से इसका भी विज्ञापन कर दिया। आज मैं अपने को बड़ा भाग्यशाली समझता हूँ कि पुस्तक रूप में इसे आपके सामने पेश कर रहा हूँ। अगर उपयोगिता का ख़याल करके सहृदय और विज्ञ सज्जनों ने इसे अपनाया, पसन्द किया, तो आगे मैं इसका दूसरा भाग भी उनकी भेंट करूँगा, जिसमें सैकड़ों छोटे-छोटे पौदों और लता-पत्रों के उपयोगों का वर्णन होगा।

इस पुस्तक को मैंने स्वर्गीय शास्त्री महोदय प्रणीत 'आर्य-भिषक्' के गुजराती अनुवाद के आधार पर लिखा है। मैं वैद्य नहीं हूँ; इसलिए अनेक स्थानों पर मुझे बड़ी उलझन में पड़ जाना पड़ा और कई वैद्य मित्रों से साहाय्य लेना पड़ा, फिर भी बहुत संभव है, इसमें कुछ गलतियाँ

रह गई हों। कुछ ख़ास बातें तो मेरे ध्यान में भी थीं ; पर जल्दी के कारण मैं उनका उपयोग नहीं कर सका। कुछ ख़ास खामियों के रहते हुए भी इसके उपयोगों को—नुसख़ों को—बड़े ध्यान से सही करने की चेष्टा की गई है ; पर, मैं यह ज़ोर देकर नहीं कह सकता कि प्रयोगों में कहीं भ्रम नहीं हुआ होगा। इसके लिए मैं वैद्यक-ज्ञाताओं से निवेदन करूँगा कि अगर वे इसमें कोई ऐसी गलती पायें, तो अवश्य ही सूचना देने की कृपा करें ; ताकि मैं अगले संस्करण में उनको सुधार दूँ। अन्य पाठकों से भी मेरा निवेदन है कि यदि वे उपयोग करते समय किसी बात की जानकारी हासिल करें, या किसी वृक्ष के विशेष अनुभूत प्रयोग उन्हें मालूम हों, तो वे मुझे अवश्य लिख भेजने की दया करें ; ताकि मैं अगले संस्करण में उन्हें सन्निविष्ट कर दूँ।

इस पुस्तक के प्रणयन और प्रकाशन में मुझे परम आदरणीय कवि-कुल-केसरी लाला भगवानदीनजी, सुप्रसिद्ध कलाविद् और कवि श्रद्धेय राय कृष्णदासजी तथा हिन्दी के उद्भट लेखक—मेरे परम स्नेही—भाई शिवपूजनसहायजी ने बड़ा उत्साह दिलाया है ; अतएव मैं आपका अत्यन्त अनुगृहीत हूँ, और पुस्तक की भूमिका लिख देने के लिए, कानपुर के प्रतापी 'प्रताप' के जन्म-दाता, वैद्य शिरोमणि, श्रद्धास्पद स्नेही श्री० पं० शिव-नारायणजी मिश्र 'भिषग्रत्न' को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। अलम्।

सन्
१९२९ ई०

पन्नीलाल गौड़

द्वितीय संस्करण

०

आज 'वृक्ष-विज्ञान' का द्वितीय संस्करण हिन्दी-संसार के समक्ष उपस्थित किया जा रहा है। प्रसन्नता की बात है कि आशा से अधिक इसका आदर हुआ। देश के सुप्रसिद्ध आलोचक आचार्य श्रीद्विवेदीजी तथा अन्यान्य विद्वानों और पत्रों ने इसकी मुक्तकंठ से प्रशंसा की। कुछ वर्ष पूर्व, हिन्दी में सर्वश्रेष्ठ सौ पुस्तकों का चुनाव हुआ था, उसमें स्व० श्री सूर्यनाथ तकरू, एम० ए० तथा अन्यान्य सभी विद्वानों द्वारा, एक मत से सर्वश्रेष्ठ सौ पुस्तकों में चुने जाने का इसे गौरव प्राप्त हुआ। पुस्तक की उपादेयता का यह प्रोज्ज्वल प्रमाण है।

पहले संस्करण में जो भूलें रह गई थीं, उन्हें दूर करके, इस बार कई सौ उपयोग तथा अनेक नये वृक्षों का वर्णन बढ़ा दिया गया है। टाइप, पहले से छोटा कर देने पर भी लगभग ५० पृष्ठ इसमें और बढ़ गये। मैटर तो १०० पृष्ठ के लगभग बढ़ा है। पहले लगभग १००० उपयोग थे, अब १३०० हो गये हैं। उपयोग सूची को इस बार अकारादि क्रम से बना दिया गया है। अब किसी भी रोग का उपयोग आसानी से खोजा जा सकेगा। फिर भी यदि कोई कमी तथा अशुद्धि पाठकों की नजर में आये, तो अवश्य ही सूचित कर देने की कृपा करें।

काशी।

सन् १९३६ ई०

—प्रवासीलाल वर्म्मा, मालवीय

भूमिका

आयुर्वेद का निघंटु-भाग उतना विस्तृत और पूर्ण नहीं है, जितना इस शताब्दी के लोग उसे देखना चाहते हैं। हारीत-क्यादि निघंटु के बाद शालिग्राम-निघंटु-भूषण ही एक ऐसा निघंटु है, जिससे हमें काम चलाना पड़ता है। आयुर्वेद के इस अंग की कमी आयुर्वेद-महामंडल और वैद्य-सम्मेलन के आदि-प्रवर्तक प्रातःस्मरणीय आयुर्वेद-महोपाध्याय स्व० शंकर-दाजी शास्त्री पदे महोदय को भी खटकती रही थी। वे अपने मराठी तथा गुजराती के 'आर्यभिषक्' और हिन्दी के 'सद्वैद्य-कौस्तुभ' नामक वैद्यक पत्रों में बराबर इसकी पूर्त्ति के लिए प्रयत्न करते रहे थे। इस पुस्तक का मूल विषय स्वर्गीय शास्त्री पदे महोदय के उक्त पत्रों में निकले हुए अंश के आधार पर लिखा गया है। लेखक महाशय ने इसमें केवल वृक्षों का निघंटु मात्र चुनकर वृक्ष-खंड मात्र ही प्रकाशित किया है।

प्रस्तुत पुस्तक में वृक्षों की पहचान और उनका औषधि-रूप में गुणों का वर्णन है।

यदि इस पुस्तक का नाम 'वृक्षौषधि-निघंटु' या वृक्षौषधि-विज्ञान' होता, तो नाम अधिक सार्थक, व्यापक और नाममात्र से ही विषय हृदयगत हो जाता।

स्वर्गीय शंकर-दाजी शास्त्री पदे की अमर कीर्त्ति विकसित रहते हुए भी उनका साहित्य हिन्दीवालों के लिए लुप्त-सा होता जा रहा है। वैद्य-समाज इस दशा में निश्चेष्ट-सा है, ऐसी दशा मे वैद्य न होते हुए भी श्रीयुत प्रवासीलालजी वर्मा ने उसका एक अंश प्रकाशित करके वैद्य-समाज तथा सर्वसाधारण पर प्रत्यक्ष

रूप से उपकार ही किया है। पुस्तक के साथ प्रयोग-सूची ने तो पुस्तक की उपादेयता और भी बढ़ा दी है।

पुस्तक ऐसे सरल ढंग से लिखी गई है कि उसे पढ़कर ही वृक्षों का औषधि के रूप में प्रयोग किया जा सकता है, तो भी यत्र-तत्र वृक्षों के गुण-विशेष और प्रयोग-विशेष प्रान्तीय भेद से आ गये हैं; जैसे—भिलावें के गुण और प्रयोग। इसके प्रयोगों का विशेष माहात्म्य कोंकण-प्रान्त में प्रायः देखा जाता है। युक्त-प्रान्त मे भिलावें का इस प्रकार मनमाना व्यवहार नहीं हो सकता। जो भिलावाँ वहाँ निस्संकोच होकर हर दशा मे प्रयुक्त किया जाता है, वही युक्तप्रान्त में किसी योग्य वैद्य की सम्मति के विना उस रूप में प्रयुक्त नहीं हो सकता; मगर ऐसा उदाहरण विरला ही है।

वैद्यों के लिए तो यह पुस्तक मार्ग-दर्शक है। प्रत्येक वैद्य को इन प्रयोगों की परीक्षा करके फलाफल वैद्यक-पत्रों मे प्रकाशित करवाते रहना चाहिए और लेखक को सूचना देते रहना चाहिए। पुस्तक की उपयोगिता देखते हुए कहना पड़ता है कि प्रत्येक घर में इसकी एक प्रति रहना चाहिए।

अन्त में एक बात और कहना है। वर्माजी ने इन पंक्तियों के लिखने का भार मेरे ऊपर छोड़ा। मेरी इच्छा थी कि इस विषय के मुझसे कहीं योग्य सज्जन इस भार को लेते तो ठीक था। मैंने वर्माजी को कई वृक्ष-विज्ञानियों के नाम भी लिखे, मगर अन्त में उन्होंने इसके लिए मुझ-जैसे अयोग्य को ही योग्य समझा। मुझे तो इसका कारण केवल यही मालूम होता है कि वर्माजी मेरे मित्र हैं, और अपना खट्टा दही भी मीठा मालूम होता है।

'प्रताप'-कार्यालय, कानपुर
देवोत्थानी एकादशी १९८६ } शिवनारायण मिश्र, 'भिषग्रत्न'

वृक्ष-सूची

[अ]

[आ]

[इ]

[ए]

[ऐ]

[क]

उपयोग-सूची

[अ]

उपयोग | पृष्ठांक

[प]

उपयोग	पृष्ठांक

पाण्डुरोग और सब विषों पर—काले इन्द्रजव के अंकुरों का रस निकाले और चार-चार पैसे भर तीन दिन तक रोज दे।

नल फूलने पर—इन्द्रजव को सेंक कर एक पैसे भर उसका चूर्ण, एक पैसे भर शहद और एक पैसे भर घी को एकत्र कर सात दिन तक पिलाना चाहिए।

जीर्णज्वर पर—इन्द्रजव के वृक्ष की छाल और गिलोय का काढ़ा पिलाये अथवा रात को छाल को पानी में गला दे और सुबह उस पानी को छान कर पिलाये।

कान से पीब बहने पर—इन्द्रजव के वृक्ष की छाल का चूर्ण कपड़छन करके कान में डालना और इसके पश्चात् मखमली (संस्कृत-विरजनी) के पत्तों का रस चुआना चाहिए।

मूत्रकृच्छ्र पर—इन्द्रजव की छाल गाय के दूध में पीसकर पिलाना चाहिए। इससे कठिन मूत्रकृच्छ्र का भी नाश हो जाता है।

परिणामशूल पर—इन्द्रजव का चूर्ण गरम पानी के साथ देना चाहिए।

बालकों के दस्त पर—छाछ से निकले हुए पानी में इन्द्र-जव के मूल को घिसे और उसमें थोड़ी हींग डालकर पिलाये।

बालकों के कॉलरा पर—इन्द्रजव के मूल और एरण्ड के मूल को छाछ के पानी में घिसकर और उसमें थोड़ी हींग डालकर पिलाना चाहिए।

वातशूल पर—इन्द्रजव का काढ़ा करे और उसमें संचल तथा सेंकी हुई हींग डालकर पिलाये।

सब तरह के अतिसार, संग्रहणी, पांडु और जीर्णज्वर पर—इन्द्रजव के मूल को पीसकर उसका रस निकाले। रस को

आग पर पकाये। जब वह कुछ खौलने लगे, तो उसमें सोंठ, काली मिर्च, पीपर, जायफल, जावित्री, माजूफल, लौंग, वाय-विडङ्ग, मरोड़फली, छोटे बेल (बिल्व), बहेड़े की गरी और नागकेशर के चूर्ण का आवश्यकतानुसार मिश्रण करके चने के बराबर गोलियाँ बना ले। अतिसार और संग्रहणी पर इन गोलियों को छाछ के पानी में थोड़ा हींग का चूर्ण डालकर खटमिट्ठे दही के साथ अथवा घी डाले हुए सोंठ के काढ़े के साथ दे। छोटे बालकों के लिए भी ये गोलियाँ लाभदायक है। पाण्डुरोग पर इन गोलियों को केवल गोमूत्र में घिस कर पिलाना चाहिये।

वातज्वर पर—एक तोला इन्द्रजव के मूल की छाल को लेकर महीन पीसना चाहिए और उसे पाँच तोला पानी मे डालकर तथा कपड़े से छानकर पिलाना चाहिये।

शोफोदर पर—इन्द्रजव के मूल को गरम पानी में घिसकर चौदह अथवा इक्कीस दिन तक प्रतिदिन दो बार पिलाना चाहिए।

सब तरह के अतिसार पर—इन्द्रजव के वृक्ष की छाल के काढ़े को अष्टमांश करके उसमे अतीस का चूर्ण डालकर पिलाये। अथवा इन्द्रजव के मूल की छाल और अतीस का चूर्ण शहद के साथ दे।

पथरी पर—इन्द्रजव की छाल को दही में पीसकर पिलाना चाहिए।

कुटजाष्टकावलेह—इन्द्रजव के मूलों की हरी छाल पाँच सेर लेकर उसका सोलह सेर पानी में काढ़ा करे। जब आठवाँ भाग बच रहे तो उसे वस्त्र से छानकर पुनः उबाले। जब वह गाढ़ा हो जाय, तो उसमें अतीस, लज्जावती (या छुई-मुई), छोटा बेल (बिल्व), नागरमोथा, धाय के फूल और मोचरस का

[श]

[ह]

वृक्ष-विज्ञान

पीपल

पीपल का वृक्ष हिन्दुस्थान के सिवा और कहीं नहीं होता।

संस्कृत में इसे अश्वत्थ, हिन्दी में पीपल, गुजराती में पीपलो, मराठी में पीपल, कर्नाटकी में अरलीमारा, तैलिङ्गी में रावीचेट्टु, तामील में आराकमरं, फ़ारसी में दरख्तलरजा, मलयलम में अरायल, लैटिन में फाइकरिलिजियोजा और अंग्रेजी में पोपलरलिव्ड फिग ट्री कहते हैं। यह गाँव, नगर, और अरण्य आदि सब जगह होता है। यह बहुत ऊँचा होता और खूब फैलता है। कभी-कभी तो यह इतना फैल जाता है कि इसकी छाया में पाँच-सात सौ आदमी बैठ सकते हैं। यह बहुत वर्षों तक टिकता है। अनेक अलौकिक गुणों के कारण इसे हिन्दू लोग बहुत ही पवित्र मानते और पूजा करते हैं। * बहुत से परोपकारी गृहस्थ इसके आस-पास चबूतरा या पाल बनवा देते

---

* इसकी लकड़ी समिधा के काम में आती है। इसके फल जंगली बेर के समान होते हैं। ये कच्चे अच्छे नहीं लगते, परन्तु पक जाने पर मीठे लगते हैं। लड़के इसे बहुत पसन्द करते हैं। किसी किसी वृक्ष के फलों में छोटे छोटे कीड़े भी होते हैं। इस वृक्ष का उद्भव, कौए की विष्ठा के बीजों के उग आने से होता है। कभी-कभी तो वह दीवारों पर उग कर, उनको गिरा देता है। परमात्मा ने ऐसे पूज्य वृक्ष को अधिक संख्या में उगाने के लिए कैसा बुद्धिमत्ता-पूर्ण उपाय निकाला है।

किसी किसी पीपल में बड़ की जटाओं के समान अंकुर निकल आते हैं। बालकों के श्वास चलने पर यह रामबाण औषधि है। इन्हें पानी में घिसकर पिलाया जाता है।

हैं। हिन्दुओं में पीपल की लकड़ियाँ जलाने का निषेध है। इसके फल छोटे-छोटे होते हैं। इससे लाख भी पैदा होती है। वह रंग आदि कई कामों में आती है। पीपल के वृक्ष को छाया के लिये देव-मन्दिरों के आस-पास और रास्तों पर रोपा जाता है। बहुत से राहगीर, श्रम से थककर उसके नीचे विश्राम करते हैं। इसकी छाया बहुत ही ठंढी होती है। पीपल के वृक्ष से हवा शुद्ध होकर लोगों को सुख देती है। यह वृक्ष बहुत गुणकारी होता है। हमारे पूर्वज इसके गुणों को भली-भाँति जानते थे।

पीपल का वृक्ष—मधुर, कषाय, शीतल, दुर्जर, गुरु, रुक्ष, वर्णकर, योनिशोधक और कड़वा होता है; तथा कफ, पित्त, दाह, और व्रण का नाश करता है।

पके हुए फल—हृद्य और शीतल होते हैं; तथा कफ, पित्त, रक्त-दोष, विष-दोष, दाह, क़ै, शोष और अरुचि का नाश करते हैं।

लाख—कड़वी, फीकी, स्निग्ध, लघु, शक्ति-वर्द्धक, भग्न-संधानकर, वर्ण-प्रद और शीतल होती है; तथा कफ, पित्त, शोष, विष, रक्त-विकार, विषमज्वर, हिचकी, ऊर्ध्वरस, ज्वर, उरःक्षत नासिका रोग, विसर्प, कृमि, कुष्ठ, व्रण, त्वग्दोष और दाह का नाश करती है।

उपयोग—

उपदंश यानी गर्मी के फोड़ों पर—पीपल की सूखी छाल की राख लगाने से फोड़े सूखकर अच्छे हो जाते हैं।

बच्चों का स्वर शुद्ध करने के लिए—पीपल के पके फल खिलाना चाहिये।

कै और हिचकी पर—पीपल की सूखी लकड़ी की राख

पानी में घोल कर, कई बार पिलाने से हिचकी और क़ै पर तत्काल लाभ होता है।

उरु में संचय हुआ रक्त शुद्ध करने के लिये—पीपल के पत्ते और डंठलों को कूटकर, उनका रस शहद के साथ पिलाना चाहिए।

खुजली पर—पीपल की छाल के बारीक टुकड़ों की राख और चूना मक्खन में मिलाकर लगाना चाहिए; अथवा छाल को पानी में घिसकर लगाना चाहिए।

मुँह के छालों पर—बच्चों का मुँह आ जाए, या छाले हो जाएँ, तो पीपल के ताज़े पत्ते और छाल बारीक पीस कर शहद के साथ दिन में तीन बार थोड़ा-थोड़ा खिलाना चाहिए।

अफ़ीम के विष पर—पीपल को छाल का काढ़ा पिलाना चाहिए।

सर्प के विष पर—पीपल के वृक्ष की पतली-पतली दो टहनियाँ तोड़ कर उनके मुख एक ओर से गोल कर ले और उन्हें साँप के काटे हुए व्यक्ति के दोनों कानों मे डाले, ताकि परदे तक पहुँच जाय। साँप के काटे हुए व्यक्ति को दो मजबूत आदमी पकड़े रहें, जिससे उसका सिर न हिलने पाये। क्योंकि सिर हिल जाने से परदा फट जाने का भय रहता है। जब उसे होश आ जाय, तो लकड़ी निकाल ले। इस प्रयोग से कभी १५ मिनिट में, कभी आध घंटे में और कभी एक या डेढ़ घंटे में अवश्य लाभ होते देखा गया है।

क्षतकास और उरःक्षत पर—पीपल की लाख* का चूर्ण शहद और घी के साथ देना चाहिए।

---

* स्त्रियों का लाख कभी नहीं खिलानी चाहिए। कहते हैं, इससे गर्भ नहीं रहता।

आग से जले घाव पर—पीपल की सूखी लकड़ियों का चूर्ण घी में मिलाकर लगाना चाहिए।

लाख से स्याही बनाने की रीति—एक सेर पानी, छः पैसे भर पीपल की लाख, दो तोला शुद्ध किया हुआ टंकनखार (टंकनखार के टुकड़े कपड़े मे बाँधकर भैंस के गोबर में मिला कर स्वच्छ पानी से धोने से वह सफेद—शुभ्र बन जाता है।) और छः माशा लोध को लेकर एक बर्त्तन में डाले। दो पहर के पश्चात् स्याही तैयार हो जायगी। यदि स्याही जल्दी तैयार करनी हो, तो सब चीजों को बर्त्तन में डालकर चूल्हे पर पका ले। बढ़िया लाल स्याही तैयार हो जायगी। इस स्याही में रुई को भिगो ले और सुखा कर रख ले। जिस समय स्याही की आवश्यकता हो, रुई को पानी में मसल कर स्याही निकाल ले। लाख के रंग में काजल मिलाकर पक्की स्याही * भी बनाई जाती है।

---

* आज कल जो हस्तलिखित प्राचीन ग्रन्थ चमकीले अक्षरों में दृष्टि पड़ते हैं, वे इसी स्याही से लिखे गये हैं। इस स्याही को बनाने की अनेक रीतियाँ मिलती हैं। एक जैन-ग्रंथ में यह कवित्त लिखा है—

लाख टाँक बीस मेल, स्वाग (टंकन) टाँक पाँच मेल,
नीर टाँक दो सौ लेके हाँडी में चढाइये।
ज्योंज्यों आग दीजे त्योंत्यों और खार सब लीजे,
लोदर खार बाल-बाल पीस के रखाइये॥
मीठा तेल दीप ज्वाल काजल सो ले उतार,
नीकी विधि पिछानी के ऐसे ही, बनाइये।
चाहक चतुर नर लिख के अनूप ग्रन्थ,
बाँच-बाँच-बाँच रीझ-रीझ मौज पाइये॥

स्तन-रोग पर—पीपल की छाल को जलाकर पानी में मिलाए; पश्चात् एक लोहे के टुकड़े को बारम्बार गरम करके उसमें डाले। यह पानी साँझ-सवेरे पीने को दे और इन्द्रवरणा की जड़ पानी में घिसकर लेप करे।

हिचकी पर—पीपल की छाल जला कर पानी में ठण्डी करे और खटाई में पीस कर छाती पर लेप करे।

रक्तातिसार पर—पीपल के नर्म डंठल, धनिया और शक्कर सम भाग में लेकर मुँह में रखे और दाँतों से चबाकर रस निगले।

रजोदर्शन के लिए—पीपल और इमली की छाल को पानी में पीसकर पिलाना चाहिए।

क्षय पर—पीपल की लाख का चूर्ण करके, घी और शहद में मिलाकर पिलाना चाहिए।

बद पर—पीपल का दूध और चन्द्रस मिलाकर लगाना चाहिए।

बालकों के फोड़े पर—पीपल की छाल और ईंट को पानी में घिस कर लेप करना चाहिए।

नीलमेह पर—पीपल की छाल का काढ़ा पिलाना चाहिए।

ढोरों के घाव में कीड़े पड़ जाने पर—पीपल की छाल को रोटी में डाल कर खिलाना चाहिए।

हनुग्रह (मुँह को अचल कर देनेवाला रोग) वायु पर—पीपल की छाल के रस में पानी मिलाकर उसमें पीपल का चूर्ण मिलाकर पिलाना चाहिए।

रक्त-पित्त पर—एक भाग पीपल के पत्तों का रस और छः भाग हीरा बोल (एक प्रकार का गोंद) दुगुनी शहद में मिलाकर पिलाए; इससे हृदय में संचय हुए रक्त का नाश हो जाता है।

प्रदर पर—एक तोला पीपल की लाख छाछ (मट्ठे) में उबाले और शक्कर डालकर पी जाए।

ऊर्ध्वरस और श्वास चलने पर—पीपल की लाख का चूर्ण घी-शक्कर के साथ खाए।

बच्चों की बुद्धिमन्दता पर—हर रविवार को पीपल के पत्ते लाकर उनकी पत्तल बनाए और उस पर गरम-गरम भात परोस-कर छोटे बच्चों को खिलाए। इस प्रकार चार-पाँच रविवार को खिलाने से बिल्कुल कुछ भी न समझनेवाले बच्चे में भी समझ आ जाती है। जड़ जीभवाले और तुतलाकर बोलनेवाले बच्चे पर भी यह प्रयोग करना चाहिए। इससे फ़ायदा होता है।

घाव भरने के लिए—कुटी हुई पीपल की छाल का काढ़ा बनाकर उससे घाव धोने से घाव जल्दी भर जाता है।

हिचकी पर—एक माशा पीपल की लाख का चूर्ण शहद में मिलाकर चटाना चाहिए।

सूखी खाँसी पर—पीपल की लाख का चूर्ण घी और शक्कर के साथ खाना चाहिए।

बहुत देर तक खाँसी चलती रहने और बाद में कफ के साथ खून गिरने पर—चार रत्ती पीपल की लाख, एक चमचा शहद, दो चमचा घी और पैसे भर मिश्री को मिलाकर दिन मे पाँच-छः बार देना चाहिए। इससे खून की खाँसी बन्द होती है। यह प्रयोग अनुभूत है।

मामूली ज्वर आने, सूखी खाँसी चलने और दिनों दिन दुबलापन बढ़ने पर—घी, शहद और शक्कर के साथ पीपल की लाख देनी चाहिए। यह प्रयोग श्वास के लिये भी उपयोगी है।

बच्चों के शूल और अनिद्रा पर—चुटकी भर पीपल की लाख थोड़े से दूध में मिलाकर पिलानी चाहिए।

पुरानी खाँसी (जिसमें खाँसते-खाँसते बेहोशी आजाती हो और खाना पेट में न ठहरता हो) पर—कपड़े में छना हुआ दो चुटकी लाख का चूर्ण तथा सुपारी के बराबर मक्खन को पिघलाकर उसमें मिलाकर देना चाहिए। दिन में तीन बार यह प्रयोग करना चाहिए।

नींद न आने पर—एक माशा लाख, नौ टंक भैंस के दूध और पैसे भर मिश्री के साथ देनी चाहिए।

लाक्षादि तैल बनाने की विधि—दो सेर उत्तम लाख लेकर उसमें १६ सेर पानी डालकर उसका काढ़ा बनाए। चार सेर शेष रहने पर उतार कर छान ले। इस चार सेर काढ़े में चार सेर शुद्ध तिल का तैल और सोलह सेर दही का छना हुआ पानी अथवा मट्ठा डाले फिर असगंध, हल्दी, देवदार, मरोरफली, रास्ना, सौंफ और मुलहठी, ये सात औषधियाँ, दो-दो तोला के प्रमाण में लेकर पीसे और इनका गोला बनाकर उसमें डाल दे और मन्द आँच पर चढ़ा दे। जब तक केवल तैल ही शेष न रह जाए, तबतक उसे आग पर चढ़ाए रखना चाहिए। केवल तैलशेष रहनेपर उसे छान-कर उसमें चार तोला कपूर डालकर रख लेना चाहिए। यह लाक्षादि तैल अत्यन्त गुणकारी है। यह खाज और खुजली को नष्ट करने; ज्वर, शीतला, अमौरी आदि की गरमी शान्त करने, हाथ-पैर की जलन मिटाने, क्षय के ज्वर तथा अन्य सब प्रकार के ज्वरों को दूर करने के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

लाक्षादि तैल दूसरी विधि—लाख को उबालकर उसमें

समान भाग तिल का तैल डाले। तैल से चौगुना दही का छना हुआ पानी और असगंध, दारुहल्दी, देवदार, राल, कोष्ठ, चन्दन, मरोर-फली, कुट्की (कटुकी), रास्ना, सोया, मुलहठी ये समान भाग में लेकर सब का कल्क करे। यह कल्क तैल के चतुर्थांश के बराबर डालकर तैल को सिद्ध करे। इस तैल को शरीर पर लगाने से सब प्रकार के ज्वर, क्षय, उन्माद, श्वास, अपस्मार, वातरोग और राक्षस तथा भूत की पीड़ा का नाश होता है। यह तैल गर्भिणी स्त्री के लिए भी प्रशस्त है।

बड़

यह वृक्ष सर्वत्र प्रसिद्ध है। संस्कृत और बंगला में इसे बट, हिन्दी में बड़, गुजराती और मराठी में बड़, कर्नाटकी में आद्ल-गोलीमारा, फारसी में दरख्तरेशा, वड़वाई और एवर्गद, तैलिङ्गी मे मर्रिचेट्टु, तामील में अलामारम्, मलयलम में पेराल, अरबी में जातु, दवाई, और वथआब, लैटिन में फ़ाइकसइंडिकस् और अंग्रेजी में बनियनट्री कहते हैं। यह बहुत ऊँचा बढ़ता और खूब फैलता है। इसकी छाया बहुत घनी होती है। पीपल की तरह इसे भी देव-मन्दिरों के पास रोपा जाता और पाल बाँधी जाती है। हिन्दू लोग इसे भी बहुत पवित्र मानकर पूजते हैं। यह इतना फैल जाता है कि इसकी छाया मे हज़ारों आदमी बैठ सकते हैं। इसकी जटाएँ पृथ्वी तक पहुँच कर प्रतिवर्ष उग आती हैं। इस प्रकार यह फैलता जाता है। इसके पत्ते, पत्तल-दोने बनाने के काम में आते हैं। बहुत से लोग इसके दूध का मरहम की तरह उपयोग करते हैं। गुजरात में नर्मदा के उद्गम के पास

"कबीर-बड़" नामक एक बहुत बड़ा बड़ का वृक्ष है। उसमें लगभग साढ़े तीन सौ जटाएँ हैं और बढ़ती ही जा रही हैं। इसका घुमाव साढ़े तेरह हाथ लम्बा है। उसकी जटाओं में छोटी-छोटी तीन हजार डालियाँ निकल रही हैं। उस वृक्ष के नीचे पाँच हज़ार मनुष्य आसानी से बैठ सकते हैं। दूर से देखने पर ऐसा मालूम होता है, जैसे कोई वन हो।

बड़ की लकड़ी बढ़ई लोगों के काम में नहीं आती। इसके बड़े वृक्ष हजार वर्ष तक रहते हैं।

बड़ का वृक्ष—फीका, मधुर, शीतल, गुरु, ग्राही, वर्ण्य, स्तंभक और रुक्ष होता है; तथा कफ, पित्त, योनिदोष, ज्वर, दाह, तृषा, क़ै, मूर्च्छा, रक्तपित्त, व्रण, शोक और विसर्प का नाश करता है।

नदी बड़—फीका, मधुर, शीतल और गुरु होता है; तथा, पित्त, दाह, तृषा, ज्वर, श्वास और क़ै को नष्ट करता है।

वटपत्री—फीकी और उष्ण होती है तथा योनिदोष और मूत्ररोग का नाश करती है।

बड़ के फल—मधुर, रुक्ष, फीके, स्तंभक, शीतल, लेखन और विबन्ध आध्मानवायु को करने वाले होते हैं; तथा कफ और पित्त का नाश करते हैं।

उपयोग—

नाखून और दाँत के विष पर—बड़, खेजड़ा और कड़वे नीम की छाल को पीस कर लेप करना चाहिए।

प्रमेह पर—बड़ की जड़ों का काढ़ा बनाकर शहद के साथ पीना चाहिए।

बिच्छू, बर्रें और चूहे के दंश पर—बड़ का दूध लगाना चाहिए।

पेट के कृमि पर—बड़ की जड़ों में निकले हुए नये अंकुरों को पीसकर उनका रस पिलाना चाहिए।

गर्भधारण के लिए—बड़ की कोपलों को पीसकर बेर के समान २१ गोलियाँ बनाए और तीन गोलियाँ रोज घी के साथ खाए।

धातु-पुष्टि के लिए—बड़ का दूध बताशों में डालकर खिलाना चाहिए।

ज्वर के दाह पर—बड़ की जड़ों का रस पिलाना चाहिए।

पसीना लाने के लिए—चावल की धानी का आटा पानी मे घोल कर उसमें बड़ के पीले पत्ते डाले और षष्ठांश (छठा भाग) काढ़ा करके पिये।

आँख की फूली आदि पर—बड़ के दूध में कपूर को पीस कर अंजन करना चाहिए।

अतिसार पर—बड़ की जड़ को चावल के धोये हुए पानी में पीस कर मट्ठे के साथ पिए।

रक्त-पित्त पर—बड़ की पिसी हुई जड़ में शक्कर और शहद मिलाकर देना चाहिए।

मुखरोग पर—बड़, उदुंबर, पीपल (एक औषधि), जामुन और नन्दीवृक्ष की छाल का काढ़ा बनाकर उससे कुल्ले करना चाहिए।

खुजली और मूलव्याधि पर—बड़ के पीले पत्तों की राख को तिल के तेल में मिलाकर मलना चाहिए।

मल-मूत्र बन्द हो जाने पर—बड़ के पके हुए; परन्तु, सूखे पत्तों का काढ़ा बनाकर पिलाना चाहिए।

रक्तजन्य स्नायु (नहारू) पर—बड़ और इमली की छाल को पीसकर लेप करना चाहिए।

केल

केले का वृक्ष अधिकतर सभी जगह होता है। संस्कृत में इसे कदली या रम्भा, हिन्दी, गुजराती और मराठी में केल, कर्नाटकी मे बाळी, तामील में वाले, मलयलम में वाला, तैलिङ्गी में चक्राकेलि, फारसी में मोज, अरबी में तना, लैटिन में मुसासे-पियेन्टम् और अंग्रेजी में प्लेनटेइन कहते हैं। इसकी जड़ के अंकुरों को काटकर दूसरी जगह बो देने से यह उग आता है। इसकी लगभग बीस जातियाँ होती हैं। गोमांतक, कर्नाटक और वसई प्रान्त में केल की बहुत उत्पत्ति होती है। वसई प्रान्त के एक गाँव में केलों को सुखाकर जगह-जगह भेजा जाता है। वर्षा से वनों में केले के जो वृक्ष उग आते हैं, उन्हें "जंगली केल" कहते हैं। इनके फूलों और कच्चे केलों का शाक भी बनाया जाता है। छाल की राख रंग के काम में आती है। इससे रंगरेज और जुलाहे बहुत काम लेते हैं। पके हुए केलों का रायता अच्छा बनता है। हथियारों को भी केल के द्वारा तेज किया जाता है। केल के पत्तों में लगे हुए डंठलों को जलाने से एक प्रकार का खार उत्पन्न होता है। कोंकण देश के धोबी लोग साबुन के स्थान पर इसी खार का उपयोग करते हैं। किसी-किसी गाँव के बेचारे गरीब निवासी तो इतना भी नहीं जानते कि मरहम किसे कहते हैं। उनको औषधि देने के लिए वैद्य भी नहीं होते। शरीर पर घाव आदि हो जाने पर वे लोग केले के रस को मरहम की तरह बाँध लेते हैं, जिससे उनके घाव तुरन्त अच्छे हो जाते हैं। पके केले खाने के काम में आते हैं। जंगली केलों को कोई नहीं खाता।

उसके कच्चे केलों और फूलों का शाक बनाया जाता है और पत्ते पत्तल बनाने के काम में आते हैं। भील, कोरी आदि गरीब लोग पृथ्वी में से जंगली केले का कन्द निकाल कर उन्हें चक्की में पीसते और मोटी रोटी बनाकर खाते हैं।

केल का वृक्ष—शीतल, गुरु, वृष्य, स्निग्ध और मधुर होता है; तथा पित्त, रक्त-विकार, योनि-दोष, अश्मरी और रक्त-पित्त का नाश करता है।

पके केले—बल-वर्द्धक, मधुर, गुरु, शीतल, वृष्य, शुक्र-वर्द्धक, संतर्पण, दुर्जर और कफकर होते हैं; तथा तृषा, ग्लानि, पित्त, रक्त-विकार, मेह, क्षुधा और नेत्र-रोग का नाश करते हैं। ये मांस, कान्ति और रुचि को बढ़ाने वाले होते हैं।

केल के फूल—स्निग्ध, मधुर, फीके, गुरु, ग्राही, कड़वे, अग्नि-दीपक, वात-नाशक और किंचित् उष्णवीर्य होते हैं; तथा रक्त-पित्त, क्षय, कृमि, पित्त और कफ का नाश करते हैं।

कदलीसार (केले का गूदा)—ग्राही, अप्रिय, गुरु और शीतल होता है; तथा तृषा, दाह, मूत्रकृच्छ्र, अतिसार, सोमरोग, अस्थिस्राव, रक्त-पित्त और विस्फोट का नाश करता है।

कदलीकन्द—रुच, वातल, तुरश, गुरु, शीतल, बलवर्द्धक, मधुर, केश्य और अग्निमांद्यकर होता है; तथा कर्णशूल, आँव, पित्त, दाह, रक्तदोष, सोमरोग, रजोदोष, कृमि और कुष्ठ का नाश करता है।

केल का पानी—शीतल और ग्राही होता है; तथा मूत्र-कृच्छ्र मेह, तृषा, कर्णरोग, अतिसार, अस्थिस्राव, रक्त-पित्त, कृच्छ्र, विस्फोट, रक्त-दोष, योनि-दोष और दाह का नाश करता है।

जंगली केल—शीतल, मधुर, बलवर्द्धक, वीर्यवर्द्धक,

रुचिकर, दुर्जर और जड़ होता है; तथा तृषा, दाह, शोक और पित्त का नाश करता है।

जंगली केल के फल—मधुर, तुरश और गुरु होते हैं।

उपयोग—

विष खा लेने पर—केले के वृक्ष का रस निकाल कर पिलाना चाहिए।

पागल कुत्ते के विष पर—पके हुए जंगली केलों के बीज खाना और पीसकर दंश पर लगाना चाहिए।

श्वास पर—केले के अन्दर के गूदे में छेद करके रात्रि को उसमें काली मिर्च का चूर्ण भर कर रख दे। प्रातःकाल उसे घी में भूनकर खाने से श्वास-रोग दूर हो जाता है।

सुख से प्रसूति होने के लिए—केल का कंद कमर से बाँधना चाहिए। प्रसव हो जाने पर उसे खोल देना चाहिए।

हिचकी पर—एक माशा जंगली केल के पत्तों की राख को एक तोला शहद के साथ पिलाना चाहिए।

सूजन पर—गेहूँ के आटे और केले के गूदे को पानी में मिलाकर गरम करके सूजन पर बाँधे।

सोमल के विष पर—केल के पौधे का पाव भर रस पिलाना चाहिए।

जिह्वा फटने पर—पका हुआ केला, सूर्योदय से पहले गाय के दही के साथ खाना चाहिए।

पांडु रोग पर—पके केलों को शहद में मिलाकर खाना चाहिए।

भस्मक रोग पर—केलों को घी के साथ खाना चाहिए अथवा केले के पौधे का रस पीना चाहिए।

प्रदर और सोमरोग (यह मूत्रातिसार के जैसा होता है) पर—पके केले, आँवले का रस और दो भाग शक्कर एकत्र करके पिलाना चाहिए।

मूत्रकृच्छ्र या गरमी पर—गाय के मूत्र में केले के कन्द का रस डालकर पिलाना चाहिए।

दाह-शमन के लिए—केल और कमल के पत्तों पर सोना चाहिए।

बालकों के दाँत निकलने पर—केले के फूलों के अन्दर के भाग को खूब बारीक पीसकर उसका रस निकाले। पश्चात् उसमें पीसा हुआ जीरा और शक्कर डालकर बालक की शक्ति के अनुसार प्रत्येक खुराक चार माशा से छः माशा पर्य्यन्त सात रोज तक दे। इस औषधि को दस-बीस बार डाढ़ आदि पर लगाने से बालकों के दाँत शीघ्र निकल आते हैं और ज्वर भाग जाता है।

शीतला का जोर कम करने के लिए—जंगली केल के बीजों को भैंस के दूध में पीस कर छाने और पिलाए; इससे शीतला कम निकलती है।

प्रदर और धातुविकार पर—एक पका हुआ केला आधा तोला घी के साथ सुबह-शाम लगभग आठ रोज तक सेवन करना चाहिए। यदि इससे शरीर में बहुत ठण्ढक मालूम हो, तो शहद की चार बूँदें भी डाल देनी चाहिए।

ढोरों के सोमल खा लेने पर—एक सेर केले के रस में १० तोला फिटकिरी और एक तोला सफेद कत्था डालकर तीन दिन तक पिलाना चाहिए।

पित्तरोग पर—पके हुए केले और घी खाना चाहिए।

ढोरों के मूत्रावरोध पर—लगभग एक सेर केले के पानी में एक तोला गेरू को घिस कर उसमें चने के बराबर नमक और काली मिर्च का चूर्ण मिलाकर पिलाना चाहिए।

केले खाने से अजीर्ण हो जाने पर—इलायची के दाने खाने चाहिए।

केले को पकाने के लिए—जिस डाली में केले लगे हों, उसे पाँच-छः अंगुल छोड़कर बाकी सब काट देना चाहिए। पश्चात् उसमें कील से छेद करके इलायची का चूर्ण भर देना चाहिए। इससे केले शीघ्र पक जाते हैं। यदि केले अधिक होते हैं और चूर्ण कम भरा जाता है, तो सब केले नष्ट हो जाते हैं। छेद में कपूर भर देने से भी केले पक जाते हैं।

प्रदर पर—केले के पत्तों को पीसकर दूध की खीर में पकाए और दो-तीन दिन खाए।

कै पर—केले के कन्द का रस शहद के साथ पीना चाहिए।

शरीर की गरमी और प्रमेह पर—केले के गूदे को छाया में सुखाकर उसका चूर्ण करके शक्कर और पानी के साथ पिलाना चाहिए।

शरीर में दाह होने, प्यास अधिक लगने और पित्त पर—केले खाना चाहिए।

अरुचि पर—भोजन से पहले एक अच्छा पुराना और पका हुआ केला खाना चाहिए। थोड़े दिनों में ही अरुचि का नाश होकर अन्न पर रुचि उत्पन्न होगी।

दस्त पर—दस्त से लौट कर आधा केला खाना चाहिए। चार-पाँच बार ऐसा करने से दस्त का वेग बन्द हो जाता है।

पुष्टि के लिए—रोज नियमित रूप से केले खाना चाहिए। केले तत्काल वीर्य वृद्धि करने वाले हैं, इसलिए जिसे स्वप्नावस्था होती हो, या जरा सी देर में जिसका वीर्यस्खलन होता हो, उसे नियमित रूप से, यदि पच सकें, तो दो केले रोज खाने चाहिए। थोड़े ही दिनों में लाभ होता है।

रक्तातिसार पर—कदलीसार का शाक खाना चाहिए।

शरीर में दाह होने और प्यास अधिक लगने पर—दो चमचा कदलीसार का रस थोड़ी-सी शक्कर डालकर पीना चाहिए।

मूत्रकृच्छ्र अथवा पेशाब रुक जाने पर—तीन चमचे कदलीसार के रस में थोड़ी शक्कर डाल कर पिलाना चाहिए। दो-तीन बार पीने से लाभ होता है।

स्त्रियों के सोमरोग यानी सफेद प्रदर पर—पाँच माशा कदलीसार के रस में तीन माशा शक्कर डाल कर सात दिन तक पिलाना चाहिए।

रक्तपित्त अर्थात्-नस्कोरा फूटकर खून गिरने अथवा मुँह से खून गिरने पर—चार माशा कदलीसार का रस, दो माशा आँवले का रस और थोड़ी मिश्री मिलाकर पीते रहना चाहिए।

ज़ख़्म बढ़ते-बढ़ते हड्डी तक पहुँच जाने और हड्डी सड़ने पर—छः माशा कदलीसार के रस में एक माशा हल्दी डालकर चालीस दिन तक देना चाहिए। पर यह विशेष ध्यान रखना चाहिए कि इसमे नमक का सेवन वर्ज्य है, इसलिए चालीस दिनों तक नमक नहीं खाना चाहिए।

कान बहने पर—केले के पानी से कान धोना चाहिए।

फोड़ों और फुड़ियों पर—छः माशा कदलीसार के रस में थोड़ी शकर डालकर पीना चाहिए।

मूलव्याधि (अर्श), दस्त साफ न होने, पेट फूलने और अग्निमांद्य पर—भोजन के बाद अच्छे पके हुए दो केले सुबह-शाम खाना चाहिए। इससे सब विकार दूर होते हैं। ऐसा अनुभव है।

केले का सत्त्व बनाने की विधि—कदलीकन्द अथवा कदली-सार को कूटकर उसका पानी निकाले और कलई के वर्त्तन अथवा पत्थर के बर्त्तन में दो दिन तक रख छोड़े। बाद में धीरे-से वर्त्तन को उठाकर ऊपर छना हुआ पानी फेंक दे और बर्त्तन में नीचे जमा हुआ पदार्थ निकाल कर सुखा ले। इसी को केले का सत्त्व कहा जाता है। यह सत्त्व अतिशय गरमी, पेशाब न होने आदि के लिए बहुत ही गुणकारी है। पर इसका उपयोग योग्य वैद्य की सलाह के अनुसार करना उचित है।

कटहल

कटहल का वृक्ष बहुत बड़ा होता है। इसे संस्कृत में पनस, हिन्दी में कटहल, बंगला मे काठाल, गुजराती और मराठी में फणस, कर्नाटकी में हलसिनमारा, तैलिङ्गी में पनसकाथा, तामिल में पलाचु या चिरा, मलयलम में पिलावु, लैटिन में आर्टोकार्पस् इन्टेग्रिफोलिया और अंग्रेजी में इंडियन जेक ट्री कहते हैं। पाँच-छः वर्ष के पश्चात् इसमें फल आने लगते हैं। इसके पत्ते हरे और लम्बे होते हैं। यह अधिकतर पहाड़ी देशों में ही पैदा होता है। कटहल पर मोटे काँटे होते हैं। अच्छे और

बड़े वृक्ष में लगभग पाँच सौ कटहल लग सकते हैं। कटहल की दो जातियाँ होती हैं। कटहल बहुत-से कामों में उपयोगी होता है। कच्चे कटहल का शाक बनता है। पक जाने पर अन्दर का गूदा खाया जाता है। मंगलोर और गोमांतक के लोग कटहल के दिनों में प्रातःकाल, भोजन के बदले केवल कटहल खाकर रहते हैं। इसके बीजे भी शाक के काम में आते हैं। बीजों को सेंकते समय उसमें छेद कर देना चाहिए ; छेद न करने से वह जोर से फूटता है। बीजों पर मिट्टी लगाकर लोग उन्हे रख लेते है ; और वर्षा के दिनों में सेंक कर खाते हैं। दक्षिण कोंकण मे बहुत-से लोग तीन-चार महीने तक केवल कटहल खाकर ही निर्वाह करते हैं और कटहल का मौसम चले जाने पर उसके बीजों को खाते हैं। कटहल के गूदे को सुखा कर, समय पर उपयोग में लाते हैं। कटहल के छिलके ढोरों को खिलाते हैं और कटहल के गूदे को पीस कर उसकी रोटी, या पूरी बना कर खाते हैं। छिलके खिलाने से ढोरों में शक्ति आती है। वहाँ के लोग गूदे की खीर और कढ़ी भी बनाते हैं। कटहल की लकड़ी पीली होती है। यह इमारत, सन्दूक, कुरसी, पलंग आदि बनाने के काम में आती है। कटहल की एक दूसरी जाति भी होती है। उसके फल खाने के काम में नहीं आते। उसकी लकड़ी बड़ी उपयोगी और मजबूत होती है। उससे द्वार आदि बनाये जाते हैं। कटहल को खाने के पश्चात् पान नहीं खाना चाहिए ; क्योंकि इससे आदमी का पेट फूल कर मृत्यु हो जाती है।

हरा और पुराना कटहल—मलावरोधक, मधुर, बलकर, दोषल, फीका, गुरु और वातल होता है।

कच्चा कटहल—मधुर, जड़, कफ़कर और मेद-वर्द्धक होता है ; तथा दाह, वायु, पित्त, क्षत-क्षय और रक्त-पित्त का नाश करता है।

पक्का कटहल—शीतल, दाहक, स्निग्ध, तृप्तिकर, धातु-वर्द्धक, रुचिकर, मांस-वर्द्धक, कफ़कर, बलकर, पौष्टिक, जन्तुकर, वृष्य और दुर्जर होता है ; तथा रक्त-पित्त, क्षत-क्षय, और वायु का नाश करता है।

कटहल की गुठली—मधुर, वृष्य, जड़ और विष्टंभक होती है।

कटहल के बीज—कड़वे, मुख-शोधक और गुरु होते हैं।

कटहल का पानी—वृष्य, मधुर और त्रिदोष-नाशक होता है।

उपयोग—

मुँह फटने पर—कटहल की छाल को घिसकर लगाना चाहिए।

शोफोदर पर—पके कटहल के अंकुर और खरौंटी की छाल को पानी में पीसकर उसका पाव भर रस पीना चाहिए और परहेज से रहना चाहिए।

बालक के आँव-संग्रहणी पर—कटहल और आम की छाल का पानी में रस निकाल कर, बालक की शक्ति के अनुसार एक तोला से तीन तोला तक दो माशा चूने के पानी के साथ तुरन्त पिलाना चाहिए।

रक्तातिसार पर—आम और कटहल की छाल के रस में चूने का पानी डाल कर पीना चाहिए।

अधिक कटहल खाने से अजीर्ण हो जाने पर—नारियल की गरी खाना चाहिए, या घी गरम करके पीना चाहिए।

कटहल खाने के पश्चात् पान खा लेने पर—खट्टे बेर खाना चाहिए।

एरण्ड

इस आर्यभूमि में परमेश्वर ने हमारे सुख के लिए अनेक उपयोगी वनस्पतियाँ उत्पन्न की हैं ; परन्तु इसे भाग्यचक्र का फेर ही समझना चाहिए कि आज हममें उनका पूर्णरीति से उपयोग करने की सामर्थ्य नहीं है। कालचक्र में फँस जाने के कारण ही आज हमारा अन्न, हमारे पेट में न जाकर, विदेशों में जा रहा है! उत्तम वृष्टि से भरपूर अन्न उत्पन्न होने पर भी, हमारे अन्नदाता किसान भूखों मर रहे हैं! जब सब की ऐसी स्थिति हो रही है, तो हमारी शक्ति किस प्रकार बढ़ सकती है? हमारे देश का भाग्य कैसे उदय हो सकता है? सफल होने के साधन होते हुए भी हम उनका उपयोग नहीं करते। प्रति वर्ष हजारों मन एरण्ड हमारे देश में उत्पन्न होकर, विदेश की ओर रवाना हो जाता है। वहाँ यंत्र-द्वारा उसका तेल निकाला जाता है और तरह-तरह की सुन्दर शीशियों में बन्द करके उनपर सचित्र विदेशी नाम छाप कर फिर यहाँ भेज दिया जाता है ; जिसे हम लोग काम में लाते हैं! जलते समय तेज रोशनी देनेवाले, नेत्र के लिए लाभदायक, और विदेशी तेलों से सस्ते, एरण्ड के तेल को काम में न लेकर, हम विदेश के बने घातक, रोगोत्पादक, परिणाम में भयंकर, समय पर प्राणनाशक मिट्टी के तेल को गुणकारी समझते हैं।

एरण्ड दो प्रकार का होता है। एक सफेद और दूसरा लाल। इसकी दो जातियाँ और भी होती हैं। एक मल-एरण्ड और दूसरी वर्षा-एरण्ड। वर्षा-एरण्ड वर्षा से उत्पन्न होता है। मल-एरण्ड पन्द्रह वर्ष तक रह सकता है। एरण्ड को संस्कृत और बंगला मे

एरण्ड, हिन्दी में अरण्ड या अण्ड, कर्नाटकी में औण्डल या हरल-गीड़, तैलिङ्गी में अमुडाल, तामील मे आमनकक्कु, मलयलम में चिन्तामनकक्कु, फारसी में वेदंजीर, अरबी में खिरवा, लैटिन में रिसिन्जक्राम्युनिस् और अंग्रेजी में केस्टर ऑइल प्लेन्ट कहते हैं। वर्षा-एरण्ड के बीज छोटे होते हैं; परन्तु उनमें मल एरण्ड से अधिक तेल निकलता है। एरण्ड का तेल रेचक होता है; परन्तु अधिक तीव्र न होने के कारण बालकों को देने से कोई हानि नहीं होती।

सफेद एरंड—तीक्ष्ण, गरम, गुरु, मधुर, कटु, वृष्य, जड़, स्वादिष्ट और सारक होता है; तथा वायु, उदावर्त, कफ, ज्वर, ऊर्ध्व-रस, उदररोग, सूजन, शूल, कमर-शूल, वस्तिशूल, मस्तकशूल, श्वास, आनाहवायु, कुष्ठ, बद, गुल्म, आँव-पित्त, प्रमेह, उष्णता; वात-रक्त, मेद, और अंडवृद्धि का नाश करता है।

लाल एरंड—फीका, तीक्ष्ण, लघु और कड़वा होता है; तथा वायु, कफ, श्वास, ऊर्ध्वरस, कृमि, अर्श, वध्मरोग (बद), रक्त-दोष, पाण्डु, भ्रान्ति और अरुचि का नाश करता है। अन्य गुण सफेद एरण्ड के जैसे हैं।

दोनों के पत्ते—वातपित्त को बढ़ाते और मूत्रकृच्छ्र, वायु, कफ और कृमि का नाश करते हैं।

एरंड के नये अंकुर—गुल्म, वस्तिशूल, कफ, कृमि, वायु और सात प्रकार के वृद्धि रोग का नाश करते हैं।

एरंड के फूल—वायु, कफपित्त, और मूत्रकृच्छ्र का नाश करते हैं; तथा रक्तदोष और पित्त को बढ़ाते हैं।

एरंड के बीजों का गूदा—अग्निदीपक, अतिउष्ण, तीक्ष्ण, मीठा, स्निग्ध, सारक, मलभेदक और लघु होता है; तथा गुल्म,

शूल, कफ, यकृत्, वातोदर, प्लीहा और वातार्श का नाश करता है।

एरंड का तेल—मधुर, सारक, उष्ण, गुरु, रुचिकर, स्निग्ध और कड़वा होता है ; तथा वध्म (बद) उदर-रोग, गुल्म, वायु, कफ, सूजन, विषमज्वर, कमर, पीठ, पेट, और गुदा के शूल का नाश करता है।

उपयोग—

शूल पर—एरण्ड की जड़ का काढ़ा, हींग और संचल (एक प्रकार का खार) के साथ खाना चाहिए।

कुक्षिशूल पर—एरण्ड की जड़ के काढ़े में जवाखार डाल कर देना चाहिए ; इससे कुक्षिशूल, कफशूल, उरुशूल और पीठ के शूल का नाश हो जाता है।

पांडु रोग पर—एरण्ड का रस और पीपल का चूर्ण सुँघाना चाहिए।

नेत्र दुखने पर—एरण्ड के तेल का जुलाब लेना चाहिए।

विसर्प और दाद पर—एरण्ड का तेल घी के साथ देना चाहिए।

बच्चों का गला बैठ जाने पर—एरण्ड के पत्ते को घी से चुपड़ कर मस्तिष्क पर रखना चाहिए।

रेचन के लिए—दो तोला शुद्ध एरण्ड का तेल गरम पानी में, अथवा सोंठ या त्रिफला के काढ़े में मिलाकर देना चाहिए।

शरीर की गरमी पर—एरण्ड के तेल को मस्तिष्क पर मलने से मस्तक की गरमी दूर हो जाती और नेत्रों की ज्योति बढ़ती है। हाथ-पैर की ज़लन पर एरण्ड के तेल में ठण्डा जल मिलाकर लगाना चाहिए। मस्तक की गरमी दूर करने के लिए

एरण्ड के पत्तों पर मक्खन या शुद्ध घी चुपड़ कर मस्तिष्क पर बाँधना चाहिए।

धतूरे के विष पर—लाल एरण्ड की जड़ को पानी में पीस-कर देना चाहिए। इससे धतूरे का विष तुरन्त उतर जाता है।

संधिवात पर—एरण्ड का तेल मलना चाहिए। आँख की फूली पर लाल एरण्ड का दूध आँख में आँजना चाहिए।

वृषण रोग पर—एरण्ड का तेल दूध या गोमूत्र के साथ देना और लेप करना चाहिए।

वातरक्त पर—एरण्ड, वासा और अमृता का काढ़ा एरण्ड के तेल में मिला कर देना चाहिए।

पेट की वायु पर—एरण्ड के तेल को सोंठ के काढ़े के साथ देना चाहिए।

पीठ, कमर, कन्धे, पेट और पैरों के शूल पर—एरण्ड के तेल को गोमूत्र के साथ पिये; अथवा एरण्ड का गूदा दूध में मिलाकर उस दूध का खोवा बनाये और खाये।

बालकों के श्वाश रोग पर—पान पर एरण्ड का तेल चुपड़े और सेंककर बालक के पेट पर रखे।

बालकों के पेट के कृमि पर—एरण्ड का तेल गरम पानी के साथ देना चाहिए अथवा एरण्ड का रस शहद में मिलाकर पिलाना चाहिए।

बिच्छू के विष पर—एरण्ड के पत्तों का रस, शरीर के जिस भाग की ओर दंश न हुआ हो, उस ओर के कान में डाले और बहुत देर तक कान को ज्यों-का-त्यों रहने दे। इस प्रकार दो-तीन बार डालने से बिच्छू का विष उतर जाता है।

भस्मक रोग पर—दूध अथवा घी के साथ एरण्ड का तेल देना चाहिए।

श्वास चलने पर—ढाई तोला एरण्ड के तेल में पाँच तोला शहद मिलाकर रख ले और प्रातः सायं एक-एक चमचा पी ले।

सर्प दंश पर—चार चमचे एरण्ड के रस में १ चमचा जल मिलाकर पिलाये और दंश पर एरण्ड के पत्ते पीस कर बाँधे; इससे क़ै होकर विष तुरन्त उतर जाता है।

निद्रा न आने पर—एरण्ड के अंकुर बारीक पीस कर उनमें थोड़ा सा दूध मिलाये और कपाल तथा कान के पास लेप करे।

कंठमाल पर—एरण्ड और टेसू की जड़ को चावल के धुले हुए जल में घिस कर लेप करे।

सुख से प्रसव होने के लिए—एरण्ड की जड़ को घी में पीसकर पीना चाहिए।

पांडु रोग पर—एरण्ड के डंठल दही में पीस कर ६-७ दिन तक देना चाहिए; इससे शरीर में जरा सुस्ती आ जाती है; परन्तु एरण्ड की जड़ को शहद के साथ देने से बहुत लाभ होता है।

पीनस रोग पर—एरण्ड के तेल को तपा कर रख ले और जिस ओर नाक में पीनस हो गया हो, उस ओर के नथुने से, उस तेल को दिन मे कई बार सूँघे।

योनि-शूल पर—एरण्ड की जड़ और सोंठ को घिस कर योनि पर लेप करे।

उरुस्तम्भ और गृध्रसीवायु (पीठ, कमर, कन्धे, पेट और पैरों का शूल) पर—एरण्ड के तेल को गोमूत्र मे मिलाकर देना चाहिए।

बच्चों के दस्तों पर—एरंड और चूहे की लेंडी का चूर्ण नीबू के रस में मिलाकर बच्चों की नाभि और गुदा पर लेप करना चाहिए।

पिसा हुआ काँच खा लेने पर—तीन तोला एरंड का तेल पिलाना चाहिए।

पित्त रोग पर—गाय के दूध के साथ एरंड का तेल देना चाहिए।

मस्तक शूल पर—एरण्ड की जड़ को भाँगरे के रस में घिसकर नाक में लगाकर सूँघे, इससे छींक आकर मस्तक शूल नष्ट हो जाता है।

पांडु रोग पर—चार तोला गाय के ताजे दूध मे दो तोला एरंड के वृक्ष की छाल को पीस कर रस निकाले और एक बार नित्य, पाँच दिन तक पीने से कठिन-से-कठिन रोग अच्छा हो जाता है। नर्म डंठलों का रस छः माशा दूध के साथ से भी बहुत लाभ होता है। जब तक इन औषधियों को पिये, तब तक नमक न खाये।

होठ फटने पर—रात्रि को एरंड का तेल लगाना चाहिए।

आमवात पर—एरंड का गूदा और सोंठ सम भाग में लेकर कूट ले और उसमे उतनी ही शक्कर डालकर गोली बना कर रख ले। इन गोलियों को नित्य प्रात.काल एक-एक करके खाना चाहिए। एरंड के तेल को सोंठ के काढ़े के साथ पिलाने से भी लाभ होता है।

कटि शूल और हृदय रोग पर—एरंड की जड़ का काढ़ा जवाखार के साथ देने से हृदय रोग और कमर के शूल का नाश हो जाता है।

कान में कीड़ा घुस जाने पर—एरंड का गाढ़ा और पुराना तेल एक-दो दिन कान में डालना चाहिए। इससे कीड़ा मर जाता है। फिर कीड़े को युक्ति से बाहर निकालना चाहिए।

गुल्म पर—ताजे दूध में एरंड का तेल मिलाकर पीना चाहिए।

प्लीहोदर पर—एरंड की जड़ को पत्तों-सहित मिट्टी के बर्तन में भर कर मुँह बन्द करके अजवाइन का पुट देना चाहिए। पश्चात् उसको कूट कर उसकी एक तोला भस्म चार तोला गोमूत्र मे पिलाये।

नल फूलने, शरीर में शूल होने और पेटके वायु पर—एक तोला एरण्डमूल को थोड़ा कूटकर आधा सेर पानी में मन्दाग्नि पर उसका काढ़ा बनाये। जब अष्टमांश यानी पाँच तोला रह जाय, तब उसे छानकर शहद के साथ देना चाहिए। यह काढ़ा दस्त भी साफ लाता और सूजन को भी मिटाता है।

स्त्रियों के स्तन में दूध के कारण आई हुई सूजन और उनके शूल पर—एरण्ड के पत्तों की पुल्टिस बाँधनी चाहिए।

स्तन में दूध कम करने के लिए—एरण्ड के पत्तों से स्तन सेंकने चाहिए।

जोड़ों की सूजन और मामूली सूजन पर—एरण्ड के पत्ते गरम करके बाँधना और एरण्डमूल का काढ़ा पीना चाहिए। अथवा एरण्ड के पत्तों और बीजों की पुल्टिस बनाकर सेंक करना चाहिए।

पाण्डुरोग पर—आधा तोला एरण्ड के पत्तों का रस, एक तोला शक्कर डालकर पिलाना चाहिए।

गृध्रसी वायु पर—एरण्ड के दस बीज लेकर नौ टंक दूध में दो तोला शक्कर के साथ डालकर पकाये। जब पकते-पकते लपसी की तरह गाढ़ा हो जाय, तब रोज सुबह के वक्त खाये। इससे एक दो अच्छे जुलाब लगते हैं और थोड़े ही दिनों में लाभ होता है।

पेट में दर्द होकर बार-बार दस्त होने, आमांश, पेट

फूलने और संधिवात पर—एरण्ड के तैल का जुलाब देना चाहिए। इसका जुलाब बहुत ही उत्तम होता है। इससे पेट में दर्द नहीं होता और पानी की तरह पतले दस्त भी नहीं होते ; केवल मल-शुद्धि होती है। यदि कभी इसका जुलाब नहीं लगता है, तब भी यह कोई हानि नहीं पहुँचाता। छोटे बच्चों से लेकर अशक्त बूढ़ों तक के लिए यह समान उपयोगी है। सोंठ के काढ़े के साथ पीने से एरण्ड के तैल की दुर्गन्ध कम हो जाती है। अथवा मट्ठे से कुल्ला करके एरण्ड का तैल पीने से उससे अरुचि नहीं होती।

प्रसूति सुगमता से होने के लिए—पाँचवें महीने के पश्चात् गर्भवती को प्रति मास एक बार पाँच तोला तक एरण्ड का तैल देना चाहिए और नवें महीने से प्रति सप्ताह देना चाहिए। इससे प्रसूति सुगमता से होती है।

अण्डवृद्धि पर—प्रतिदिन सुबह एरण्ड के तैल का जुलाब देना चाहिए और रोज दो बार उससे मालिश करवानी चाहिए।

बबूल

बबूल के वृक्ष भी बहुत बड़े होते हैं। संस्कृत में इसे बब्बुल, हिन्दी में बबूल या कीकर, गुजराती में बावल, बंगला में बावला, मराठी मे बाभूल, कर्नाटकी में जाली, तैलङ्गी मे बार्बुरमु, तामील और मलयलम में करुवेल, लैटिन में एकेशिया अरेबिका, फारसी में मुगिला, अरबी में अमुगिला और अंग्रेजी में एकेशिया ट्री, गमअरेबिक कहते हैं। ये काँटेदार होते हैं। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है। उससे गाड़ी के पहिये तथा अनेक चीजें

बनती हैं। बबूल के वृक्ष से सफ़ेद गोंद उत्पन्न होता है। यह बहुत ही पौष्टिक और कई कामों में उपयोगी होता है। बबूल की छाल रंग के काम में आती है। इसकी फलियों का अचार और शाक भी बनाया जाता है। गुजरात में इसकी फलियाँ—जिनको वहाँ "परड़ा" कहते हैं—ढोरों को खिलाई जाती हैं। इससे गाय, भैंस आदि अधिक दूध देती हैं। खाँसी में भी इनका उपयोग होता है। बबूल की दतौन दाँतों की जड़ जमाती है।

बबूल का वृक्ष—ग्राही, कड़वा, मधुर, स्निग्ध, शीतल, उष्ण और फीका होता है; तथा रक्त-विकार, आँव, कफ, कुष्ठ, कृमि, पित्त, दाह ऊर्ध्वरस रक्तातिसार, वायु और प्रमेह का नाश करता है।

बबूल के पत्ते—ग्राही, रुचिकर, तीक्ष्ण और उष्ण होते हैं; तथा ऊर्ध्वरस, अर्श, कफ, वायु, खाँसी और पुंसत्व का नाश करते हैं।

छोटा बबूल—फीका और उष्ण होता है; तथा पित्त, दाह, वात रोग और कफ को नष्ट करता है।

उपयोग—

मुख रोग पर—बबूल की छाल के चूर्ण को पानी में उबालकर, उससे कुल्ले करने चाहिए।

अस्थिभंग पर—बबूल के बीजों का चूर्ण तीन दिन तक शहद के साथ सेवन करने से अस्थिभंग दूर हो जाता है और अस्थि वज्र के समान मजबूत हो जाती है।

नहारू पर—बबूल के बीजों को गो-मूत्र में घिसकर लेप करना चाहिए।

अतिसार पर—बड़े बबूल के पत्तों का रस निकाल कर पिलाना चाहिए। इससे सब प्रकार का अतिसार नष्ट हो जाता है।

धातु-पुष्टि के लिए—एक हाथ लम्बा और एक हाथ चौड़ा स्वच्छ कपड़ा ले, पश्चात् बबूल की कच्ची फलियों के रस में कपड़े को भिगोकर सुखा दे। जब सूख जाय, तब फिर भिगोकर सुखा दे। इस प्रकार उस कपड़े को चौदह बार भिगोकर सुखा ले। इसके पश्चात् उसके चौदह टुकड़े करके रोज एक टुकड़ा पावभर दूध मे उबाले और शक्कर मिलाकर पी जाय; इससे धातु की पुष्टि होती है।

पागल कुत्ते के विष पर—बबूल के पत्तों के रस में गाय का घी और कस्तूरी मिलाकर सेवन करना चाहिए, अथवा एक आने भर बबूल के पत्तों का रस तीन दिन तक पीना चाहिए।

बद पर—साँप की केंचुली पर बबूल का गोंद चुपड़ कर उसकी पट्टी बाँधनी चाहिए।

पेट-दर्द और अतिसार पर—बबूल की छाल का रस दही में मिलाकर पीना चाहिए।

अम्लपित्त पर—बबूल के पत्तों का काढ़ा करके उसमें एक माशा आम का गोंद मिलाना चाहिए। यह काढ़ा रात्रि को बनाना और प्रातःकाल पीना चाहिए। सात दिन तक पीने से अम्लपित्त नष्ट हो जाता है।

रक्त-प्रदर पर—बबूल की फलियाँ, आम के मौर और मोच रस के वृक्ष की छाल और लसोड़े के बीज का चूर्ण दूध में मिला कर पिलाना चाहिए। इससे रक्त-प्रदर का तुरन्त नाश हो जाता है।

भूल से किरासिन या मिट्टी का तेल पी लेने पर—बबूल के गोंद का पानी नौ बार पीना चाहिए। हर एक खुराक पीने के पश्चात् पाव भर दूध पी लेना आवश्यक है और तेल पेट

में जाते ही मीठे तेल से कुल्ला करने चाहिए ; इससे मुख में छाले नहीं होते।

आखों से जल बहने पर—बबूल के पत्तों का गाढ़ा काढ़ा बना कर उसमें थोड़ी शहद मिला कर अंजन करना चाहिए।

मुख रोग पर—बबूल और जामुन की छाल का काढ़ा बनाकर उसमें फूली हुई फिटकिरी डालकर कुल्ले करना चाहिए।

रेचन के लिए—बबूल की फलियों का चतुर्थांश काढ़ा बना कर उसमें मायफल का चूर्ण मिलाकर पीना चाहिए। इसे पीने के पश्चात् जितने पान खाये जायँगे, उतने ही दस्त होंगे।

प्रमेह पर—बबूल के अंकुर सात दिन तक सुबह-शाम एक-एक तोला शक्कर के साथ खाने से प्रमेह का नाश हो जाता है।

कान बहने पर—बबूल की छाल का काढ़ा पतली धार से कान में डालना चाहिए। पश्चात् बारीक वस्त्र से लपेट कर एक सलाई कान में डालकर फेरनी चाहिए और फूली हुई फिटकरी का पानी कान मे डालना चाहिए।

उपदंश के घावों पर—बबूल के पत्तों का चूर्ण करके लेप करना चाहिए।

पुष्टि के लिए—गेहूँ की सूजी और बबूल के गोंद का चूर्ण करके घी में सेंकना चाहिए। पश्चात् शक्कर का पाक बनाकर बादाम, चिरौंजी, पिश्ता, बेदाना, और सालम मिश्री इत्यादि मसाले मिला कर उसके लड्डू बनाकर खाना चाहिए।

आँख दुखने और उसकी जलन शान्त करने के लिए—बबूल के पत्ते पीस कर, रात को उसकी टिकिया-सी बनाकर आँख पर बाँधनी चाहिए।

शक्ति के लिए—बबूल के गोंद को मामूली-सा कूटकर घी में तले। तलने से वह फूल जाएगा। फिर उसमें उससे दुगनी शक्कर डालकर किसी बर्तन में निकाल कर रख ले। इच्छानुसार तोला-दो-तोला गोंद रोज खाने से शक्ति बढ़ती है।

अतिसार—बबूल के पत्तों के रस में मिश्री और शहद डालकर देने से लाभ होता है।

बहेड़ा

बहेड़े का वृक्ष बहुत ही ऊँचा और फैला हुआ होता है। यह हर्र के वृक्ष के जैसा मालूम होता है। इसे संस्कृत में विभीतक, हिन्दी और बंगला में बहेड़े, गुजराती में बेहेड़ाँ, मराठी में बेयड़ा, कर्नाटकी में तारीकायी, मलयलम में तान्नि, तामील में अक्कनडं तैलिङ्गी में बह्रा, फारसी में बलेले, लैटिन में टरमिने लिया बेलिरिकां और अंग्रेजी में मायेरोवेलन्-बेलिरिक् कहते हैं। इसमें गोल फल लगते हैं उन्हें "बहेड़ा" कहते हैं। बहेड़े के पक जाने पर वृक्ष के नीचे उनके ढेर लग जाते हैं। बहेड़ों के अन्दर सफेद गूदा होता है। उसको खाने से नशा आ जाता है।*

बहेड़े का वृक्ष—तीक्ष्ण, कटु, लघु, सारक, पक जाने पर मधुर, उष्ण, शीतस्पर्श, भेदक, रुक्ष, चक्षुष्य, और केशवर्द्धक होता है; तथा कफ, पित्त, कास, कृमि, स्वरभंग, नासिका रोग, रक्त-दोष, कण्ठ रोग और हृद् रोग का नाश करता है।

बहेड़े का गूदा—लघु, कषाय और मादक होता है; तथा

* बहेड़े के वृक्ष वनों और पर्वतों पर होते हैं। इसके पत्तों की आकृति बड़ के पत्तों की तरह होती है। इसके फूल अत्यन्त छोटे होते हैं। इसके फल एक ही डाली में झुण्ड-के-झुण्ड लग जाते हैं। छाल काम में आती है। इसकी मात्रा तीन माशा तक है।

तृषा, क़ै, कफ़, वायु, श्वास और हिचकी का नाश करता है। आँवले का गूदा भी इसीके समान लाभदायक होता है।

श्वास पर—बकरी के मूत्र में बहेड़ा मिलाकर उसकी गोली बनाये और शहद के साथ एक-एक खाये।

दाह-सम्बन्धी पीड़ा पर—बहेड़े के गूदे को बारीक पीस कर शरीर पर लेप करने से दाह-सम्बन्धी पीड़ा दूर हो जाती है।

कफ रोग पर—बहेड़े के पत्ते और उससे दुगुनी शक्कर का काढ़ा बनाकर पीना चाहिए।

खाँसी पर—बहेड़े की छाल को मुँह में रख कर उसका अर्क चूसना चाहिए। इससे खाँसी तुरन्त अच्छी हो जाती है।

कंठ-सर्प पर—बहेड़े के वृक्ष की छाल को पानी में पीस कर पिलाना चाहिए। ढोरों को कंठ-सर्प होने पर भी यह औषधि पिलाना चाहिए।

ढोरों के घाव में कीड़े पड़ जाने पर—बहेड़े की छाल को मोटी रोटी के साथ खिलाना चाहिए।

भिलावाँ लग जाने पर—बहेड़े के गूदे को घिस कर लगाना चाहिए, अथवा बहेड़े के गूदे, मधुयष्टि, नागरमोथा और चंदन का लेप करना चाहिए।

बहेड़े का मुरब्बा—बहेड़ों को डूबते पानी के बर्तन में डाल कर उबाल ले और उसके पानी में शक्कर डालकर गाढ़ी—मुरब्बे के लायक—चाशनी तैयार कर ले और उसमें उबाले हुए बहेड़े तथा छोटी पीपल का चूर्ण डाल कर किसी बर्तन में रख दे। ज्यों-ज्यों वह मुरब्बा पुराना होता जायेगा, त्यों-त्यों विशेष गुण दिखलायेगा। इस मुरब्बे से खाँसी तुरन्त दूर हो जाती है।

कदम्ब

कदम्ब का वृक्ष बड़ा होता है। यह सर्वत्र प्रसिद्ध है। इसे संस्कृत, हिन्दी, गुजराती, अरबी और तामील में कदम्ब, मराठी में कळंब, तैलिङ्गी में कदमचेट्ट, लैटिन में एन्थोसिफाल्स, या कडंवा और कर्नाटकी में कड़उ या कड़वालमर कहते हैं। इसके पत्ते बड़े और मोटे होते हैं। इससे गोंद भी निकलता है। कदम्ब के वृक्ष प्राय: गाँवों में होते हैं। इसके पत्ते लम्बे, गोल और महुए के जैसे और इसके फल नीबू के समान होते हैं। फलों के ऊपर ही छोटे-छोटे सुगन्ध-युक्त फूल लगते हैं। कदम्ब की कई जातियाँ होती हैं—राजकदम्ब, धाराकदम्ब, धूलिकदम्ब, भूमिकदम्ब, और कदम्बिका।

कदम्ब का वृक्ष—तीक्ष्ण, कड़वा, तूरा, खारा, शुक्रवर्द्धक, शीतल, गुरु, विष्टम्भक, रुक्ष, स्तन्यप्रद, ग्राही और कर्णकर होता है, तथा रक्त रोग, पित्त, कफ, व्रण, दाह, विष, मूत्रकृच्छ्र और वायु का नाश करता है।

कदम्ब के अंकुर—फीके, शीतवीर्य, अग्निदीपक और हलके होते हैं। ये अरुचि, रक्तपित्त और अतिसार को दूर करते हैं।

कदम्ब के फल—रुचिकर, भारी, उष्णवीर्य, और कफकर होते हैं। पके फल कफकर, पित्तकर और वातनाशक होते हैं।

उपयोग—

बच्चों का गला बैठ जाने पर—कदम्ब की छाल को ठंढे पानी में कूटकर उसका रस निकालना चाहिए और उसमें जीरा और शक्कर डाल कर पिलाना चाहिए। इसी रस को मस्तिष्क पर

भी पाँच-छः बार लगाना चाहिए। तीन दिन तक इस नियम का पालन करके चौथे दिन स्नान कराके करैले का तैल मस्तिष्क पर लगाना और कदम्ब की छाल को पानी में घिसकर उससे स्नान कराना चाहिए। गला बैठ जाने की पहचान यह है कि बालक को ज्वर आ जाता है, प्यास बहुत लगती है, तालू की जगह गड्ढा हो जाता है, तथा कान के किनारों और नाक के नसकोरों में बहुत धुकधुकी होती है। बच्चों का गला बैठ जाने की यही पहचान है।

आँख दुखने पर—कदम्ब की छाल के रस में अफीम और फिटकिरी डालकर नीबू के रस में मिलाये और गरम करके आँखों पर लेप करे।

मुख रोग पर—कदम्ब की छाल के काढ़े से कुल्ले करना चाहिए।

पीला चम्पा

चम्पे का वृक्ष बहुत बड़ा होता है। इसे संस्कृत में सुवर्ण-चम्पक, हिन्दी में पीला चम्पा, गुजराती में केसरी चम्पो, या राय चम्पो, मराठी मे सोन चम्पा, कर्नाटकी में संपगे, तैलिङ्गी में चम्पागीपुवुलु, या चम्पकमु तामोल में चम्बकं, मलयलम में चम्पकं, और लैटिन में मिचेलिया चम्पका कहते हैं। आठ-दस वर्ष के पश्चात् इसमें फूल आने लगते हैं। इसमें वर्ष में दो बार फूल आते हैं—गर्मी और वर्षा में। इसके फूल देखने में बहुत सुन्दर और पीले रंग के होते हैं। अधिक सुगंधित होने के कारण ये खराब हवा को भी शुद्ध बना देते हैं।

चम्पा का वृक्ष—कड़वा, तीक्ष्ण, शीतल, मधुर, वृष्य, हृद्य,

सुगंधित और भ्रमर का नाश करनेवाला होता है ; तथा दाह, पित्त, कफ, रक्त-दोष, मूत्रकृच्छ्र, वात, कुष्ठ, विष, कृमि, कंडू और व्रण का नाश करता है।

उपयोग—

प्रदर पर—चम्पे की छाल का रस या काढ़ा पिलाना चाहिए।

बच्चों के डिब्बा रोग पर—पान के रस में चम्पे की कली और शुद्ध की हुई सज्जी घोट कर पिलाना चाहिए।

विषम ज्वर पर—चम्पे की जड़ का काढ़ा पिलाना चाहिए।

चिरौंजी

चिरौंजी का वृक्ष बड़ा होता है। इसे संस्कृत में चार या राजादन, हिन्दी में चिरौंजी, गुजराती में चारोली, कर्नाटकी में मोरांप्य, मोरवे, मोरटी या चावलि, तामील में कारप्यारुक्कु, मलयलम में मुरल, तैलिङ्गी में चारुपप्पु या चारुमामिंडी, फारसी में बुकलेखाजा, अरबी में हबुस्माना और लैटिन में बुचेनेनियालेटीफोलिया कहते हैं। कोंकण, नागपुर और मलाबार-प्रान्त में इसके वृक्ष बहुत होते हैं। इसके पत्ते लम्बे और मोटे महुए के पत्तों के समान मोटे होते हैं। इसकी भी पत्तल बनाई जाती है। इसकी छाया बहुत ठण्ढी होती है। इसकी लकड़ी से कोई चीज़ नहीं बनती। इसमें छोटे-छोटे फल लगते हैं। फलों के अन्दर से अरहर के समान बीज निकलते हैं। उन्हीं को चिरौंजी कहते हैं। चिरौंजी एक मेवा है। इसे पकवानों और मिठाइयों में डाला जाता है। इसका स्वाद मधुर होता है। इसका तेल भी निकलता है। वह बादाम के तैल के समान ठंढा और लाभदायक होता है।

चिरौंजी का वृक्ष—मधुर, वृष्य, खट्टा, गुरु, सारक, मलस्तंभक, स्निग्ध, शीतल, वातुवर्द्धक, कफकर, दुर्जर, बलकर और प्रिय होता है ; तथा वात, पित्त, दाह, ज्वर, तृषा, वातरोग, रक्त-दोष और क्षत-क्षय का नाश करता है।

चिरौंजी का फल—फीका और कफ़कारक होता है ; तथा रक्तपित्त रोग का नाश करता है।

चिरौंजी के वृक्ष का सत्त्व—मधुर, वृष्य, स्निग्ध, शीतल, मलस्तंभक, आवर्द्धक, दुर्जर, हृद्य, शुक्र और वात-पित्त-नाशक होता है।

चिरौंजी की गरी—मधुर और वृष्य होती है ; तथा दाह और पित्त का नाश करती है।

चिरौंजी का तैल—मधुर, जड़, किंचित् उष्ण, कफ़कर तथा पित्त और वात का नाशक होता है।

उपयोग—

रक्तातिसार पर—चिरौंजी के वृक्ष की छाल को दूध में पीस कर शहद के साथ पीना चाहिए।

शीत-पित्त पर—चिरौंजी को दूध मे पीस कर शरीर पर लेप करना चाहिए।

भिलावाँ

भिलावें का वृक्ष बहुत बड़ा होता है। इसे संस्कृत में भल्लातक, हिन्दी में भिलावाँ, गुजराती में भीलामो, बंगला और मलयलम में भेला, मराठी में बीबा, तामील मे कॅगोटेमारं, कर्नाटकी में केरू, गेरू या क्यारू, तैलिङ्गी में नाल्लजीड़ी, फ़ारसी

में बिलांदुर, अरबी में हबुलकल्ब, लैटिन में सेमीकार्पसएनेकार्डि-यम् और अंग्रेजी में मार्किङ्ग नट कहते हैं। इसके फल पक जाने पर खाने के काम में आते हैं। इसके बीजों को मराठी में "गोडंबो" कहते हैं। हमारे देश मे भिलावाँ एक उत्तम औषधि माना जाता है। इसके बीज पौष्टिक, वायुनाशक और दाँत को मज-बूत करनेवाले होते हैं। वायु से शरीर जकड़ जाने पर भिलावाँ बाँधा जाता है। भिलावाँ शरीर पर लग जाने से तुरन्त छाले उठ आते हैं।

भिलावें का वृक्ष—कड़वा, फीका, तीक्ष्ण, उष्ण, शुक्रकर मधुर और लघु होता है; तथा कफ, वायु, कृमि, अर्श, उदर, आनाह, प्रमेह, संग्रहणी, कुष्ठ, श्वेतकुष्ठ, गुल्म, अग्निमांद्य, व्रण-विकार, रक्त-विकार और ज्वर का नाश करता है।

भिलावाँ—फीका, धातुप्रद, वृष्य, बलप्रद, लघु, मधुर, उष्ण, पाचक, स्निग्ध, अग्निवर्द्धक, तीक्ष्ण, छेदक, भेदक और मेधाकर होता है; तथा कफ, श्वास, व्रण, श्रम, आनाह, आध्मान, संग्रहणी, मलबद्धता, कृमि, शूल, उदर, अर्श, कुष्ठ, ज्वर, गुल्म और रक्तपित्त का नाश करता है।

भिलावें की छाल—मधुर, स्निग्ध, गीली होने पर तीक्ष्ण, लघु, भेदक, उष्ण, छेदक, दीपन और मेधाकर होती है; तथा वायु, कुष्ठ, व्रण, उदर, कफ, अर्श, संग्रहणी, गुल्म, सूजन, आनाह, ज्वर और कृमि का नाश करती है।

भिलावें के बीज—मधुर, वृष्य, दीपन और तर्पण होते हैं; तथा अरुचि, दाह, पित्त और वायु का नाश करते हैं।

उपयोग—

अस्थिभंग की पीड़ा पर—भिलावें के चार टुकड़ों को

पाव भर घी में तलकर निकाल ले। पश्चात् उस घी का हलुआ बना कर खाने से अस्थिभंग की पीड़ा नष्ट हो जाती है। यह परीक्षित औषधि है।

कृमि पर—भिलावें के फल दही या इमली के साथ खाना चाहिए।

भिलावाँ लगने से छाले उठ आने पर—तिल को पीसकर काली मिट्टी में मिलाकर लेप करना चाहिए अथवा दूध या मक्खन में तिल को पीसकर लगाना चाहिए। गोले का तेल और बहेड़े का गूदा लगाने से भी छाले अच्छे हो जाते हैं।

कृमि पर—भिलावें के टुकड़े को दूध में तपा कर पिलाना चाहिए।

फोड़ों पर—भिलावें को चूने में मिला कर बाँधना चाहिए।

खाँसी पर—भिलावें को दिये पर रखकर पिघलाये। जब उसमें से पिघलकर रस निकलने लगे, तो दूध में उस रस की तीन-चार बूँदें डाल कर पिये।

आधाशीशी पर—भिलावें के तैल को बारीक सलाई पर लगाये और जिस ओर का मस्तक दुखता हो, उसके दूसरी ओर की आँख के—नाक से मिलते हुए—कोने पर लगाये। तैल अन्दर जाने से आँख में कुछ चिनमिनाहट मालूम होती है और आँसू निकलते हैं; इसलिए तैल लगाने के पूर्व घी आँज लेना चाहिए। इससे आधाशीशी का दर्द कभी नहीं होता।

सूजन पर—भिलावें को घिसकर लेप करना चाहिए।

फोड़ा पकाने के लिए—साबुन में भिलावें का तैल डाल कर लेप करना चाहिए।

फोड़े पर—कत्थे और गुड़ में भिलावें का तैल डालकर लगाना चाहिए और इसके पश्चात् चूना घिसना चाहिए।

कान पक जाने पर—एक पैसे के बराबर मक्खन पान पर रखकर उसमें भिलावें का तैल डाले। पश्चात् उसे पतला करके रुई के द्वारा कान में डाले। इस प्रकार सात दिन तक डालने से कान अच्छा हो जाता है।

जीभ काली हो जाने पर—मक्खन में भिलावाँ डालकर तपाये और जीभ पर लगाये।

प्रमेह पर—गाय के ताजे दूध में भिलावाँ घिसकर सात दिन तक पिलाना चाहिए।

सेंदुर खा लेने से गला बैठ जाने पर—पान में चतुर्थांश भिलावाँ डालकर सुबह-शाम खाना चाहिए।

खाज पर—भिलावाँ और राल को तिल्ली के तैल में तपाकर लगाना चाहिए।

दाद पर—भिलावें को तिल्ली के तैल में घिसकर लगाना चाहिए।

पैर फट जाने पर—भिलावें और राल को तिल्ली के तैल में तपाकर लगाना चाहिए।

अंडवृद्धि पर—भिलावाँ और हल्दी को घिसकर लेप करना चाहिए और कंडे की आग से सेंकना चाहिए।

मूर्च्छा पर—पैर के तलवे के मध्य भाग में जलता हुआ भिलावें लगाना चाहिए; यदि इससे मूर्च्छा न टूटे, तो गले की दोनों नसों पर भिलावें का दाग देना चाहिए।

संधिवायु, पक्षाघात आदि वात-विकारों पर—भिलावें के फल, भुँजे हुए चने की दाल, नारियल की गरी, गुड़ और घी को समभाग में लेकर कूट ले और पाँच-पाँच तोला के लड्डू बनाकर रोज प्रातःकाल एक-एक लड्डू खाये।

घाव पर—भिलावाँ, लहसुन, प्याज और अजवाइन को तिल्ली के तैल में तपाकर, उस तैल को लगाना चाहिए।

दस्त साफ़ न होने, पेट फूलने और भूख न लगने पर—उत्तम भिलावाँ लेकर उसमें सींक या लोहे की मोटी सलाई कोंचे और उस सलाई या सींक को दिये की लौ पर रखे। ऐसा करने से भिलावें में से तैल निकलता है। उस तैल को एक पान पर एक तोला शक्कर रखकर उस पर डालना चाहिए और रोज़ सुबह खाना चाहिए।

बच्चों के कफ और खाँसी पर—भिलावाँ के तैल की दो बूँदें देनी चाहिए।

कृमि पर—भिलावाँ का तैल दूध में देना चाहिए।

वायु, पेट में गड़गड़ाहट होने और बार-बार डकारें आने पर—रोज़ सुबह-शाम भोजन से पहले दो भिलावों का तैल (सोलह वर्ष से अधिक उम्र वाले सशक्त मनुष्य को) आधा तोला घी में डालकर देना चाहिए। इससे पेट के सब विकार नष्ट होते हैं।

आमांश पर—एक घूँट के बराबर दूध मे थोड़ी-सी शक्कर डालकर उसमें पाँच भिलावों का तैल टपकाये। बाद में प्रत्येक दस्त के बाद इसे देना चाहिए। दो-चार बार करने से ही फ़र्क़ मालूम होने लगेगा। आमांश रुक जाने पर भी दिन मे दो या तीन बार यह औषधि देते रहना चाहिए। इससे पुनः आमांश होने का भय नहीं रहता। पेट के सभी रोग इससे आराम होते हैं। पर एक बात का ध्यान रखना चाहिए। भिलावें का सेवन करते समय हलका भोजन करना चाहिए। पुराने चावल और दूध हल्का भोजन है।

वातार्श पर—अच्छे भिलावें लेकर पहले दिन एक, दूसरे दिन दो, तीसरे दिन तीन, चौथे दिन चार और पाँचवें दिन पाँच, अथवा पहले दिन तीन, दूसरे दिन छः, तीसरे दिन नौ, चौथे दिन बारह और पाँचवें दिन पन्द्रह तक देकर फिर इसी प्रकार क्रमानुसार प्रमाण घटाकर देना चाहिए। भिलावें को सलाई से कोंचकर या सरोते से थोड़ा चीर कर आधा सेर पानी के साथ एक कलई के बर्तन में डालकर पकाये। अष्टमांश यानी पाँच तोला पानी शेष रहने पर उसे बिना छाने ही एक कलई की कटोरी में निकाल ले। भिलावें का अंश अंदर न आने देना चाहिए। उसमे दस तोला दूध डालकर पिलाना चाहिए। इसे भिलावें का दूध कहा जाता है। इससे वातार्श नष्ट होता है।

बुद्धि बढ़ाने के लिए—उपर्युक्त प्रकार से भिलावें का उतने ही प्रमाण में काढ़ा बनाकर पाँच तोला शेष रहने पर उसमें उतना ही दूध डालकर दिन में एक बार पीना चाहिए। इससे दस्त साफ होते, भूख लगती, शरीर में चपलता आती और बुद्धि बढ़ती है।

अग्निमांद्य पर—उपर्युक्त विधि से पाँच भिलावों का काढ़ा बनाकर उसमें दूध डालकर पीना चाहिए। इस औषधि का सेवन तब तक बन्द न करना चाहिए, जब तक कि भिलावों की संख्या एक हजार तक न पहुँच जाय, एक हज़ार भिलावों का सेवन करनेवाले का अग्निमांद्य नष्ट होता, वह सदैव नीरोग रहता और दीर्घायु होता है। चरकाचार्य ने आयुष्य बढ़ाने के जो योग बतलाये हैं, उनमें सबसे उत्तम यही 'भल्लातक-योग' है।

पेशाब अधिक आने और प्यास बहुत लगने पर—उपर्युक्त विधि से तैयार किया हुआ भिलावें का दूध पीना चाहिए।

अथवा पाँच भिलावों को कूटकर उसमें एक तोला नरम और सूखा हुआ बेल डाले। बाद में कलई के बर्तन में उसका आधा सेर पानी के साथ अष्टमांश काढ़ा बनाये और उसमें उतना ही दूध डालकर पिये।

कुष्ठ उपदंश और चर्म के समस्त रोगों पर—शक्ति के अनुसार रोज तीन या पाँच भिलावों का दूध पिलाना चाहिए। इसमें परहेज की सख्त आवश्यकता है। यों तो भिलावों के गरम होने के कारण प्रत्येक रोग में उसका सेवन करते समय परहेज करना यानी सिर्फ दूध-भात खाना चाहिए, पर कुष्ठ आदि असाध्य रोगों में इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए। नमक भी एकदम छोड़ देना चाहिए। नमक एकदम छोड़ देने से चालीस दिन में ही कुष्ठ रोगी को लाभ मालूम होने लगेगा।

अतिसार, आमातिसार और आमसंग्रहणीपर—लगभग दो तोला घी में अच्छे बड़े दो भिलावों का तैल डालकर दिन में तीन बार देना चाहिए।

बच्चों के कृमि पर—उम्र के प्रमाण में तीन माशा से लेकर छः माशा तक बायबिडंग लेकर उसका महीन चूर्ण करे और उसमें वह भीग जाय इतना भिलावें का तैल डालकर उसीके बराबर गुड़ मिलाये और छोटी गोली बनाये। इस प्रकार तीन माशा चूर्ण की गोली रोज सात दिन तक देने से लाभ होता है। पेट में दर्द होकर दस्त आना, अन्न न भाना, मुँह से लार बहना, नाक में अँगुली डालना, तेज बुखार आना, बुखार में अशक्ति आना और पेट फूलना आदि कृमि के साधारण लक्षण हैं। छोटे बच्चों में ये लक्षण दीखते ही उपर्युक्त औषधि देनी चाहिए।

प्रदर और सफेद प्रदर पर—दारु हल्दी को ठण्ढे पानी में घिसकर उसमें तीन माशा पूरे भिलावें का रस (तैल) टपका-कर एक चमचा घी और थोड़ी-सी शक्कर डालकर चाटना चाहिए।

स्त्रियों को प्रतिमास ठीक से रजोदर्शन होने पर—उप-र्युक्त विधि से पाँच भिलावों का आधा सेर पानी में अष्टमांश काढ़ा बनाकर उसमें पाँच तोला दूध डालकर पीना चाहिए। इससे आर्त्तव की शुद्धि होगी।

जोड़ों के दर्द में—आधा तोला शक्कर में भिलावें का तैल टपका कर उसकी गोली बनाकर गरम पानी के साथ देना चाहिए। इस प्रकार लगातार तीन रोज तक दिन में दो बार देना चाहिए।

गाँठ पर—यदि शरीर पर किसी जगह गाँठ हो गई हो, तो उसे बढ़ने न देकर उसके बीच के भाग पर भिलावें के तैल का गाढ़ा लेप करना चाहिए। दो-तीन बार ऐसा करने से उस जगह छाला हो जायगा और फिर स्राव आरम्भ हो जायगा। बहते-बहते जब गाँठ एकदम बैठ जाय, तब भी उसे कई दिन तक बहते रहने देना चाहिए; ताकि उसके पुनः जोर पकड़ने की सम्भावना न रहे। बाद में उस स्थान पर केवल गीलापन शेष रह जाता है। उस पर रोज थोड़ा शहद का हाथ लगाते रहना चाहिए। इससे वह सूख जाता है और भिलावें का घाव अच्छा हो जाता है।

श्लीपद रोग पर—श्लीपद रोग चमड़ी के अन्दर मेद इकट्ठा होने से होता है; अतः उसके होते ही पैर में एक-एक अंगुल के अन्तर पर भिलावें की मोटी पट्टी बाँधनी चाहिए। एक-दो बार ऐसा करने से छाले होकर स्राव आरम्भ हो जायगा। इससे

यदि जाड़ा लगकर बुखार आ जाय, तो घबड़ाना नहीं चाहिए। दो-तीन दिन में वह अपने आप उतर जाता है।

भिलावें का तैल निकालने की विधि—एक मिट्टी के घड़े में छोटा-सा छेद करके उसमें भिलावें भर दे और घड़े का मुँह ढकने से बिलकुल बन्द कर दे। फिर जमीन में थोड़ा गड्ढा करके उसमें एक बर्त्तन रखकर उस पर वह घड़ा रख दे। बाद में उस घड़े के आसपास खूब अच्छी तरह जमाकर कण्डे सुलगाये। आग बुझ जाने पर घड़ा उठाले। नीचे के बर्त्तन में इकठ्ठा पदार्थ ही भिलावें का तैल कहलाता है*।

कैथ

कैथ के वृक्ष सभी प्रान्तों में होते हैं; पर दक्षिण और गुजरात की ओर बहुत होते हैं। संस्कृत में कैथ को कपित्थ, हिन्दी में कैथ या कवोट, गुजराती में कोठी, बंगला मे कपेतबेल, मराठी में कवठ, कर्नाटकी में वेल्लु या बेलड़ा, तैलिङ्गी में एलांगाकाया, तामील में विलामारं, मलयलम में विलावु, लैटिन में फेरोनिया एलेफेन्टिनम्, और अंग्रेजी मे वुड एपल कहते हैं। यह वृक्ष बहुत बड़ा होता है। इसके फल को कैथ कहते हैं। यह बिल्वफल के समान होता है। लोग इसे खाने के काम में लाते हैं। अधपके कैथ के गूदे की चटनी बनाई जाती है। पके कैथ का मुरब्बा बहुत अच्छा बनता है।†

---

* जिसे भिलावाँ हानि करता हो, उसे सोच-विचार कर इसका उपयोग करना चाहिए।

† हिन्दुस्थान के वैद्य कैथ को ग्राही मानते हैं। कच्चे कैथ को दस्त और पेट के दर्द के लिए, और पके कैथ को गले की सूजन के लिए अत्यन्त लाभदायक बतलाते

कैथ का वृक्ष—मधुर, खट्टा, फीका, ग्राही, शीतल, वृष्य और कड़वा होता है ; तथा पित्त वायु और व्रण का नाश करता है।

कच्चे कैथ—ग्राही, उष्ण, रुक्ष, रुचिकर लघु, खट्टे, फीके और लेखन होते हैं ; तथा वायु और पित्त का नाश करते हैं।

पके कैथ—रुचिकर, खट्टे, फीके, ग्राही, मधुर, कण्ठशोधक, शीतल, गुरु, वृष्य और दुर्जर होते हैं ; तथा श्वास, क्षय, रक्त-रोग, कै, वायु, श्रम, विष, ग्लानि, तृषा, त्रिदोष, हिचकी और खाँसी का नाश करते हैं।

कैथ के बीज—हृद्रोग, मस्तक-शूल, विष और विसर्प का नाश करते हैं।

बीजों का तैल—फीका, ग्राही और मीठा होता है ; तथा पित्त, कफ, हिचकी, क़ै और चूहे के विष का नाश करता है।

कैथ के फूल—विष-नाशक होते हैं।

कैथ के पत्ते—क़ै, अतिसार और हिचकी का नाश करते है।

उपयोग—

पित्त शमन के लिए—कैथ का गूदा शक्कर के साथ खाना चाहिए ; अथवा कैथ के पत्तों का रस दूध में मिलाकर पिलाना चाहिए।

हैं। मीर मुहम्मदहुसेन का मत है कि इसकी पत्तियाँ शीतल होती हैं तथा इसके फल भी शीतल, पाचक, गले की सूजन दूर करनेवाले और दाँतों को मजबूत बनाने वाले होते हैं। इसके गूदे का शर्बत पीने से अरुचि दूर होती है। विषैले कीड़ों के काट लेने पर इसका गूदा बाँधना चाहिए। इसके गोंद को पीस कर शहद के साथ देने से दस्त और मरोड़ बन्द हो जाते हैं। चरक में कैथ खट्टा और ग्राही माना गया है ; तथा पत्तों के रस को अग्निदीपक और पाचक बतलाया गया है।

पाण्डु रोग पर—कैथ की कोंपलों का रस गाय के दूध मे मिलाकर रख ले और पाँच-पाँच तोला दिन में एक बार रोज पिये।

प्रदर पर—कैथ और बाँस की कोंपलों को बारीक पीसकर शहद के साथ दे।

धातु-पुष्टि और ठण्ढक के लिए—कैथ के वृक्ष की कोंपलों का चूर्ण दूध में मिलाकर शक्कर के साथ देना चाहिए।

चूहे के विष पर—कैथ के बीजों का तैल लगाना चाहिए।

हिचकी और श्वास पर—कैथ का रस शहद और पीपल के साथ देना चाहिए।

अजीर्ण पर—कैथ के गूदे में सोंठ, काली मिर्च और पीपल का चूर्ण शहद और शक्कर के साथ पीना चाहिए।

तेंदू

तेंदू के वृक्ष बहुत बड़े होते हैं। संस्कृत में इसे तिंदुकी, हिन्दी में तेंदू, गुजराती में टींबरू, मराठी में टेंमुरणी, कर्नाटकी में तुंमरी या जगलमर, फारसी में अबनुस, लैटिन में डायोस्पाइरोस या पंत्री ओप्टेरिस और अंग्रेजी में एबनी कहते हैं। इसके पत्ते बड़े और लम्बे होते हैं। इसमें आँवले के बराबर फल लगते हैं। उन्हें लोग खाते हैं। इसके पत्तों से बीड़ी बनाई जाती है। इन बीड़ियों के पीने से हृदय जर्जर हो जाता है। हृदय में पीला दाग पड़ जाता है। कंठ सूख जाता और कफ बढ़ता है। इतनी हानि होते हुए भी यह व्यसन बढ़ता जा रहा है। यह व्यसन साधारण मालूम होता है; परन्तु इससे बहुत ही हानि होती है। बुद्धि नष्ट

हो जाती है, शक्ति जाती रहती है, और आँख की ज्योति मन्द हो जाती है; इसलिए बीड़ी कभी नहीं पीनी चाहिए।*

तेंदू का वृक्ष—कड़वा, स्निग्ध, उष्ण और मधुर होता है; तथा वायु और व्रण का नाश करता है।

तेंदू के कच्चे फल—लेखन, ग्राही, शीतल, स्वादिष्ट, रूक्ष, लघु, मलस्तंभक, अरुचिकर, वातकर और कड़वे होते हैं।

पके फल—गुरु, स्वादिष्ट, मधुर, स्निग्ध और कफ़कर होते हैं; तथा प्रमेह, पित्त, रक्त-रोग और वायु का नाश करते हैं।

तेंदू की छाल—पित्त रोग का नाश करती है।

---

*तेंदू के फल के ताजे रस को उत्तरी हिन्दुस्तान के लोग घाव पर लगाते हैं। इसके फल को गरीब लोग खाते हैं। बीजों को सँभाल कर रखा जाता है। गुण में ग्राही होने के कारण दस्त लग जाने पर लोग इसे काम में लाते हैं।

अंग्रेजी औषधियों में तेंदू को बहुत ही ग्राही माना गया है। इसके फल को मसल कर उसका रस निकाल कर उबाल लेने से इसका सत्त्व बन जाता है। उसका रंग कुछ-कुछ लाल और भूरा होता है। पानी में डालते ही वह घुल जाता है। दस्त और पुराने शूल के लिए वह बहुत ही उपयोगी होता है। यदि गिर जाने से नस पर चोट लग जाय; अथवा खाल छिल जाय, तो तेंदू के फल का लेप करने से सूजन नहीं चढ़ती। सत्त्व को बनाते समय लोहे का बरतन काम में नहीं लाना चाहिए; क्योंकि इससे वह काला हो जाता है। अच्छी तरह से बनाये हुए सत्त्व का रंग लाख के जैसा होता है। तेंदू के बीज में से औषधि में काम लेने योग्य तैल निकलता है। बहुत से देशों में इसकी कोपलों का शाक बनाया जाता है। छाल को बारीक पीसकर घाव पर लगाते हैं। चरक में इसके कच्चे फलों को वात और पित्त का नाशक बताया गया है। सुश्रुत में रक्त-पित्त नाशक, दाह नाशक, योनि-दोष-नाशक, व्रण-नाशक और संग्राही कहा गया है। फल के रस का सत्त्व पुरानी संग्रहणी के लिए बहुत लाभकारी होता है।

उपयोग—

श्वास पर—तेंदू के फल की तीन माशे सूखी छाल चिलम में भर कर पीना चाहिए।

जुएँ मारने के लिए—तेंदू की छाल को गोमूत्र में घिस कर लेप करना चाहिए।

मौलसिरी

मौलसिरी का वृक्ष हिन्दुस्थान में सब जगह होता है। इसे संस्कृत, बंगला और कर्नाटकी में बकुल, हिन्दी में मौलसिरी या मोरसली, गुजराती में बरशोली या बोरसली, मराठी में बकुली या ओवारी, मलयलम में मकुराएलनी, तैलिङ्गी में पागड़ा, लैटिन में साइमुसोप्सइलेंजी, और अंग्रेजी में सुरीमूमेडलर कहते हैं। इसके वृत्त बड़े होते हैं। इसके पत्ते आम के पत्तों की तरह होते हैं। इसके फूल छोटे, सफेद, चक्र की आकृति के और सुगन्धित होते हैं। इनके मध्य में छिद्र होता है। मौलसिरी के फल बादाम के बराबर होते हैं, पक जाने पर उसका रंग सेंदुर के जैसा हो जाता है। इसके फूलों की सुगन्ध से वायु शुद्ध होती है। इनका इत्र बनाया जाता है। मौलसिरी की लकड़ी मज़बूत होती है; परन्तु वह इमारत आदि बनाने के काम में नही आती। समुद्र के पानी में वह बहुत वर्षों तक रह सकती है।

मौलसिरी का वृक्ष—शीतल, हृद्य, मधुर, फीका, हर्षप्रद, फल आने पर ग्राही, तीक्ष्ण, बलप्रद और गुरु होता है; तथा विष-दोष, दन्तरोग, कफ, पित्त, श्वेत कुष्ठ, और कृमि का नाश करता है।

मौलसिरी के फल—मधुर, स्निग्ध, फीके, शीतल, वातल, ग्राही और दन्तहितकारी होते हैं; तथा कफ और पित्त का नाश करते हैं।

मौलसिरी के फूल—रुचिकर, क्षीराढ्य, सुगन्धित, शीतल, मधुर, स्निग्ध, फीके, और दन्तरोग नाशक होते हैं।

उपयोग—

अतिसार पर—मौलसिरी के बीजों को ठण्डे पानी में घिसकर पिलाना चाहिए।

दाँत मज़बूत करने के लिए—मौलसिरी की छाल को दाँत से चबाने से दाँत मज़बूत होते हैं।

हृद्रोग पर—मौलसिरी के फूलों की माला पहननी चाहिए और फूल सूँघना चाहिए। मौलसिरी के वृक्ष की छाल का काढ़ा पीना चाहिए।

प्रदर और धातुविकार पर—रोज़ सुबह-शाम १ तोला मौलसिरी के ताजे फूलों में तीन बादाम डालकर, तीन माशा शक्कर के साथ तीन रोज़ तक खाये। सेवन करने के पश्चात् १ तोला ठण्ढा जल पिये। इस औषधि से दाँत भी मज़बूत हो जाते हैं।

मुखरोग और गले की सूजन पर—मौलसिरी, इमली और खैर की छाल का काढ़ा बनाकर उससे दिन में दस-बीस बार कुल्ले करना चाहिए। अथवा मौलसिरी के बीजों का गूदा मुँह में रखकर अर्क चूसना चाहिए।

बच्चों की खाँसी पर—दो तोला मौलसिरी के ताजे फूलों को रात्रि में एक तोला जल में भिगो दे। दूसरे दिन प्रातःकाल

वह पानी बच्चे को पिलाये। तीन या सात दिन तक इस नियम का पालन करना चाहिए।

दंत-रोग पर—मौलसिरी के पके फल के गूदे से दाँतों को मलना चाहिए।

मस्तक-शूल पर—मौलसिरी के पके फल का चूर्ण सूँघना चाहिए।

दाँत हिलने पर—मौलसिरी की छाल के चूर्ण से दाँत घिसने और उसके काढ़े से कुल्ले करने से एक हफ्ते में दाँतों का हिलना बन्द हो जाता है और दाँत खूब मजबूत हो जाते हैं।

गरमी पर—नित्य नियमित रूप से मौलसिरी के दस-पन्द्रह पके हुए फल खाना चाहिए।

पेशाब साफ़ होने के लिए—मौलसिरी के पचीस-तीस पके फल लेकर पाव भर पानी में खूब मसल डाले। और उसमें पाँच तोला शक्कर डालकर छान ले। इस शरबत को पीने से घण्टे-दो घण्टे में पेशाब साफ होता है।

पथरी पर—नित्य दो महीने तक मौलसिरी के फलों का शरबत पीने से कभी-कभी पथरी का नाश होते देखा गया है। पथरी में पेशाब की जलन होने और रुक-रुक कर पेशाब आने पर भी यह शरबत बहुत उपयोगी है।

नारियल

नारियल के वृक्ष चालीस-पचास हाथ ऊँचे होते हैं। इसे संस्कृत में नारिकेल, हिन्दी में नारियल, गुजराती में नालीएरी,

मराठी में नारली, कर्नाटकी में टेंगिनमारा, तैलिङ्गी में टेंकाया, तामील में टेंनामारं, मलयलम में टेन्ना, फ़ारसी में जोजहिन्दी, अरबी मे नारजिल, लैटिन में कोकोसन्युसिफेरा और अंग्रेजी में कोकोनट पाम कहते हैं। दक्षिण के कई भागों में नारियल को "माड" भी कहते हैं। गोमांतक, कर्नाटक, कालिकट, बंगाल और सह्याद्रि के निकटवर्त्ती प्रदेशों मे नारियल के वृक्ष बहुत होते हैं। सात-आठ वर्ष के पश्चात् इसमें फल आने लगते हैं। वृक्षों में लगे हुए नारियल के झुण्ड को मराठी में 'पिढ' कहते हैं। नारियल में बारहों महीने फूल लगते हैं। अच्छी भूमि में बोने से प्रति वर्ष, प्रत्येक वृक्ष में पाँच सौ नारियल पैदा हो सकने हैं। नारियल के वृक्ष का सभी भाग उपयोग में लाया जाता है। इसकी जड़ें और ऊपर का भाग जलाने के काम में आता है। इसकी नरेटी के कोयले बनाये जाते हैं। गरी खायी जाती है और उसके मीठे तथा शीतल जल को लोग पीते हैं। गरी को बारीक कतर कर मिठाइयों और पकवानों में भी डाला जाता है। गोले का तैल खाने, दिया जलाने, सिर में डालने और लकड़ियों पर लगाने के काम में आता है। नारियल की जटा के गद्दी, तकिये, धागे आदि बनाये जाते हैं। गोले के तैल को साबुन बनाने के काम में भी लाते हैं। नारियल की खली ढोरों को खिलाई जाती है। नरेटी का तैल औषधि के काम मे लाया जाता है।

नारियल का वृक्ष—गुरु, स्निग्ध, शीतल, वृष्य, दुर्जर, वस्ति-शोधक, बलवर्द्धक, कफकर, स्वादिष्ठ और विष्टम्भक होता है; तथा शोष, तृषा, पित्त, वातपित्त, रक्तदोष, दाह और क्षत-क्षय का नाश करता है।

नारियल के तेल के गुण—

१—सूखी हुई नारियल की गरी को पानी में डालकर उसका तेल निकाला जाता है। यह तेल बहुत ठण्ढा होता है। इसे ठण्ढक के लिए सिर मे लगाया जाता है।

२—कच्चे नारियल की गरी का रस निकाल कर अग्नि पर तपाने से तैल बन जाता है। यह तैल वायु का नाशक होता है। वायु से शरीर जकड़ जाने पर इस तैल में कालीमिर्च का चूर्ण मिलाकर लगाना चाहिए।

३—सूखी हुई गरी को कूट कर सुखाये। सूख जाने पर उसमें दो पैसे भर इमली के बीजों की छाल का चूर्ण डालकर मिलाये। पश्चात् उसे किसी बलवान् मनुष्य के हाथों से मसलवाये। इसमें से एक प्रकार का तैल निकलेगा। यह तैल चोट से निकलते हुए लहू को साफ करने के लिए और घाव को भरने के लिए बहुत उपयोगी होता है।

४—पुरानी और पकी हुई गरी को कूट कर उसका रस निकाले और पावभर के लगभग किसी कलई के बर्त्तन में डालकर उबाल ले। उबल जाने पर उसमे चार रत्ती नमक और दो माशा हल्दी का चूर्ण डालकर फिर उबाले। उबलने पर इस रस का गाढ़ा-गाढ़ा भाग नीचे और तैल ऊपर आ जायगा। इस तैल को किसी वर्त्तन में भर कर रख ले। नये तैल में अच्छी सुगन्ध आती है; और पुराना होने पर कुछ-कुछ सड़ी गन्ध आने लगती है; परन्तु गुणों मे दोनों समान होते है। इस तैल में रुई को भिगोकर गरमी के फोड़ो पर लगाने से बहुत लाभ होता है। इससे घाव भी भर जाते है

उपयोग—

नाहरू पर—गरी को कुतर कर रात्रि को उसमें नौसादर (धातु को गलाने का एक खार) का चूर्ण भर दे। प्रातःकाल उसके पानी को पीकर गोला खा ले। पश्चात् सायंकाल तक उपवास करे और रात्रि को स्नान करके दही-भात खाये।

भिलावाँ लग जाने पर—गरी को घिस कर या जला कर लगाना चाहिए।

चूहे के विष पर—सड़ी हुई गरी को मूली के रस मे घिस कर लगाना चाहिए।

खुजली और दाद पर—यंत्र के द्वारा नरेटी का तैल निकाल कर लगाना चाहिए।*

खुजली पर—गरी के रस में थोड़ा गन्धक डालकर उबाले। तैल बन जाने पर उतार ले। वर्तन मे जमे हुए छूँछ को कुछ खाना और कुछ मसल कर शरीर पर लगाना चाहिए। रात्रि में उस तैल को शरीर पर लगाने से दाद और खुजली का नाश हो जाता है।

अम्लपित्त और पेट के शूल पर—दस सेर नारियल के पानी को उबाल कर शहद के समान गाढ़ा कर ले। पश्चात् उसमें जायफल, सोंठ, काली मिर्च, पीपल, और जावित्री का थोड़ा-थोड़ा चूर्ण डालकर वर्तन में भर कर रख ले। इसे रोज़ सुबह-शाम एक तोला से डेढ़ तोला तक चौदह दिन तक पिये।

सब प्रकार के वायु रोग पर—पूरे नारियल की गरी के

---

* नरेटी को जला कर थाली में रक्खे। उसके ऊपर पानी से भरी हुई थाली रख दे। ऊपर की थाली के नीचे जमी हुई ओस की सी बूँदें ही तैल होता है।

रस में भिलावें को पीस कर डाले और उसे उबाल ले। उबालने से तैल ऊपर आ जाता और छूँछ जम जाता है। इस तेल को वायु-बद्ध मनुष्य के शरीर पर लगाना चाहिए और जमा हुआ छूँछ खिलाना चाहिए। इस औषधि को सात या चौदह दिन तक सेवन करने से सब प्रकार के वायु-रोगों का नाश हो जाता है।

हृद्रोग पर—गरी के रस में भिलावें के तैल की दस या पन्द्रह बूँदे डाल कर पिलाना चाहिए; अथवा कच्ची गरी के पाँच तोला रस में सिकी हुई हल्दी की गाँठ को घिस कर दो तोला घी के साथ पीना चाहिए।

शूल पर—एक पूरे नारियल में छेद करके नमक भर कर मिट्टी से छेद बन्द कर दे। जब मिट्टी सूख जाय, तो नारियल को कण्डे की आग पर सेक कर उसका बारीक चूर्ण करे। पश्चात् पीपल के चूर्ण के साथ उसका सेवन करे। इससे परिणाम शूल, वात, पित्त, कफ़ और सन्निपात से उत्पन्न हुए शूल का नाश हो जाता है।

मूत्रकृच्छ्र और रक्त-पित्त पर—नारियल के पानी में गुड़ और धनियाँ घोट कर पिलाना चाहिए; अथवा नारियल के पानी में निर्मली के बीज शक्कर और इलायची के दाने घोट कर पिलाना चाहिए।

मुँह आ जाने या पान से मुँह फट जाने पर—नारियल की सूखी गरी खाना चाहिए—दिन में तीन बार।

शरीर में दाह होने पर—कच्ची गरी खानी चाहिए।

खून गिरने पर—एक माशा कच्ची गरी थोड़ी शक्कर के साथ खानी चाहिए।

गले में जलन होकर खाँसी आने पर—गरी चबा कर खानी चाहिए। सूखी खाँसी आराम होगी।

खाँसी के साथ खून गिरने पर—कच्ची गरी काली द्राक्ष के साथ खानी चाहिए।

प्यास लगने पर—कच्ची गरी खानी चाहिए।

बल बढ़ाने के लिए—कच्ची गरी खानी चाहिए। इससे दुबले-पतले आदमी हृष्ट-पुष्ट हो जाते हैं; पर इसे शक्ति के अनुसार ही खाना चाहिए। अधिक खाने से यह पच नहीं सकती। यह विष्टम्भी है।

दस्त लगने पर—दस्त बहुत लग रहे हों और उससे क्षीणता आगई हो, तो पाखाने से लौटने के बाद सूखी गरी का एक पैसे के बराबर टुकड़ा खाना चाहिए।

वीर्य-वृद्धि के लिए—जिस पुरुष का वीर्य क्षीण हो गया हो, उसे रोज रात को पैसे भर सूखी गरी और पैसे भर शक्कर खाकर सोना चाहिए। कुछ ही दिनों में वीर्य-वृद्धि होने का अनुभव होगा।

वायु से शरीर अकड़ जाने पर—प्रतिदिन सूखी गरी और लहसुन की चटनी खानी चाहिए।

शरीर में कम्प आने से पसीना छूटकर शरीर ठण्ढा हो जाने पर—एक माशा सूखी गरी, एक माशा लहसुन और एक माशा अजवाइन की गोली बनाकर खिलाना चाहिए। पसीना रुकता है और शरीर ठण्ढा नहीं होता।

शक्ति बढ़ाने के लिए—पाँच तोला कच्ची गरी को पीसकर

उसका दूध निचोड़ कर रोज पीने से जल्दी ही शक्ति आने लगती है। यह गरी का दूध मुख में रुचि भी उत्पन्न करता है।

गुल्म (पेट के अन्दर की गाँठ) विशेष कर वायु, कफ गुल्म पर—एक तोला नारियल के दूध में चार रत्ती इलायची का चूर्ण डालकर पीना चाहिए।

भूख बढ़ाने के लिए—नारियल का पानी (कच्चे नारियल के अन्दर से निकलने वाला) पीने से भूख बढ़ती है।

किसी भी कारण से पेशाब रुक-रुककर आने पर—नारियल के पानी में थोड़ी शक्कर डालकर पीना चाहिए। यह दाह भी शान्त करता है और हृदय-सम्बन्धी सब विकारों के लिए उपयोगी है।

स्मरण-शक्ति की कमी और तृषा पर—नारियल का पानी पीना चाहिए।

पेशाब के साथ खून गिरने अथवा खून के जैसा लाल पेशाब होने पर—सुबह शाम एक-एक छटाँक नारियल का पानी पीना चाहिए। सात दिन में लाभ होगा।

कृमि पर—कुछ दिनों तक नारियल के पानी का सेवन करना चाहिए।

सूखी खाँसी पर—छः माशा गरी के दूध मे तीन माशा शक्कर डालकर पीना चाहिए।

अर्धांग वायु पर—नारियल का घी खाना चाहिए।

नारियल का घी तयार करने की विधि—कच्ची गरी को कसनी में कसे और पीसकर उसका दूध निकाले। उस दूध को चौड़े मुँह के घड़े में डालकर उस घड़े का मुँह एक महीन सफेद

कपड़े से बाँध दे। फिर उस घड़े को खुली और ठण्डी जगह में रात भर रख छोड़े। सुबह उस दूध को बिलोकर उसका मक्खन निकाले और उसका घी बनाकर काम में लाये। यह घी वायु के सब विकारों के लिए उपयोगी है। इस घी को 'कोकोजेम' भी कहा जाता है।

शरीर में चमक चलने पर—सुबह-शाम तीन माशा नारियल का घी थोड़ी-सी छोटी पीपल के साथ देना चाहिए।

गिरने, ठेस लगने आदि से आई हुई सूजन और दर्द पर—तैल निकालने के बाद गरी का जो निःसत्व पदार्थ (छूँछ) बाकी रह जाता है, उसे पीसकर उसमें हल्दी मिलाये और गरम करके सूजन वाले स्थान पर बाँधे।

कै और हिचकी पर—नारियल की जटा को जलाकर उसकी राख को शहद में मिलाकर लगातार चटाना चाहिए।

दाँत मजबूत करने के लिए—नरेटी को जलाकर उसकी राख से दाँत घिसना चाहिए।

अग्निमांद्य पर—नरेटी को घिसे और तीन माशा के लगभग लेकर उसमें एक चुल्लू भर शहद मिलाकर सात दिन तक पीना चाहिए। अरुचि और आँव पर भी यह लाभदायक है।

महुआ

महुए का वृक्ष बहुत बड़ा होता है। इसे संस्कृत में मधुक, हिन्दी में महुआ, गुजराती में महूड़ो, बंगला में मोल, मराठी में मोहाचा वृक्ष, कर्नाटकी में इप्पेमारा, तैलिङ्गी में इप्प, तामील में

मधुकं, मलयलम में इरुप्पा, फ़ारसी में चकाँ, लैटिन में बेसिया-लाटीफोलिया और अंग्रेजी में इलुपा ट्री कहते हैं। वैसे तो यह सभी जगह होता है; परन्तु गुजरात की ओर इसकी संख्या बहुत ही अधिक है। इसके पत्ते हथेली के बराबर, बादाम के जैसे, और मोटे होते हैं। पत्तल बनाने के काम में बहुत उपयोगी होते हैं। महुए की लकड़ी बहुत वजनदार और मज़बूत होती है। यह इमारत आदि बनाने के उपयोग में आती है। इसके फूल मीठे होते हैं। ग़रीब लोग इन्हें खाने के काम में लाते हैं। इसके फल बादाम से कुछ छोटे होते हैं। उनका तैल निकाला जाता है। वह जलाने के काम में आता है। महुए को शराब भी बनाई जाती है; जिसे पीकर लोग भैंसे की तरह मदोन्मत्त हो जाते हैं और अनेक प्रकार के दुष्कर्म करने लगते हैं। वे परमपिता परमेश्वर को भूल कर अपने हाथों अपना नाश कर बैठते हैं। परमात्मा ने अच्छी और बुरी, सब प्रकार की वस्तुओं का निर्माण किया है; परन्तु मनुष्य को चाहिए कि बुरी वस्तुओं का त्याग करके अच्छी वस्तुओं को ग्रहण करे। इसी में उनका कल्याण है।

महुए का वृक्ष—मधुर, शीतल, वातल, वीर्यवर्द्धक, पौष्टिक, फीका और कड़वा होता है। तथा कृमि, दाह, पित्त, श्रम और व्रण का नाश करता है।

महुए के फूल—मधुर, वृष्य, हृद्य, धातुवर्द्धक, गुरु और स्निग्ध होते हैं; तथा पित्त दाह और वायु का नाश करते हैं।

कच्चे फल—शीतल, शुक्रकर, गुरु, स्निग्ध, पक जाने पर मधुर, मलस्तंभक, बलवर्द्धक और धातुवर्द्धक होते हैं; तथा रक्त-रोग, वायु, पित्त, श्वास, तृषा, खाँसी, क्षत-क्षय और राजयक्ष्मा

का नाश करते हैं। अधिक पक्क जाने पर बलवर्द्धक और पित्त तथा वायु का शमन करते हैं।

उपयोग—

अपस्मार, उन्माद, सन्निपात और अपतंत्रक वायु पर—महुए की अन्तर छाल, छोटी पीपल, बच, काली मिर्च, और सेंधा नमक जल में पीस कर नस्य लेना चाहिए।

कंठसर्प पर—महुए के बीजों को पानी में घिसकर पिलाना चाहिए।

धातु-पुष्टि के लिए—महुए की छाल का दो-तीन माशा चूर्ण दिन मे दो बार—प्रातः और सायं—गाय के घी और शहद के साथ खाने को दे और ऊपर से गाय का तपाया हुआ दूध, घी-शक्कर के साथ पिलाये।

सर्प के विष पर—महुए के बीजों को पानी में घिसकर अंजन करना चाहिए।

गँठिया पर—बकरी के दूध में महुए के फूल पका कर पीना चाहिए।

बेर

बेर का वृक्ष सभी जगह होता है। इसे संस्कृत में बदरी, हिन्दी में बेर, गुजराती में बोरड़ी, मराठी मे बोर, बँगला में कुल या बोगरी, तैलिङ्गी मे रेगुचेट्टु, तामील में इलँडे या कल्लारी, मलयलम में इलांटा या कोलं, फारसी में कुनार, अरबी में सीदरुल-बंक, लैटिन में जिजिफस्जुजुबा और अंग्रेजी में जुजब कहते हैं।

इसकी डालियों में काँटे होते हैं। बेर, सुपारी के बराबर होते हैं। बेर की अनेक जातियाँ हैं; जैसे—जंगली बेर, झरबेर, पेवँदी बेर आदि। इसके वृक्ष मे बहुत अच्छी लाख लगती है। इसकी लकड़ियाँ हल, गाड़ी आदि बनाने के काम मे आती हैं। इसके सूखे पत्ते ढोरों को खिलाने के लिए उपयोगी होते हैं। इसकी एक छोटी जाति को महाराष्ट्र में "बोराटी" कहते हैं।

बेर का वृक्ष—शीतल, रुक्ष और कड़वा होता है; तथा पित्त और कफ का नाश करता है।

बेर—मधुर, और फीके खट्टे होते हैं।

पके बेर—मधुर, खट्टे, उष्ण, कफकर, पाचक, लघु और रुचिकर होते हैं; तथा अतिसार, रक्तदोष, श्रम और शोष का नाश करते हैं।

बेर के पत्तों का लेप करने से ज्वर और दाह नष्ट हो जाता है।

इसकी छाल का लेप करने से विस्फोटक का नाश हो जाता है।

बेर के गूदे का अंजन करने से नेत्ररोग नष्ट हो जाता है।

बड़े बेर—मधुर, शीतल, वृष्य, वीर्यवृद्धिकर, स्वादिष्ट, गुरु, ग्राही, लेखन, स्निग्ध, मलावरोधक और आध्मानकर होते हैं; तथा दाह, पित्त, वायु, शोष और श्रम का नाश करते हैं।

सूखे बेर—भेदक, लघु और अग्निदीपक होते हैं; तथा कफ, वायु, तृष्णा, पित्त और श्रम का नाश करते हैं।

कोल्हापुर प्रान्त में भूमिबेर नामक बेर की एक जाति बहुत प्रसिद्ध है। भूमिबेर गुण में मधुर, खट्टे, पथ्य, दीपन, पाचक, किंचित् रक्तपित्तकर और रुचिकर होते हैं; तथा कफ और वात को नष्ट करते हैं।

छोटे बेर—मधुर और खट्टे होते हैं। पक जाने पर—स्निग्ध, रुचिकर और जन्तुकर होते हैं ; तथा किंचित पित्त, दाह, कफ और वात का नाश करते हैं।

बेर का गूदा—मधुर, बलप्रद और वृष्य होता है ; तथा कास, श्वास, तृष्णा, वायु, क़ै, दाह और पित्त का नाश करता है।

उपयोग—

बालतोड़ पर—बेर के पत्तों को पीस कर लगाना चाहिए।

स्वर-भेद पर—बेर की जड़ को मुंह मे रखना चाहिए अथवा बेर के पत्तों को सेककर सेंधे नमक के साथ खाना चाहिए।

ज्वर के दाह पर—छोटे-छोटे लाल बेर लाकर उन्हें धोये और उसमें से बग़ैर सूराख वाले अच्छे बेर छाँटकर उन्हे कूटे। दो तोला कुटे हुए बेर में आधा सेर पानी डालकर अष्टमांश काढ़ा बनाये। छान कर, ठण्डा हो जाने के बाद मिश्री डालकर पीना चाहिए। इससे ज्वर का दाह शान्त होकर ज्वर भी उतर जाता है, ऐसा अनुभव है।

आँखों से पानी बहने पर—बेर की गुठली घिसकर आँजनी चाहिए।

शरीर के किसी भी भाग में जलन होने पर—बेर के पत्ते पीसकर लगाने चाहिए।

रक्तातिसार पर—बेर की छाल को दूध में पीस कर शहद के साथ पीना चाहिए।

मूत्रकृच्छ्र पर—बेर की कोंपल और जीरे को एकत्र कर के देना चाहिए।

कंठसर्प पर—जंगली बेर की छाल को घिसकर दो बार पिलाना चाहिए।

भस्मक रोग पर—बेर की गुठली के अन्दर का भाग या बेर के वृक्ष की छाल को पानी में पोसकर पिलाना चाहिए।

शीतला कम निकलने के लिए—बेर के पत्तों का रस भैंस के दूध में पिलाना चाहिए।

रक्तातिसार पर—बेर की जड़ और तैल समभाग में लेकर गाय या बकरी के दूध के साथ पिलाना चाहिए।

छाती के दर्द, रक्तक्षय और क्षय पर—दो तोला बेर या पीपल की खाल को पानी में पीसकर उससे चौगुने कद्दू के रस के साथ पिलाना चाहिए।

बिच्छू के विष पर—बेर के पत्ते और उदुम्बर के पत्तों को बारीक पीसकर दंश पर बाँधने से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

क़ै पर—बेर की गुठलियों के अन्दर का भाग, बड़ के अंकुर मधुयष्टि का काढ़ा, शहद और शक्कर को मिलाकर पीना चाहिए।

जामुन

जामुन का वृक्ष बहुत बड़ा होता है। इसे संस्कृत मे जंबु, हिन्दी में जामुन, गुजराती में जांबू, बंगला में जाम, मराठी में जांभूल, तामील में जंबुनावल, कर्नाटकी में नीरल, या कॅपुजंबो-नेरल, तैलिङ्गी में नेरेढु, मलयलम मे नेतुजांवल या नावल, लैटिन में जांबोलेनम, या सिजिजियम् और अंग्रेजी मे जांबुल ट्री कहते हैं। इसके पत्ते मौलसिरी के जैसे होते हैं। वैशाख और ज्येष्ठ मास

में इसमें फल आते हैं। इसके फलों को "जामुन" कहते हैं। जामुन का रंग ऊपर से काला और अन्दर से कुछ-कुछ लाल होता है। वनों मे उगनेवाली जामुन छोटी और खट्टी होती है और बगीचों में उगनेवाली बड़ी और मीठी। जामुन अधिक-से-अधिक खा लेने पर भी कोई हानि नहीं पहुँचाती ; बल्कि उससे शरीर को लाभ ही होता है। जामुन के वृक्ष की छाया शीतल और सुखमयी होती है। इसकी लकड़ी बहुत चिकनी होती है। तालाब आदि के गन्दे पानी में जामुन के वृक्ष की डालियाँ डाल देने से पानी शुद्ध हो जाता है। जामुन के रस का सिरका बनाया जाता है। वह पेट के गुल्म, अतिसार, उदर और विशूचिका के लिए बहुत उपयोगी होता है।*

जामुन का वृक्ष—ग्राही, मधुर, खट्टा, पाचक, मलस्तंभक, रुक्ष, रुचिकर, कण्ठ के लिए हितकर, पित्त और दाह का नाशक होता है तथा कृमि, श्वास, शोष, अतिसार, कास, रक्तदोष, कफ और व्रण का नाश करता है।

जामुन का फल—खट्टा, मधुर, रुचिकर, रुक्ष, शीतल, ग्राही,

---

* वैद्य लोग सिरके को पेट की पीड़ा का नाश करनेवाला और मूत्र अधिक लानेवाला बतलाते हैं। संस्कृत ग्रन्थों में लिखे अनुसार वे इसे शराब में मिलाकर एक प्रकार की मदिरा तैयार करते हैं। जामुन के वृक्ष की छाल में बहुत-सी औषधियाँ मिलाकर, उसके काढे से घाव को धोते हैं। बच्चों को दस्त लग जाने पर छाल के ताजे रस में बकरी का दूध मिलाकर देते हैं। पकी जामुन के रस का शरबत बनाकर पीने से पेट की पीड़ा का नाश हो जाता है। चरक में जामुन की छाल को मूत्रसंग्रहण और पुरीषरंजनीय बतलाया है। सुश्रुत में रक्तपित्तनाशक, दाहनाशक, योनिदोषनाशक वृष्य और संग्रही माना है।

लेखन, कण्ठदूषक, मलस्तंभक और वातकारी होती है ; तथा कफ, पित्त और आध्मानवायु का नाश करता है।

बड़ी जामुन का वृक्ष—मधुर, उष्ण, फीका, स्वयं और मलस्तंभक होता है ; तथा श्वास, शोष, श्रम, अतिसार, कफ और ऊर्ध्वरस का नाश करता है।

बड़ी जामुन का फल—मधुर, स्वादिष्ट, रुचिकर, स्तंभक, गुरु और दोष-नाशक होता है।

जल जामुन का फल—फीका, शीतल, कड़वा, गुरु, खट्टा, पक जाने पर मधुर, पुष्टिकर, ग्राही, वीर्यवर्द्धक और बलकारी होता है तथा श्रम, दाह, अतिसार, रक्तदोष, कफ पित्त और व्रण का नाश करता है।

उपयोग—

रक्तातिसार पर—जामुन के वृक्ष की छाल को दूध में पीसकर शहद के साथ पिलाना चाहिए ; अथवा जामुन के पत्तों के रस में शहद, घी और दूध मिलाकर देना चाहिए।

गरमी की फुंसियों पर—जामुन की गुठली को घिस कर लगाना चाहिए।

बिच्छू के दंश पर—जामुन के पत्तों का रस लगाना चाहिए।

पित्त पर—एक तोला जामुन के रस में एक तोला गुड़ मिला कर आग पर तपाये। तपा कर उसके भाफ को पीना चाहिए।

गर्भिणी के अतिसार पर—जामुन खिलानी चाहिए ; अथवा जामुन और आम की छाल के काढ़े में धान और जौ एक-एक तोला आटा डाल कर चटाना चाहिए।

मधुमेह पर—पन्द्रह दिन तक लगातार जामुन खाना

चाहिए, अथवा जामुन की छाल या सूखी हुई जामुन का चूर्ण, दो तोला रोज़ सेवन करना चाहिए।

मुख-रोग पर—जामुन, बबूल, बेर और मौलसिरी में से किसी भी वृक्ष की छाल का ठण्ढा पानी निकाल कर कुल्ले करना चाहिए और इनकी दतौन से रोज दाँतों को साफ करना चाहिए। इससे दाँत मजबूत होते और मुख-रोग सर्वदा के लिए नष्ट हो जाता है।

अतिसार पर—जामुन की छाल का रस पिलाना चाहिए।

पेट में बाल या लोहे का अंश चला जाने पर—जामुन खाना चाहिए।

पित्त-विकार पर—जामुन की छाल का रस दूध मे मिला कर पिलाना चाहिए। इससे कै होकर पित्त गिर-पड़ता है। भात और घी खाने को देना चाहिए।

कै पर—जामुन की छाल की राख शहद के साथ देनी चाहिए।

जामुन का सिरका—जामुन के रस को खूब महीन कपड़े से छानकर बोतल में भरकर रखना चाहिए। कुछ दिनों में खट्टा होने पर यह अधिक गुणकारी हो जाता है।

प्रदर, अतिसार और आँव पर—तीन तोला जामुन की छाल को कूटकर आधा सेर पानी में उसका अष्टमांश काढ़ा बनाये और उसमे आधा तोला घी, तीन माशा शहद और पैसे भर मिश्री डालकर पिलाना चाहिए। ऐसा दिन में दो बार यानी सुबह-शाम करना चाहिए। पाँच सात दिन में ही लाभ मालूम होगा।

विशूचिका पर—आधा तोला जामुन के सिरके में चौगुना

पानी डालकर एक-एक घण्टे के अन्तर पर देना चाहिए। पेट के दर्द में भी सुबह-शाम इस सिरके का उपयोग करना चाहिए।

मधुमेह पर—जामुन की गुठली का एक माशा चूर्ण गरम पानी के घूँट के साथ लेना चाहिए। चार-चार घण्टे के अन्तर पर यह औषधि देनी चाहिए। तीन दिन में लाभ मालूम होने लगता है।

मुँहासों पर—जामुन की गुठली घिसकर चुपड़नी चाहिए।

ताड़

ताड़ और सुपारी के वृक्ष एक ही तरह के होते हैं। ताड़ को संस्कृत, बंगला और फ़ारसी में ताल, हिन्दी और गुजराती में ताड़, मराठी मे खरताड़ या ताड़ वृक्ष, कर्नाटकी मे तालीमारा, तैलिङ्गी में ताति, तामोल में पनेमारं या तालो, मलयलम में मालं, या पना, अरबो में तार, लैटिन मे बोरेसस् या फलेबेलीफोर्मिस, और अंग्रेज़ी में पालमायराया पाम कहते हैं। यह गरम देशों में होता है। पहाड़ों और वनों में यह अपने आप उग आता है। दस-बारह वर्ष पश्चात् इसमें फल आते हैं। यह चालीस-पचास हाथ ऊँचा होता है। इससे ताड़ी निकाली जाती है। यह नशीली होती है। इसके फल बहुत ठण्डे होते हैं; इसलिए बहुत से लोग गरमी में उन्हें खाते हैं। ताड़ का वृक्ष बहुत उपयोगी होता है। इसके पत्तों के पंखे, छाते आदि बनाए जाते है। ताड़ की एक जाति सिहल द्वीप में भी होती है। उसकी ऊँचाई सवा सौ हाथ होती है। उसके पत्ते पन्द्रह-बीस हाथ लम्बे होते हैं। एक पत्ते के नीचे छिपकर बीस-पचीस आदमी वर्षा से रक्षा कर सकते हैं। वह

वृक्ष लगभग अस्सी वर्ष तक रहता है। इतने अधिक समय में उसमे केवल एक बार फल आते है। इसके फल हाथी के मस्तक के समान होते हैं। बहुत से लोग इसके गूदे को खाते है। प्राचीन समय में इसके पत्ते पुस्तक आदि लिखने के काम में लाये जाते थे। सिंहलद्वीप और कर्नाटक में आजकल भी उन्हीं पर लिखा जाता है। लिखने के पहले उन्हें दूध और पानी में उबाल लिया जाता है। पश्चात् लोहे की कीलों से लिखा जाता है। कागज़ की अपेक्षा ये पत्ते अधिक समय तक रहते हैं। व्यजन ताड़ नामक ताड़ की एक दूसरी जाति भी होती है। वह दक्षिण अमेरिका की ओर बहुत होती है। उससे चटाई और पंखे बनाये जाते हैं। ताड़ के कच्चे फल बहुत स्वादिष्ट होते हैं। पुराने फल खाने से अतिसार हो जाता है। नारियल की तरह इनके अन्दर भी पानी होता है। उसे लोग पीते हैं।

ताड़ का वृक्ष—मधुर, शीतल, मादक, पुष्टिकर, शुक्रकर, कफकर, बलवर्द्धक, मेदकर, वृष्य और सारक होता है; तथा पित्त, दाह, शोष, विष, श्रम, कुष्ठ, कृमि, रक्तदोष और वायु का नाश करता है।

कच्चे फल—स्निग्ध, स्वादिष्ट, गुरु, मलावरोधक, बल-वृद्धिकर, शीतल, धातुवर्द्धक, वृष्य, तृप्तिकर, मांसल और कफ़कर होते हैं; तथा वायु, श्वास, रक्तपित्त, व्रण, दाह, क्षत, पित्त, क्षय और रक्तदोष का नाश करते हैं।

पक्के फल—दुर्जर और मूत्रकर होते हैं; तथा शुक्र, पित्त, कफ, नेत्राभिष्यंद और रक्त बढ़ाने वाले होते हैं।

हरे फल का गूदा—मूत्रकर, शीतल, पक जाने पर मधुर, और सारक होता है; तथा वात-पित्त का नाश करता है।

पुराने फल का गूदा—कफकर, मदकर, लघु, स्निग्ध, मधुर, सारक और वातपित्त का नाशक होता है।

ताड़ के मस्तक का गूदा—धातुवर्द्धक, बस्तिशोधक और वातपित्त का नाशक होता है।

ताड़ी—अति मादक, स्निग्ध, गुरु और वृष्य होती है; खट्टी होने पर यही ताड़ी पित्तकर और वात-नाशक हो जाती है।

ताड़ की जड़—पक जाने पर स्वादिष्ट और रक्तपित्त नाशक होती है।

उपयोग—

मूत्रदाह पर—ताड़ के कच्चे फल खाने चाहिए। अथवा ताड़ की जड़ को चावल के माँड़ में पीसकर शक्कर के साथ पीना चाहिए।

अनार

अनार का वृक्ष हिन्दुस्थान में सर्वत्र होता है। संस्कृत में इसे दाड़िम, हिन्दी में अनार, गुजराती में दाड़म, मराठी और कर्नाटकी मे डाळिंब, कनाड़ी में दाळिब, तैलङ्गी में दाळीबकाया, तामील मे माड्ले, फारसी में अनारसीरी या अनारतुरश, अरबी मे रुमानहामिज या रुमानहुलु, लैटिन मे प्युनीकाग्रानेटम् और अंग्रेजी में प्रोमिग्रेनेट कहते हैं। अरब में मस्कत के पास बहुत उत्तम अनार होते हैं। उनमे अधिक बीज नहीं होते। अनार के वृक्ष भी दो प्रकार के होते हैं। एक मे केवल फूल आते हैं और दूसरे में

फूल-फल दोनों। अनार के फूल लाल रंग के होते हैं ; परन्तु उनमें कुछ-कुछ पीले रंग की झलक भी होती है। अनार खाने मे रुचिकर और अत्यन्त गुणकारी होता है। इससे शरीर में फुर्ती आती और तृषा शान्त होती है। इसे रोगी को खिलाने से कोई हानि नहीं होती।

अनार के वृक्ष की जड़, पत्ते, छाल, फूल और फल की छाल सब औषधि के काम में आते हैं। अनार के रस का उत्तम पाक बनाया जाता है ; उसे अनार-पाक कहते हैं। अनार का रस पित्त का शमन करता है।*

---

* वैद्य लोग अनार के रस को केसर में मिलाकर ठंढक के कामों में लाते हैं। अँतड़ियों के रोग में (दस्त न लगे होने पर) अनार की छाल और फूल में, लौंग, धनियाँ, काली मिर्च आदि सुगन्धित पदार्थ मिला कर देते हैं। हिन्दी-वैद्यक ग्रन्थों में जड़ की छाल के विषय में कुछ वर्णन नहीं मिलता। मुसलमान-ग्रन्थकार अनार को तीन प्रकार का बतलाते हैं—मीठा, खट्टा और खटमिट्ठा ; तथा फल की छाल और फूल को, गुणों में ग्राही होने के कारण, अनेक रोगों में व्यवहार करते हैं। उनका कथन है कि जड की छाल अनार के वृक्ष के सब भागों से अधिक ग्राही होती है तथा कृमि का नाश करती है। पाँच तोला ताजी छाल को २ सेर पानी में उबाले। एक सेर पानी रह जाने पर उतार ले और ठण्ढा हो जाने पर आधे-आधे घण्टे के पश्चात्, जब तक वह समाप्त न हो जाये देता रहे। इससे थोड़ी देर में ही सब कृमि नष्ट हो जाते हैं। अनार के बीज और उनका रस पेट की पीड़ा को नष्ट करते हैं। डाक्टर कर्क-पेट्रिक का कथन है कि—"पाचन-शक्ति बढाने के लिए और ग्राही तथा पुराने मरोड़ के लिए अनार की छाल को लौंग के साथ उबाल कर देने से बहुत लाभ होता है।" चरक-संहिता में अनार को वमन-नाशक, हृद्य—रुचि को उत्पन्न करके शरीर को उत्तेजित करनेवाला—कहा गया है। सुश्रुत-संहिता में इसे वात-नाशक, मूत्र-दोष-नाशक, तृषा-नाशक और रुचिकर माना गया है।

अनार का वृक्ष—खट्टा, मधुर, तृप्तिकर, स्निग्ध, दीपन, ग्राही, हृद्य, उष्ण, रुचिकर, लघु और अग्निदीपक होता है ; तथा कफ, खाँसी, श्रम, मुखरोग, कण्ठरोग और पित्त का नाश करता है।

मीठे अनार—तृप्तिकर, धातुवर्द्धक, लघु, ग्राही, स्निग्ध, मस्तिष्क-शक्ति-वर्द्धक, बलप्रद, मधुर और पथ्यकर होते हैं ; तथा त्रिदोष, तृषा, दाह, ज्वर, हृद्रोग, मुखरोग और कण्ठरोग का नाश करते हैं।

खटमिट्ठे अनार—रुचिकर, दीपन और लघु होते हैं ; तथा वायु और पित्त का नाश करते हैं।

खट्टे अनार—पित्त और रक्तपित्त को करनेवाले; तथा वायु के नाशक होते हैं।

कच्चे और सूखे हुए अनार—रुचिकर, हृद्य और वायु को अनुकूल करनेवाले होते हैं।

उपयोग—

बच्चों की खाँसी पर—अनार की छाल खाने के लिए देनी चाहिए। अथवा अनार के रस में घी, शक्कर, इलायची और बादाम मिलाकर देना चाहिए।

बच्चों के अतिसार और संग्रहणी पर—अनार की छाल को घिसकर पिलाना चाहिए।

कृमि पर—अनार की जड़ और वृक्ष की छाल का काढ़ा बनाकर पिलाना चाहिए ; अथवा अनार की छाल के काढ़े में तिल का तेल मिलाकर तीन दिन तक पिलाना चाहिए।

उष्णपित्त पर—शक्कर की चाशनी में अनार-दानों का रस डालकर वस्त्र से छान ले। आवश्यकता होने पर दो तोला शरबत,

दो तोला पानी के साथ पी ले ; इससे उष्णपित्त का नाश हो जाता है।

नेत्र की गरमी शान्त करने के लिये—अनार-दानों का रस आँख में डालना चाहिए।

संग्रहणी पर—कच्चे अनार के रस में माजूफल, लौंग और सोंठ को घिसकर शहद के साथ पीना चाहिए। यदि अनार न मिले, तो अनार की छाल को घिसकर पिलाना चाहिए।

गरमी के कारण नाक से लहू बहने पर—अनार के फूल और दूब की जड़ का रस निकाल कर नाक मे डालना चाहिए ; अथवा केवल अनार के फूल का रस नाक में डालना और मस्तिष्क पर लगाना चाहिए।

छाती के दर्द पर—अनारदानों के रस में एक माशा सोना-मक्खी का चूर्ण मिलाकर पिलाना चाहिए।

नेत्र दुखने पर—अनार के पत्तों को पीसकर लेप करना चाहिए।

पित्त-रोग पर—पके हुए अनार के रस में शक्कर मिलाकर पीना चाहिए।

शोष और मुख की विरसता पर—अनार के साथ शक्कर या अंगूर का सेवन करना चाहिए।

रक्तातिसार पर—अनार की छाल और कुरैया (इन्द्रजव) की छाल का काढ़ा शहद के साथ पीना चाहिए।

उपदंश-व्रण पर—सूखे अनार की छाल का चूर्ण लगाना चाहिए।

त्रिदोषोत्पन्न कै पर—सेंकी हुई मसूर के आटे को अनार के रस से गूँधकर उसे शहद के साथ खाना चाहिए।

अनार-पाक—धनियाँ, सोंठ, नागरमोथा, खस, बेल का गूदा, आँवले, कुरैया की छाल, जायफल, अतिविषा, खेर की छाल, अजमोदा, एरण्ड की जड़, जीरा, लौंग, पीपल, कर्कटशृङ्गी, खुरासानी अजवाइन, धाय के फूल और लोध को एक-एक पैसे भर लेकर चूर्ण करे और अनार में भरकर आटे से बन्द कर दे और चूल्हे में सेंककर आटा निकाल दे। पश्चात् सब को मिलाकर बेर के समान गोलियाँ बनाकर खाना चाहिए। इससे अतिसार, संग्रहणी, मन्दाग्नि, अरुचि और शूल का नाश हो जाता है।

रुचि उत्पन्न करने के लिए—अनारदाने चबाकर उनका रस निगलना चाहिए।

तृषा पर—अनारदाने खाने चाहिए। अथवा उनका रस निकालकर तुरन्त ही थोड़ा-थोड़ा पीना चाहिए।

बच्चों की खाँसी पर—अनारदानों का रस, शहद और शक्कर मिलाकर चटाना चाहिए।

छाती के दर्द में—एक तोला अनारदानों के रस में एक तोला मिश्री मिलाकर पिलाना चाहिए।

कृमि पर—एक तोला अनार की जड़ की छाल, छः माशा वायबिडंग और छः माशा इन्द्रजव ; इन तीनों का काढ़ा बनाकर देना चाहिए।

अतिसार, संग्रहणी पर—अच्छे पके हुए अनार का चूर्ण आठ तोला, वंशलोचन एक तोला, दालचीनी, तेजपात, और इलायची दो-दो तोला, अजवाइन, जीरा, धनिया, वच, सोंठ काली-मिर्च और छोटी पीपल चार-चार तोला लेकर सबका खूब महीन चूर्ण बनाए और गरम पानी के साथ सेवन करे। इस चूर्ण को

'दाड़िमाष्टक' कहते हैं। कोई-कोई लोग इन सब औषधियों के साथ मोचरस भी लेकर उन्हे अनार के रस में घोट कर गोलियाँ भी बनाते हैं।

सब प्रकार के अजीर्ण में—एक तोला अच्छे पके हुए अनार का रस, एक तोला अच्छा जीरा और एक तोला पुराना गुड़ मिला कर देना चाहिए। थोड़े दिनों में अजीर्ण का नाश होता है।

ज्वर से या किसी भी कारण से आई हुई मुख की अरुचि पर—पके हुए अनार के एक तोला रस में पौन तोला शहद और पाव तोला गाय का घी मिलाकर सुबह-शाम देना चाहिए। दूसरी किसी औषधि का बार-बार सेवन करने से जी घबड़ा जाता है; पर इस औषधि से ऐसा नहीं होता, बल्कि इसे बार-बार खाने की इच्छा होती है।

अतिसार पर—एक तोला अनार की छाल, एक तोला पुराना गुड़ और आधा तोला जीरा मिला कर देना चाहिए। एक-दो दिन में ही लाभ मालूम होगा।

अतिशय अजीर्ण से उत्पन्न अतिसार पर—आधा माशा अनार की छाल का चूर्ण, आधा माशा जायफल और दो रत्ती केसर को मिलाकर उसका चूर्ण बनाकर शहद के साथ देना चाहिए। इससे एक ही बार में लाभ होगा। यदि न हो, तो दुबारा देना चाहिये।

पाण्डुरोग यानी पीलिया पर—अच्छे अनार के दो तोला रस में एक तोला मिश्री मिलाकर सुबह-शाम देना चाहिए। थोड़े दिनों में लाभ होगा।

क्षय पर—अच्छे पके हुए स्वादिष्ट अनार का बीस तोला रस निकाल कर उसमें चार तोला छोटी पीपल का चूर्ण, चार तोला

जीरे का चूर्ण, चार तोला सोंठ का चूर्ण, चार तोला दालचीनी का चूर्ण और एक तोला शुद्ध केसर डालकर बीस तोला उत्तम पुराना गुड़ मिलाए। फिर सबको एकत्र करके जलाकर उसमें एक तोला इलायची का चूर्ण डाले और आधा-आधा तोला वज़न की गोलियाँ बनाए। फिर रोज सुबह-शाम पावभर दूध के साथ अपने हाजमे के अनुसार लेना चाहिए।

अधिक बोलने से या सेंदूर जैसी चीज़ पेट में जाने से स्वर बिगड़ने पर—अच्छा पका हुआ एक अनार रोज़ खाना चाहिए।

आँख की फूली पर—अच्छे पके हुए अनार की सूखी छाल को अच्छे पके हुए अनार के रस में घिस कर—थोड़ी लाल घोंगची के ऊपर के छिलके निकाल कर उसमें उसे घिसना चाहिए और आँख की फूली पर अंजन करना चाहिए।

नीम

नीम का वृक्ष बहुत बड़ा होता है। संस्कृत में इसे निंब या प्रभद्र, हिन्दी और बंगला में नीम, गुजराती में लीमड़ो, मराठी में कडूलिंब या बाळंतलिंब, तामील और कर्नाटकी में बेवुं, तैलिङ्गी मे वेप्पा, मलयलम मे वेप्पु, लैटिन में एज़ाडिरेक्टा इण्डिको, फ़ारसी मे नेनबनीम या दरख्तहक और अंग्रेजी में नीम ट्री कहते हैं। यह हिन्दुस्थान में सभी जगह होता है। इसके पत्ते नुकीले होते हैं। इसके फूल सफ़ेद और छोटे होते हैं। नीम का वृक्ष अधिक गुणकारी होने के कारण भूलोक का कल्पतरु माना जाता

है। प्राचीन आर्य ऋषियों ने इसके अलौकिक गुणों की खोज करके इसे श्रेष्ठ पद प्रदान किया है। इसके सेवन से अनेक रोग निर्मूल हो जाते हैं; इस कारण प्राचीन शास्त्रकार तो यह नियम ही बना गये हैं कि—वर्ष प्रतिपदा (चैत्र सुदी १) को सब लोग पवित्र होकर नीम की कोंपल और फूल, हींग, काली मिर्च, सेंधा नमक, जीरा, अजवाइन, इमली और गुड़ के साथ सेवन करें। इस नियम से वर्ष में एक बार इस सर्व-रोग-परिहारक वृक्ष के पत्ते सबके खाने में आ जाते हैं। उन दूरदर्शी शास्त्रकारों ने हमारा कितना उपकार किया है, यह इसी से मालूम हो जाता है। कहीं-कहीं केवल नीम के पत्ते खाकर जीवित रहनेवाले पुरुष भी दिखाई देते हैं। वे कितने तेजःपुञ्ज और शक्तिवान् होते हैं, यह देखकर हमें आश्चर्य होता है। हमारे देश में किसी-किसी जगह स्त्रियों को, प्रसूता होते ही तीन दिन तक भोजन के पहले नीम के पत्तों का रस दिया जाता है; यह योजना बड़ी ही उत्तम है। इससे उनका दूध बढ़ता और वे शीघ्र नीरोग हो जाती हैं। फिर उन्हें कोई भी रोग होने का भय नहीं रहता। जो स्त्रियाँ रस को नहीं पीतीं, उन्हें कई प्रकार के भयंकर रोग हो जाते हैं। आजकल मृत्यु के मुख में पड़ी हुई स्त्रियाँ बहुत अधिक संख्या में हैं; इसका मुख्य कारण केवल औषधियों का सेवन न करना ही है। यदि गाय को भी—बच्चा होते ही—नीम के पत्ते खिलाये जायँ, तो दूध बढ़ता और उसमें शक्ति आती है। नीम की छाया शीतल और गुणकारी होती है। ग्रीष्म ऋतु में नीम की छाया बहुत ही आनन्द देती है। यह देवालय, धर्मशालाओं, सड़क, आदि पर ठण्ढी और स्वच्छ हवा के लिए लगाया जाता है। जिस घर के आगे यह वृक्ष होता

है, वहाँ के लोग सर्वदा नीरोग रहते हैं। जब नीम बहुत पुराना हो जाता है, तो इसकी लकड़ी से शुद्ध चंदन की-सी सुगन्ध आने लगती है। इसकी लकड़ी इमारत आदि बनाने के काम में आती है। कड़वा होने के कारण इसमें कीड़े नहीं लगते। नीम का वृक्ष बहुत वर्षों तक रहता है। इसमे एक विशेष गुण यह है कि बार-बार काट देने पर भी उग आता है। नीम की भाँति पीपल भी बहुत उपयोगी होता है। इन दोनों में बड़ी मैत्री है। अधिकतर ये दोनो पास-पास देखने में आते हैं। पीपल, वट, उदुम्बर, बिल्व, तुलसी आदि वृक्ष बहुत पवित्र माने गए हैं। इसका कारण इनकी उपयोगिता ही हो सकती है। ऐसे उपयोगी वृक्षों के अलौकिक गुणों की ओर लक्ष्य न करके लोग विदेशियों के बनाये हुए निषिद्ध जल को शरीर-रक्षण के लिए ग्रहण कर लेते हैं। ऐसे शरीर-रक्षण से मर जाना अच्छा है। आर्यजनों के शरीर-रक्षण के लिए दयालु ईश्वर ने हजारों औषधियों और वनस्पतियों की सृष्टि की है; परन्तु सब इतने अन्ध हो गए हैं, कि उनकी ओर दृष्टि तक नहो डालते; इतना ही नहीं; परन्तु विदेशियों के अपवित्र जल को अमृत के समान समझ कर पी लेते हैं! इससे अधिक लज्जा, खेद तथा दुःख की और कौन-सी बात हो सकती है!! "गुड़ खानेवाले से नीम खानेवाला अधिक अच्छा होता है।" इस कहावत पर सबको लक्ष्य देना चाहिए। नीम खाने में कड़वा; परन्तु गुणकारी होता है। इसलिए सबको चाहिए कि इसे उपयोग मे लाएँ। यदि खेत के किनारे बबूल का वृक्ष होता है, तो वह पृथ्वी का पौष्टिक अंश हजम कर जाता है; परन्तु नीम में यह बात नहीं है। यह हानि के बदले लाभ ही करता है; इसलिये किसानों को इसे अपने खेतों के किनारे अवश्य लगाना चाहिए।

नीम का वृक्ष—ठण्ढा, कड़वा, लघु, ग्राही, तीक्ष्ण, अग्नि-मांद्यकर, व्रणशोधक, सूजन उतारनेवाला, बालकों के लिए गुणकारी और हृद्य होता है; तथा कफ, व्रण, कृमि, कै, पित्त, हृदयदाह, वायु, कुष्ठ, श्रम, तृषा, अरुचि, रक्तदोष, ऊर्ध्वरस, ज्वर और प्रमेह का नाश करता है।

नीम की कोंपल—ग्राही और वातकर होती है; तथा रक्त-पित्त, कुष्ठ, और नेत्र-रोग का नाश करती है।

नीम के पीले पत्ते—विशेषकर व्रण-नाशक होते हैं।

नीम के डंठल—कास, श्वास, गुल्म, अर्श, कृमि और प्रमेह का नाश करते हैं।

कच्ची निंबोली—भेदक, स्निग्ध, गुरु और चिकनी होती हैं; तथा नेत्र-रोग, कफ-रोग, क्षत-क्षय और रक्त-पित्त का नाश करती हैं।

नीम के बीजों का गूदा—कुष्ठ और कृमि का नाश करता है।*

---

* आयुर्वेद में नीम का वर्णन करते हुए लिखा है—नीम के पत्तों की पुल्टिस बाँधने से सब प्रकार की गाँठें बैठ जाती हैं। नीम के पत्तों को पीसकर शीतला के दागों पर लेप करने से बहुत लाभ होता है। पत्तों का रस पीने से पेट के कृमि नष्ट हो जाते हैं और शरीर पर फोड़े नहीं होते। चक्रदत्त में लिखा है—शरीर पर यदि फोड़े आदि हो जायँ तो नीम के पत्ते और तिल पीसकर उनकी पुल्टिस बाँधनी चाहिए। निंबोली के जुलाब से पेट के कृमि नष्ट हो जाते हैं। निंबोली का तेल गाँठ वाले फोड़ों और कुष्ठ पर बहुत शीघ्र असर करता है। नीम की छाल को अंग्रेजों ने भी ज्वर और चर्म-रोगों का नाशक माना है। और नीम के पत्तों को पानी में उबालकर उस पानी से घाव को धोना हितकारी बतलाया है। इस प्रकार धोने से

नीम का पंचांग—पित्त, रक्तदोष, दाह, कंडू, व्रण और कुष्ठ का नाश करता है।

बीजों का तेल—किंचित् उष्ण और कड़वा होता है; तथा कृमि, कुष्ठ, कफ, व्रण, वातपित्त, पित्त, अर्श, रक्तविकार, वायु, पेट की सूजन, ज्वर, जरा, कफ और पित्त का नाश करता है।

नीम की छाल—पाचक, कड़वी और ग्राही होती है।

उपयोग—

व्रण पर—नीम के पत्ते व्रण के लिए बहुत ही उपयोगी होते हैं। नीम के पत्तों को पानी में उबाल कर उसके जल से नासूर आदि भयंकर रोगों को धोने से बहुत ही लाभ होता है।

फूटे हुए फोड़ों के लिए—पिसे हुए नीम के पत्ते शहद में मिलाकर लेप करने से फूटे हुए फोड़े शीघ्र ही अच्छे हो जाते हैं।

खुजली पर—नीम के पत्ते जलाकर पुराने तेल या करंज के तेल में मिलाये। इसका लेप करने से खुजली बन्द हो जाती है।

सर्प के विष पर—नीम के पत्ते अत्यन्त गुणकारी होते हैं।

घाव—बिना सूजन चढे ही—शीघ्र भर जाता है। अंग्रेजों ने कुनैन की अपेक्षा ज्वर और संधिवायु पर नीम की छाल को पानी में भिगोकर पिलाना अधिक लाभदायक माना है। मेजर लोदर ने लिखा है—नीम के वृक्ष में से कभी कभी अपने-आप एक प्रकार का रस (मद) निकलने लगता है; वह पुराने घाव और नासूर के लिए बहुत ही उपयोगी होता है। इसके पत्तों का काढा पीने से कालरा नष्ट हो जाता है। पत्तों का रस ज्वर, अजीर्ण और रुधिरोग के लिए अत्यन्त लाभ-दायक होता है। चरक ने नीम को दीपनीय और खुजली-नाशक माना है। सुश्रुत ने इसे कफवात-नाशक और सूजन पर जलन को शान्त करनेवाला माना है। और कच्ची निंबोलियों को प्रमेह तथा ज्वर की गरमी भगाने में अत्यन्त उपयोगी बतलाया है।

यदि सर्प के विष की परीक्षा करनी हो, तो नीम के पत्ते, नमक और मिर्च खिलाना चाहिए। यदि ये कड़वे, खारे या चटपटे न लगें, तो समझ लेना चाहिए कि विष चढ़ आया है अथवा सर्पदंश हुआ है। पश्चात् जब तक विष न उतर जाय, तब तक उसे नीम के पत्ते खिलाना चाहिए और नीम की छाल अथवा पत्तों का रस पिलाना चाहिए। इससे विष बहुत शीघ्र उतर जाता है।

पित्त गिराने के लिए—नीम के पत्तों का रस पानी में मिलाकर पीने से क़ै होकर पित्त निकल जाता है।

गरमी पर—नीम के पत्तों के रस में शक्कर मिलाकर सुबह-शाम आठ दिन तक पीने से सब प्रकार की गरमी शान्त हो जाती है।

कुष्ठ रोग पर—नीम के पत्ते बहुत लाभ-दायक हैं। नीम के पत्तों का रस मिले हुए जल से स्नान करना और गाय के दूध में पत्तों को पीसकर उसका दो-तीन महीने तक नियम-पूर्वक सेवन करना चाहिए। इससे रक्तपित्त और दुर्द्धर्ष कुष्ठ-रोग का नाश हो जाता है। रोगी को रात्रि में नीम की छाया के नीचे सोना चाहिए।

दाहयुक्त सूजन पर—नीम के पत्तों को पीसकर लगाना चाहिए। इससे रक्त शुद्ध होकर दाह शान्त हो जाता है।

पित्त ज्वर के दाह पर—नीम के पत्तों का फेन-युक्त रस शरीर पर मलने से दाह शान्त हो जाता है।

गर्म ज्वर पर—नीम की कोंपल और चिरायते का काढ़ा शहद में मिलाकर देना चाहिए।

पाण्डु रोग पर—नीम की छाल के रस में शहद और सोंठ का चूर्ण मिलाकर देना चाहिए।

खुजली पर—पुराने नीम की सूखी लकड़ी को पानी में घिसकर लेप करना चाहिए।

विषम ज्वर पर—नीम की छाल के काढ़े में धनियाँ और सोंठ का चूर्ण मिलाकर देना चाहिए। इससे बहुत शीघ्र लाभ होता है। यह औषधि अधिक उत्तम और गुणकारी है।

मूलव्याधि, कृमि और प्रमेह पर—कच्ची निंबोली खिलानी चाहिए।

खुजली पर—नीम के बीजों को पीसकर लगाने से खुजली बंद हो जाती है। इस औषधि को सिर में लगाने से जुएँ भी मर जाती हैं।

मूलव्याधि पर—नीम के बीजों को तेल में तल कर, उसी में खूब महीन पीस ले। पश्चात् उसमें फुलाया हुआ तूतिया डाल-कर उसे मरहम की तरह लगाना चाहिए।

सर्प-विष न चढ़ने के लिए—रोज प्रातःकाल नीम के पत्ते खाने से सर्पदंश होने पर भी विष नहीं चढ़ता।

स्त्री को प्रसव न होने पर—नीम के मूल कमर पर बाँधने से प्रसव शीघ्र हो जाता है। प्रसव हो जाने पर मूल को छोड़ देना चाहिए।

सोमल के विष तथा कृमि पर—नीम के पत्तों का रस पिलाना चाहिए।

अफीम के विष पर—नीम के पत्तों का अर्क निकाल कर देना चाहिए।

पंचनिंब चूर्ण—नीम की जड़, पत्ते, फूल, फल और छाल का साठ तोला चूर्ण बनाए। पश्चात् लोह भस्म, छोटी हर्रें, अरनी

के बीज, त्रिफला, भिलावाँ, वायविडंग, शक्कर, आँवले, हल्दी, पीपल, काली मिर्च, सोंठ, बावची, अमलतास और गोखरू, इन पन्द्रह औषधियों को चार-चार तोला लेकर चूर्ण कर ले। फिर इसे नीम के चूर्ण में मिलाकर भाँगरे के रस और खैर के अष्टम अंश काढ़े में भिगो कर सुखा ले। यह चूर्ण रोज़ एक तोला खैर की छाल के काढ़े, घी, या गाय के दूध के साथ देना चाहिए। इससे एक महीने में सब प्रकार के कुष्ठ नष्ट हो जाते हैं। यह चूर्ण सर्व रोग नाशक है।

पित्त पर—नीम के डंठल, धनियाँ, सोंठ, और शक्कर का काढ़ा बनाकर देना चाहिए।

योनिशूल पर—निंबोली और एरण्ड के बीजों का गूदा नीम के रस में पीसकर योनि पर लेप करना चाहिए।

कृमि पर—नीम के पत्ते हींग के साथ खाने चाहिए।

शरीर पर पित्ती उछल आने पर—नीम के पत्ते पीसकर घी या आँवले के साथ खिलाना चाहिए और काली मिर्च का चूर्ण घी में मिलाकर शरीर पर मलना चाहिए; अथवा नीम की छाल का काढ़ा पिलाना चाहिए। इससे शीतपित्त, व्रत, कंडू, विस्फोट और रक्तपित्त का नाश होता है।

स्थावर, जंगम, सर्व विष पर—सिंधव और काली मिर्च, सम भाग में ले, तथा इन दोनों के बराबर ही निंबोली लेकर उन्हें पीसे, पश्चात् शहद और घी के साथ सेवन करे।

सर्व व्रण पर—नीम के पत्ते, दारु हल्दी, और मधुयष्टि के चूर्ण में घी और शहद मिलाकर उसे मरहम की तरह लगाना चाहिए; इससे घाव तुरन्त भर जाता है।

रक्तस्राव और प्रदर पर—नीम की छाल के रस में जीरा डालकर सात दिन तक देना चाहिए।

पाण्डुरोग पर—पानी में पिसे हुए नीम के पत्तों का पाव-भर रस निकाले, और शक्कर मिलाकर गरम-गरम पीने को दे।

सिक्तामेह और मधुमेह पर—नीम को छाल या डण्ठल का काढ़ा देना चाहिए।

कभी किसी प्रकार का रोग न होने के लिए—एक तोला नीम के पत्तों में एक रत्ती कपूर और उतनी ही हींग डाल कर उनकी गोलियाँ बनाये। पश्चात् एक-एक गोली रोज सोते समय छः माशा गुड़ के साथ देनी चाहिए। यदि गाँव में कालरा फैल गया हो, तो इस औषधि को रोज सेवन करने से किसी प्रकार का भय नहीं रहता।

कुष्ठ, कै, पित्त और कफ-सम्बन्धी रोगों पर—नीम के पत्तों को खूब बारीक पीसे और पानी में मिलाकर पी ले।

ग्रीष्मकाल में शरीर में ठण्ढक लाने और दस्त रोकने के लिए—नीम के पत्तों को पीसकर उसमें शक्कर मिलाकर पिलाना चाहिए।

मूलव्याधि पर—रोज प्रातःकाल तीन माशा पकी हुई निंबोली के रस में ६ माशा गुड़ मिलाकर सात दिन तक खाना चाहिए।

नहारू पर—नीम के पत्तों को पीसकर लेप करना चाहिए।

उरुस्तंभ पर—नीम की जड़ घिसकर, गरम करके लेप करना चाहिए।

प्रमेह, उपदंश, बद आदि पर—पावभर नीम की छाल को मिट्टी के बर्तन में रखकर, उसमें एक सेर अदहन रखा हुआ

पानी डाले और ढक कर रख दे। दूसरे दिन शक्ति के अनुसार एक या दो बार, चार-चार तोला पिये; इससे एक-दो सप्ताह में उपदंश-जन्य रोग अच्छे हो जाते हैं। पथ्य से रहे। घी, शक्कर और रोटी के सिवा कुछ न खाये।

विषमज्वर पर—चालीस तोले नीम के पत्ते बारह तोले सोंठ, काली मिर्च, पीपल, त्रिफला, और तीनों प्रकार के नमक, ८ तोला सज्जी और जवाखार, और बीस तोले अजवाइन, इन सबका चूर्ण करके रोज प्रातःकाल खाए।

विषमज्वर पर—नीम के पत्ते, घुड़बच, हर्र, शिरस, घी और गूगल; इनका धुआँ विषमज्वर-नाशक होता है।

आगंतुक व्रण, और फोड़े पर—कढ़ाई के गर्म तेल में नीम के पत्तों को जलाकर महीन कर ले। इसे फोड़े और आगंतुक व्रण पर लगाने से बहुत लाभ होता है।

बिच्छू के दंश पर—नीम के पत्ते या फूल सुँघाना चाहिए, अथवा पत्तियों को चबाते हुए मुँह की हवा न निकाल कर दंश के विषम भाग की ओर के कान मे फूँक देना चाहिए।

भूख बढ़ाने के लिए—दो तोला नीम की छाल को कूटकर आधा सेर पानी में उसका अष्टमांश काढ़ा बनाए और उसमें तीन माशा शहद डालकर रोज सबेरे पिये। इससे भूख खूब लगती और ज्वर से आई हुई अशक्ति दूर होती है।

ज्वर पर—नीम की छाल, कुटकी, चिरायता, गिलोय और अतीस का अष्टमांश काढ़ा बनाकर सुबह-शाम पिलाना चाहिए।

शीतला की और सब प्रकार की गर्मी पर—नीम की अन्तर छाल को आधा तोला के लगभग घिसकर उसमें एक पैसे भर

मिश्री मिलाकर पीना चाहिए। प्रमेह के लिए भी यह उपयोगी है।

दस्त साफ लाने और शक्ति के लिए—नीम के सूखे फूलों का तीन माशा कपड़े में छना हुआ चूर्ण रोज रात को गरम पानी के साथ लेना चाहिए।

शरीर के सब विकारों पर—दस तोला नीम की पत्तियो को पानी के साथ पीसकर उसमें पानी डालकर पीना चाहिए। इससे शरीर के सब विकार शान्त होते और शक्ति बढ़ती है।

सब प्रकार के ज़ख़्म पर—नीम के पत्ते पीसकर लगाना चाहिए।

सब तरह के चर्मरोगों पर—नीम का तेल (निंबोली से निकाला हुआ) लगाना चाहिए। खून की खराबी से शरीर पर पड़े हुए दाग़ों और मूलव्याधि के लिए भी यह बहुत उपयोगी है।

त्वचा की जड़ता पर—जिस त्वचा पर स्पर्श का असर न होता हो, उसे नीम के पत्तों की पुल्टिस से सेंककर नीम के पानी से स्नान करना चाहिए और फिर नीम के पत्तों को जलाकर उनकी राख जड़ त्वचा पर मलनी चाहिए।

अखरोट

अखरोट के वृक्ष चीन, ईरान और हिमालय के आसपास के देशों में होते हैं। संस्कृत में इसे अक्षोट, हिन्दी में अखरोट, मराठी में अकरोड़, बँगला में आखरोट, कर्नाटकी में आखोट, तैलिङ्गी मे उव्वकाई, फारसी में चातुंगज, अरबी में जोज-अंकु-

नाम, अंग्रेजी मे वालनट्, लैटिन में एल्युदराइटिस् ट्रायलोवा और गुजराती में अखरोड़ कहते हैं। अधिकतर उत्तरी हिन्दुस्थान में ये बहुत पाये जाते हैं। ३०-४० वर्ष पश्चात् इसमे फल आने लगते हैं। पके हुए फल अमरूद की तरह होते हैं। जब वे कच्चे होते हैं, तब वहाँ के लोग नमक में डाल कर उसका अचार बनाते हैं। उनका तेल खाने और जलाने के उपयोग में लाया जाता है। अखरोट मधुर, किंचित् खट्टा, स्निग्ध, शीतल, धातुवर्द्धक, उष्ण, रुचिप्रद, कफ-पित्तकर, जड़, प्रिय, बलकर और मलावरोधक होता है तथा वात, पित्त, क्षय, वायु, हृद्रोग, रक्तदोष, रक्तवात और दाह का नाश करता है। यह एक मेवा है। बहुत-सी औषधियों मे भी इसका उपयोग होता है। भिन्न-भिन्न रोगों पर यह अनुभूत सिद्ध हो चुका है; स्वादिष्ट होता है। खाने के लिए तो यह है ही।

उपयोग—

वायु से उत्पन्न हुई सूजन पर—अखरोट को जल में घिसकर लगाने से वायु से उत्पन्न हुई सूजन उतर जाती है।

स्तन में दूध उत्पन्न करने के लिए—अखरोट के पत्ते कूट कर सम भाग सूजी मे मिलाए और उनकी पूरियाँ बनाकर दूध के साथ खाए। सात दिन सेवन करने से स्त्रियों के स्तनों में बहुत दूध बढ़ जाता है।

पेट साफ़ करनेके लिए—अखरोट की छाल का काढ़ा बना कर पीने से, अथवा २—३ तोला तेल पीने से पेट साफ़ हो जाता है।

व्याधि, कृमि और गुल्म पर—कच्चे अखरोट का रस पीने से व्याधि, कृमि और गुल्म रोगों का नाश हो जाता है।

अर्श—अखरोट के तैल में कपड़ा भिगोकर बाँधने से इस रोग का अन्त हो जाता है।

अपस्मार—निर्गुण्डी के रस में इसके अन्दर की छाल घिस कर अंजन अथवा नस्य करने से लाभ होता है।

अंजीर

अंजीर के वृक्ष अधिकतर गर्म देशों में होते हैं। संस्कृत में इसे रामोदुम्बरिका फल, हिन्दी में अंजीर, बंगला में आंजीर, मराठी में अंजीर, कर्नाटकी में अंजीरि, तैलिङ्गी में मेडीपट्ु, फारसी में अंजीर, अंग्रेजी में फिग और लैटिन में फाइकस केरिका कहते हैं। तुर्किस्तान, अरब, ईरान, ग्रीस और अफ्रिका के दक्षिण भाग में अंजीर के वृत्त बहुत ज्यादा पाये जाते हैं। इनकी ऊँचाई दस हाथ से अधिक नहीं होती। अंजीर के पत्ते बड़े होते हैं। कच्चे अंजीर का शाक भी बनाया जाता है। यह स्वादिष्ट नहीं होता; परन्तु हितकारी होता है। पके अंजीर का मुरब्बा भी बनता है। यह पित्तनाशक और रक्तवर्द्धक होता है। अशक्त लोग रक्तवृद्धि के लिए प्रातःकाल इसका सेवन करते हैं। शिशिर ऋतु में ठण्ढ के कारण जब जीभ-मुँह फट जाते हैं, तब बहुत से लोग अंजीर के पत्तों की राख उस पर लगाते हैं। सूखे हुए अंजीर हमारे यहाँ अरब से आते हैं। अंजीर शीतल और स्वादिष्ट होते हैं। रक्तदोष, दाह, वायु और पित्त का नाश करते हैं।

उपयोग—

शरीर से गर्मी निकालने और रक्तवृद्धि के लिए—रात्रि के समय पके हुए अंजीर छीलकर दो प्यालों में सम भाग शक्कर सहित भर दे और ओस मे रखकर प्रातःकाल सेवन करे। इस प्रकार पन्द्रह दिन खाने से बहुत लाभ होता है।

पुष्टि के लिए—सूखे अंजीर के टुकड़े और छिली हुई बादाम गरम पानी में उबाले। बाद मे सुखाकर दानेदार शक्कर, अध-पिसी इलायची, केसर, चिरौंजी, पिश्ता और बादाम सम-भाग लेकर आठ दिन तक गाय के घी में पड़ा रहने दे। पश्चात् नित्य प्रातःकाल दो तोला तक सेवन करे। छोटे बालकों की शक्तिक्षीणता के लिए यह औषधि बड़ी हितकर है।

गले और जीभ की सूजन पर—सूखे अंजीर का काढ़ा बनाकर उसका लेप करने से गले और जीभ की सूजन पर लाभ होता है।

पुल्टिस—ताजे अंजीर कूट कर, फोड़े आदि पर बाँधने से शीघ्र आराम होता है।

अशक्ति और गर्मी पर—अच्छे पके हुए दो वजनदार अंजीर (अच्छा अंजीर वजन में लगभग सात तोला होता है।) मिश्री के साथ सवेरे के समय खाना चाहिए।

दस्त साफ लाने के लिए—दो सूखे अंजीर सोने से पहले खाकर ऊपर से पानी पीना चाहिए। सुबह दस्त साफ होता है।

अरीठा

भारतखण्ड-निवासी आर्य जनों के उदर-पोषण तथा शरीर-रक्षण के लिए दयालु ईश्वर ने इतने धन-धान्य और वनस्पतियों की सृष्टि की है कि उन्हें दूसरों के मुख की ओर देखने की आवश्यकता ही नहीं है। ईश्वर ने हम पर कितने उपकार किये हैं! परन्तु हम इतने कृतघ्न, आलसी, निर्लज्ज, स्वार्थी, विषयान्ध और मदान्ध हैं कि हमें उसके उपकारों का तनिक भी ध्यान नहीं है! इन्द्र के नन्दनवन की शीतल वायु से भी अधिक सुखप्रद और हितकर वायु ईश्वर ने हमें दी है; परन्तु उसे तुच्छ समझकर हमें स्वीज़रलैण्ड आदि विदेशों में आनन्द आ रहा है! स्फटिक की तरह शुभ्र, स्वच्छ, अमृत की तरह मीठा और गुणकारी निर्मल जल हमारे यहाँ जगह-जगह बह रहा है; परन्तु इस ओर दृष्टि न करके हम सोडा वाटर, बरांडी आदि अशुद्ध पेयों को हितकर समझने लगे हैं! नल, भीम आदि पाकशास्त्रवेत्ताओं के सर्वदुःखहारी पाक, हमारे राज-कुलोत्पन्न भाइयों को अच्छे न लग कर, ३००० कोस दूर विदेश से आया हुआ निषिद्ध मांस स्वादिष्ट लगने लगा है! दुर्द्धर्ष व्याधि-हारी अनेक औषधियों के गुणों की व्याख्या धन्वन्तरि, आत्रेय, अश्विनीकुमार, पाराशर, चरक, सुश्रुत वाग्भट्ट, अग्निवेष, वंगसेन आदि महान् ऋषिवर्य कर गये है; परन्तु उन्हें तृण समान जानकर हम विदेशियों के शीशे के पात्रों में रखा हुआ अपवित्र और हानिकारक जल अमृत के समान समझने लगे हैं! हमारी बुद्धिमानी, न्याय-नीति और दूर-दर्शिता को धन्य है! ऐसे बुरे आचरणों से हम

दीन, हीन, दुर्बल और कंगाल बन गए हैं, तो इसमें आश्चर्य की कौन सी बात है ।

अरीठे के वृक्ष भारतवर्ष में अधिकतर सभी जगह होते हैं । संस्कृत में इसे अरिष्ट, हिन्दी में अरीठा, मराठी में रीठा, करंज, कनाड़ी में अटाल, तैलिङ्गो में कंकुदु, फारसी में फिद्क, अरबी में बुन्दक, अंग्रेजी में सोपबेरी सोपनटट्री और लैटिन मे सेपिस्त इसार्जिटस् सोपिडस् ट्रिफोलिएट्स कहते हैं । यह वृक्ष बहुत ही बड़ा होता है, इसके पत्ते गूलर से भी बड़े होते हैं । अरीठे के वृक्ष को साधारण समझना केवल भ्रम है । ईश्वर ने यह इसलिए बनाया है कि अन्य लोगों के देखा-देखी हमें साबुन बनाने का श्रम न करना पड़े । अरीठे को पीसकर सिर में डाल लेने से साबुन की आवश्यकता ही नहीं रहती । अरीठे के वृक्ष की तरह ही शिकाकाई के वृक्ष को भी समझना चाहिए । यह ईश्वर-निर्मित साबुन, विदेशियों के चरबी-मिश्रित साबुन से सौगुना सस्ता और हितकर होता है । ईश्वर की इस भेंट को हम "कूड़ा-कर्कट" कहकर चरबी-मिश्रित क्षार अपने मुँह पर घिसते नहीं हिचकिचाते ! क्या अरीठे से शरीर स्वच्छ नहीं हो सकता ? नहीं, यह केवल भ्रम है । कितना ही सुगन्धि-युक्त और अच्छा साबुन क्यों न हो ; परन्तु वह अरीठे और शिकाकाई की किसी प्रकार भी बराबरी नहीं कर सकता । खुजली, उपदंश आदि त्वचा के रोगों को धोने के लिए जितना उपयोगी अरीठा होता है, उतना साबुन नहीं हो सकता । इतना हितकर और सस्ता होते हुए भी हम अरीठे को काम में नहीं लाते, यह कितनी मूर्खता है !

अरीठे के बीज, छोटे बालकों के गले में बाँध देने से नजर

नहीं लगती । उन बीजों को बजरबट्टू कहते हैं । बहुत से लोग उनकी माला बनाकर घोड़ों के गले में भी बाँधते हैं । अरीठे के पत्तों के रस में पारा घिसने से उसकी गोली बँध जाती है । उस गाली को साफ किये हुए बरतन पर लगाने से बरतन कलई की तरह चमक उठते हैं । चाँदी, सोने के आभूषणों को साफ करने के लिए भी सुनार को अरीठे का उपयोग करना पड़ता है । अरीठे को शरीर पर लगा कर स्नान करने से शरीर साफ और केश रेशम की तरह मुलायम हो जाते हैं । मैले वस्त्र भी अरीठे के जल में भिगोकर धोने से साफ हो जाते हैं । साबुन जैसे अशुद्ध और महँगे पदार्थ को छोड़कर हमें अपने देश में उत्पन्न हुए अरीठे का ही उपयोग करना चाहिए । अरीठा, तीक्ष्ण, उष्ण, लेखन, गर्भ-पातकारी, लघु और स्निग्ध होता है । यह ग्रहपीड़ा, दाह और शूल को नष्ट करता है ।

उपयोग—

सर्प, सोमल तथा अफीम के विष पर—अरीठा विषनाशक पदार्थ होता है । यदि सर्प काट खाय, तो अरीठे का पानी आँख में आँजने से विष उतर जाता है । यदि विष बहुत चढ़ गया हो, तो अरीठे का पानी पिलाना चाहिए, इससे क़ै होकर विष शीघ्र उतर जाता है । यह दवा अफ़ीम, सोमल आदि सब चीजों का विष दूर कर देती है । अंजन करने के पश्चात् अरीठे के पत्तों का रस भी शरीर पर मलना चाहिए । विष उतर जाने पर आँखों में जलन होने लगती है और वे सुर्ख हो जाती हैं । आँखों में ठंढक लाने और सुर्खी को भगाने के लिए दो-चार दिन तक मक्खन अथवा ताज़ा घी आँजना चाहिए । किसी भी रोग को दूर करने के

लिए यदि अरीठा आँख में आँजना पड़े, तो तुरन्त घी या मक्खन अवश्य लगा देना चाहिए, नहीं तो जलन होने लगती है।

बिच्छू के विष पर—एक अरीठे के छिलके को गुड़ मे मिलाकर उसकी तीन गोलियाँ बनाये। उनमें से एक गोली खाकर थोड़ा ठण्ढा जल पिये, थोड़ी देर बाद दूसरी गोली खाकर गरम जल पिये। इसके पश्चात् थोड़ी देर में तीसरी गोली खाये और ऊपर से ठण्ढा जल पी ले। इस औषधि से विष शीघ्र उतर जाता है। यदि किसी को तम्बाकू पीने को आदत हो, तो तम्बाकू की जगह अरीठा चिलम मे रखकर धूम्र-पान करे। इससे भी बिच्छू का विष उतर जाता है।

छाती में कफ जम जाने पर—अरीठे की छाल खाने से कफ पतला होकर तुरन्त निकल जाता है।

कफवृद्धि पर—अरीठे का पानी पिलाना चाहिए और फेन पेट पर मलना चाहिए।

मस्तक के रोगों पर—अरीठे के पत्तों के रस में काली मिर्च को घिसकर नाक मे डालना चाहिए। इससे मस्तकशूल, आधा-शीशी आदि सब प्रकार के मस्तक-रोग नष्ट हो जाते हैं।

प्रसूता स्त्रियों के लिए—जिस प्रसूता स्त्री का मस्तक भारी होकर घूमने लगता है, आँखों के आगे अँधेरा छा जाता है, और दाँत चिपक जाते हैं, उसे समझ लेना चाहिए कि उसे अनन्तवात या नन्दवायु-रोग हो गया है। उसकी आँख में अरीठे के फेन का अंजन करना चाहिए और दो-तीन दिन तक घी अथवा मक्खन आँखों में लगाना चाहिए।

उष्णता से उत्पन्न हुए रोगों पर—अरीठे का फेन दिन

में दो-चार बार लगाकर मलना चाहिए। इसके पश्चात् गरम पानी से धो लेना चाहिए।

धूप में नंगे पैर घूमने से उत्पन्न हुई जलन पर—अरीठे का फेन मलने से ठण्ढक होती है।

नहारू पर—अरीठे के बीजों की गरी हींग को कूट कर गरम करके बाँधना चाहिए।

अपस्मार—नीबू के रस में अरीठे को घिसकर उसका नस्य करना चाहिए।

दस्त और कै बन्द करने के लिए—अरीठे को मसलने से जो फेन निकले, उसे पेट तथा पैरों पर मले और पिये।

रक्तगुल्म पर—अरीठे के पानी में कड़वी वृन्दावनी का मूल घिसकर पीने से रक्तगुल्म गिर पड़ता है।

धनुकी रोग पर—अरीठे का फेन निकाल कर दोनों आँखों में अंजन करना चाहिए। लाभ होता दिखलाई देने पर तीन दिन तक आँखों में मक्खन लगाना चाहिए।

ढोरों को सर्प के काट खाने पर—अरीठे के फेन का अंजन करना चाहिए और लगभग एक सेर तक अरीठे का पानी पिलाना चाहिए।

बच्चों के कृमि पर—गुड़ मे दो रत्ती अरीठे की छाल की गोली बनाकर देनी चाहिए।

श्वास और श्वासयुक्त खाँसी पर—अरीठे के बीज की गरी (मिंगी) और सोंठ को एकत्र करके गुड़ में उसकी गोलियाँ बनाए। श्वास-रोगी को यह गोली रोज मुख में रखनी चाहिए।

पेट के दर्द पर—अरीठे और करंजवे (कटुकरंजा) के

बीज की मिंगी का चूर्ण बराबर-बराबर लेकर उसमें आधा हिस्सा हींग और संचल डालकर अदरक के रस में चने के बराबर गोली बनाए और दिन मे तीन बार दो-दो गोली गरम पानी के साथ दे। एक सप्ताह में पेट का सख्त दर्द भी आराम होता है।

फिट (दौरा) के कारण आई हुई बेहोशी पर—तीन-चार रत्ती अरीठे को पानी में मसलकर वह पानी नाक में डालना चाहिए। पानी नाक में जाते ही मनुष्य सावधान होता है। प्रत्येक दौरे के समय ऐसा करने से सदैव के लिए दौरे की बीमारी दूर होते भी देखी गई है।

दौरे पर—अरीठे की धूनी देनी चाहिए।

स्त्रियों के आर्त्तवजन्य उन्माद पर—अरीठे की धूनी देनी चाहिए। आर्त्तवजन्य उन्माद को ही अंग्रेजी में 'हिस्टीरिया' कहते हैं। इसमें यदि ऋतु साफ न आती हो, तब तो अरीठे के समान दूसरी औषधि नहीं है।

आर्त्तव—ऋतु—साफ आने के लिए—तीन-चार अरीठों का पानी रोज एक बार सोते समय देना चाहिए।

प्रसूति के समय गर्भ बाहर न निकलने पर—अरीठे की छाल कूट कर बत्ती बनाकर योनि में रखने से गर्भ शीघ्र बाहर आ जाता है।

ऋतु की अनियमितता और पेट आदि के दर्द पर—उपर्युक्त प्रकार से अरीठे की छाल कूटकर उसकी बत्ती योनि में रखनी चाहिए।

सब प्रकार के विष पर—अरीठे का पानी आँख और नाक मे डालना चाहिए।

सख़्त ज्वर में दीमाग़ खराब न होने देने के लिए—आज-कल बर्फ की थैली सिर पर रखने का रिवाज हो गया है। इसके बदले यदि अरीठे के पानी की पट्टी सिर पर रखी जाय, तो उससे कोई तकलीफ नहीं होती और ज्वर उतरने मे मदद मिलती है।

इमली

इमली भारतवर्ष में तो सब जगह होती है; परन्तु अमेरिका, अफ्रीका, और एशिया के बहुत से देशों में भी पाई जाती है। संस्कृत में इसे चिंचा, हिन्दी में इमली, गुजराती में आमली, मराठी में चिंच, बंगला मे आमरुल, तेकल या तेंतुल, कर्नाटकी मे हुणीसे या हुणसी, तैलिंगी में चिन्ताचेट्टु, तामील मे पुलियामारं या पुलि, मलयलम में आमलं या चिंचा, उड़िया में कआँ, अरबी मे तमर हिन्दी, लैटिन में टेमेरिंड्स इंडिकस् और अंग्रेजी में टेमेरिंड ट्री कहते हैं। इसके वृक्ष बहुत बड़े होते हैं। आठ वर्ष के पश्चात इसमें फल आने लगते हैं। माघ और फागुन के महीनों में इमलियाँ अच्छी तरह से पक जाती हैं। इमली गृह-खर्च के लिये रखी जाती है, तो उसके बीज निकाल दिये जाते हैं और उसमें नमक मिलाकर लड्डू बाँध लेते हैं। नमक न मिलाने से उसमें कीड़े पड़ जाते हैं। यह शाक, दाल, चटनी आदि कई चीजों में डाली जाती है। खट्टी होने के कारण वह मुख को स्वच्छ करती है। भात के साथ खाने के लिये इमली का पन्ना बनाया जाता है। पुरानी इमली नई इमली से अधिक पथ्यकारक है। इमली के बीजों को—जो कि चियें कहलाते हैं—ग़रीब लोग सेंक कर खाते

हैं। उनसे बड़े उत्तम प्रकार का तेल निकलता है; परन्तु लोग ख़राब समझ कर उसकी ओर ध्यान नहीं देते, यह कितनी मूर्खता है! बहुत से लोग इमली के बीजों से खेलते भी हैं। इमली के पत्तों का शाक और फूलों की चटनी बनाई जाती है। इमली की लकड़ियाँ बहुत मजबूत होती हैं, इसलिये लोग उनके कुल्हाड़ी आदि के दस्ते भी बनाते हैं। इमली की लकड़ी के कोयले भी बनाये जाते हैं।

इमली का वृक्ष—गुरु, उष्ण, खट्टा, पित्तकर, कफप्रद, रक्त-कोपन और वातनाशक होता है।

इमली के फूल—फीके, स्वादिष्ट, खट्टे, रुचिकर, विशद, अग्निदीपक और लघु हैं; तथा वायु, कफ और प्रमेह का नाश करते हैं।

इमली के पत्ते—सूजन और रक्तदोष का नाश करते हैं।

कच्ची इमली—अति खट्टी, ग्राहक, उष्ण, रुचिकर, अग्नि-दीपक होती है; और रक्त-पित्त, पित्त, कफ और वात का नाश करती है।

पुरानी इमली—वात-पित्त-कारी होती है।

पकी इमली—मधुर, सारक, खट्टी, हृद्य, भेदक, मलस्तंभक, दीपन, रुचिकर, उष्ण और रुक्ष होती है; तथा व्रणदोष, कफ, वायु और कृमि का नाश करती है।

सूखी इमली—हृद्य और लघु होती है। यह श्रम, भ्रान्ति, तृषा और कृमि को नष्ट करती है।

नई इमली—वात और कफ को बढ़ानेवाली होती है; परन्तु एक वर्ष पश्चात् वही वात-पित्त-नाशक हो जाती है।

इमली की सूखी छाल का खार—अग्निमांध और शूल का नाश करता है।

पकी इमली का गूदा—खट्टा, मधुर, रुचिकर और व्रण-नाशक होता है तथा सूजन और पंक्तिशूल पर लेप करने से उसका नाश हो जाता है।

इमली का पन्ना—दाह और कफ करने वाला, अति खट्टा तथा वात-नाशक होता है; परन्तु यदि वह सम भाग शक्कर में डालकर बनाया जाय तो दाह, पित्त और कफ का नाश करता है।

उपयोग—

रक्त-अर्श पर—इमली की छाल का चूर्ण बना, कपड़े से छान कर सुबह तथा शाम को गाय के दही के साथ सेवन करना चाहिये।

प्रमेह पर—इमली की छाल की ६ माशा राख को १ छटाँक कच्ची गरी के साथ मिलाकर दिन में दो बार सेवन करना चाहिए। लगभग ५-६ दिनों तक इसका सेवन करना चाहिए।

पांडुरोग—इमली की छाल की राख बनाए और एक तोला के लगभग, ४ तोला बकरी के मूत्र में मिलाकर दे।

बिच्छू के विष पर—इमली के सिके हुए बीजों को सफेद भाग दिख आने तक घिसकर लगाए। वे विष चूस कर आप-ही-आप गिर पड़ेंगे।

शूल पर—इमली की छाल का चूर्ण अथवा भस्म गर्म जल में डालकर पिलाना चाहिये।

चूहे के विष पर—४ तोला इमली और २ तोला धमासे को पुराने घी में घोंटकर सात दिन तक खाना चाहिये।

आँखें दुखने पर—इमली के हरे पत्तों को एरण्ड के पत्तों में बाँधकर ऊपर से कपरौटी करे और अग्नि में पकाये। पश्चात् उसका स्वरस निकाल कर उसमें फूली हुई फिटकरी और चनाभर अफीम ताँबे के बरतन मे घोंटे और उसमें कपड़ा भिगोकर आँखों पर रखे।

अजीर्ण पर—इमली के ऊपर की छाल को जलाकर, सोते समय लगभग छः माशा तक खाकर गर्म जल पीना चाहिए।

भूख कम लगने पर—इमली के पत्तों की चटनी बनाकर खानी चाहिए।

भङ्ग के नशे पर—इमली को गलाकर उसका पानी पिलाना चाहिए।

अरुचि और पित्त पर—अन्दर से पकी हुई और अधिक गूदे वाली इमली को ठण्डे जल मे मसल कर शक्कर मिलानी चाहिए। इसके पश्चात् उसमें इलायची के दाने, लौंग, कपूर और काली मिर्च डालकर, बारम्बार उससे कुल्ले करना चाहिए। इससे अरुचि और पित्त का नाश होता है।

कब्ज़ तथा पित्त पर—एक सेर इमली, दो सेर पानी में चार पहर तक गलाये, इसके पश्चात चूल्हे पर चढ़ा दे। जब आधा पानी जल जाये, तो उसमें दो सेर शक्कर की चाशनी बनाकर मिला दे और शर्बत की तरह बनाकर रोज़ दो तोला से लेकर पाँच तोला तक पिये। कब्ज़वाले को रात्रि में और पित्तवाले को प्रातः-काल पीना चाहिए।

अरुचि और अजीर्ण पर—सुपारी के बराबर पुरानी इमली लेकर एक कलई के बर्त्तन में पाव भर पानी डालकर उसमें भिगोदे। जब खूब अच्छी तरह गल जाय, तब हाथ से अच्छी तरह मसल

कर उसका पानी दूसरे कलई के बर्तन में निकाल ले और फिर उसमें सेंधा नमक, जीरा और शक्कर अंदाज से डालकर घी में हींग का बघार देकर छौंक दे। यह इमली का पानी बहुत रुचि-कारक और अन्न को पचाने वाला है।

पित्त पर—रात के समय लगभग एक सेर इमली लेकर एक कलई के बर्त्तन में दो सेर पानी डालकर भिगोदे। रात भर भीगी रहने दे। दूसरे दिन पानी सहित बर्त्तन को चूल्हे पर चढ़ा दे। अच्छी तरह उबल जाने पर उसे छानकर उसमें दो सेर शक्कर डाले और एक तार छूटने तक पकाये। एक तारी हो जाने पर उतार कर ठण्ढा करले और प्रति बार एक-एक तोला के प्रमाण से पित्त शान्त होने तक दे। इससे क़ै भी बन्द हो जाती है। इसे इमली का शरबत कहा जाता है।

शराब, भङ्ग आदि मादक पदार्थों के नशे पर—इमली तीन तोला, खजूर, कालीद्राक्ष, अनारदाने फालसे और आँवले एक-एक तोला लेकर आधा सेर पानी में भिगो दे। अच्छी तरह भीग जाने पर छान ले। यह शरबत नशा चढ़ाने पर थोड़ा-थोड़ा पीना चाहिए।

उल्टी और अम्लपित्त पर—इमली की छाल उसके छिलके सहित जलाये और यह राख एक तोला लेकर नौ टंक पानी में डालकर पिलाये। इससे उल्टी तुरन्त बन्द होती है। अम्लपित्त की जलन और उल्टी पर यह पानी भोजन के बाद देना चाहिए।

पेट के शूल पर—दो माशा इमली की राख शहद में मिला कर चाटना चाहिए।

पित्तशमन के लिए इमली का गुलकन्द—इमली के फूल और मिश्री लेकर एक शीशे के मर्तबान में पहले इमली के फूलों

की एक तह जमा दे, फिर उस पर मिश्री डाले ; मिश्री पर फिर फूल, फूलों पर मिश्री ; इस प्रकार मर्तबान को भरकर आठ दिन तक धूप में रखे। बहुत उत्तम गुलकन्द तयार हो जाता है। यह पित्त के लिए बहुत ही गुणकारी है।

हैज़े पर—पुरानी इमली, लहसुन (मट्ठे में भिगोकर छीली हुई) और भिलावाँ को समान भाग में लेकर इमली के गूदे में अच्छी तरह घोंटे और मोती के बराबर गोली बनाकर रख ले। पन्द्रह-पन्द्रह मिनट के बाद एक-एक गोली एक चमचा प्याज के रस के साथ देनी चाहिए।

आम

आम के वृक्ष अधिकतर गर्म देशों में होते हैं। संस्कृत में इन्हे आम्र, हिन्दी और बंगला में आम, कर्नाटकी में माविनेमारा, या मावपहेण्ण, तैलङ्गी में मामिडीचेट्ट या मर्वी, तामील मे मामरं, मलयलम में मावु, मराठी मे आँबा, गुजराती में आँबो, अरबी में अबज, अंग्रेजी में मेङ्गो ट्री और लैटिन में मेंगोफेरा इंडिका कहते हैं। आम के वृक्ष जितने हिन्दुस्थान में होते हैं, उतने और कहीं नहीं होते। इनके वृक्ष बहुत बड़े होते हैं। आम की कई जातियाँ होती हैं। कलमी आम के वृक्ष छोटे होते है। देशी आम को चूस कर खाया जाता है और कलमी को चीरकर खाने की आवश्यकता होती है। आम मीठा और अतिशय मधुर होता है। अमीर से लेकर गरीब तक, सब इसका उपयोग करते हैं। गरमी में, राहगीर धूप से अकुलाकर, आम के वृक्षों के नीचे विश्राम करते हैं और

आम खाकर तृप्त होते हैं। आम के वृक्षों की छाया बहुत ही शीतल होती है। आम की लकड़ियों की कई चीजें बनाई जाती हैं। आम के दूध से गोंद बनता है और उसकी राल बनाई जाती है। आम से अनेक प्रकार की चीजें बनती हैं। अच्छे आमो का मुरब्बा बनाया जाता है। यह मुरब्बा रक्तवर्द्धक होता है। इसके अतिरिक्त आम के कई तरह के अचार भी बनाये जाते हैं। आमों में गुड़ डालकर उसकी मीठी चटनी बनाई जाती है। कच्चे आमों को काटकर सुखा लेने से उसका अमचूर बन जाता है। इमली की तरह यह भी शाक, दाल आदि चीजों में डाला जाता है। यह इमली से अधिक रुचिकर होता है। रंगरेज लोग इसे रंग मे भी डालते हैं। आमों का पन्ना भी बनाया जाता है। कच्चे आमों में नमक-मिर्च डाल कर उसका कचूमर बनाया जाता है। आम की गुठली को फोड़ने से जो बीज निकलता है, वह खाने में बड़ा स्वादिष्ट लगता है। उसे गुठली-सहित सेक कर, पानी में गला कर खाना चाहिए। कोंकण देश के लोग, गरमी और बरसात के दिनों मे, जब तक वहाँ धान उत्पन्न नहीं होता, तब तक आम की गुठलियों पर ही अपना निर्वाह करते हैं। वे इसके गूदे की मोटी रोटियाँ बनाकर खाते हैं। इसका तेल बड़ा गुणकारी होता है। ग्रीष्म ऋतु में लोगों को सुख देने के लिए परमेश्वर ने ऐसे मधुर और स्वादिष्ट फल की सृष्टि की है। ईश्वर की हम पर कितनी कृपा है, यह इसी से मालूम हो जाता है। कच्चे आम उष्ण, सुगन्धित, खट्टे, रुचिकर, ग्राही और रुक्ष होते हैं। वात, पित्त, कफ और रक्त-दोष को उत्पन्न करनेवाले, तथा कण्ठरोग, प्रमेह, योनिदोष, व्रण और अतिसार का नाश करते हैं।

उबाल कर पकाये हुए आम—मधुर, शीतल, जड़, बल-

कर, धातुवर्द्धक, पुष्टिकर, त्रिदोष-नाशक, कफकर, अग्निदीपक, वृष्य, मलस्तंभक, प्रिय, स्निग्ध, सुखकर और कान्तिवर्द्धक होते हैं; तथा वायु, तृषा, दाह, पित्त, श्वास, श्रम और अजीर्ण का नाश करते हैं।

उपयोग—

आमातिसार पर—आम की गुठली को दही में पीसकर देना चाहिए।

गर्भवती स्त्री के अतिसार पर—यदि गर्भवती स्त्री को अतिसार हो जाय, तो आम की गुठली को फोड़ कर उसका बीज खिलाना चाहिए।

रक्त-अर्श और प्रदर पर—आम की गुठली का चूर्ण शहद में मिलाकर देना चाहिए।

पसीना अधिक आने पर—गुठली को पीसकर शरीर पर लगाना चाहिए।

प्रमेह पर—आम की अन्तर छाल का रस चार तोला और चूने का पानी एक तोला मिलाकर लगातार सात रोज तक देना चाहिए।

नाक से लहू गिरने पर—यदि गरमी के कारण नाक से लहू गिरने लगे, तो आम की गुठली का रस निकाल कर डालना चाहिए।

उष्ण ज्वर पर—आम की जड़ गले अथवा हाथ पर बाँधनी चाहिए।

दाह और अतिसार पर—आम की अन्तर छाल दही में पीसकर एक तोला तक देनी चाहिए।

रक्तातिसार पर—आम की गुठली, छाछ या चावल के धुले हुए पानी में पीसकर देनी चाहिए। अथवा आम की छाल दूध में पीसकर शहद में मिलाकर देनी चाहिए।

उपदंश पर—आम की छाल का रस बकरी के दूध में मिलाकर देने से उपदंश तथा व्रण की पीड़ा दूर होती है।

लहू की कै होने पर—आम की गुठली का रस नाक में डालना चाहिए।

मूलव्याधि पर—आम के सूखे हुए पत्तों का चूर्ण करके उसका धूम्र-पान करना चाहिए।

सब प्रकार की गर्मी पर—आम की अन्तर छाल, गूलर की जड़ की छाल और बड़ की जड़ का रस निकालकर, उसमें जीरा तथा मिश्री मिला कर देना चाहिए।

रक्तातिसार पर—आम की अन्तर छाल दूध में पीसकर शहद के साथ देनी चाहिए।

कान के दर्द पर—आम के मौर को पीसकर तैल मे मिलाकर कान में डालना चाहिए।

सिर के दर्द पर—आम की गुठली और छोटी हर्र का चूर्ण दूध में मिलाकर मस्तक पर लेप करना चाहिए।

अंडवृद्धि पर—आम के वृक्ष पर की गाँठ को गोमूत्र में घिसकर लेप करना तथा सेकना चाहिए।

स्वर बिगड़ जाने पर—आम के पत्तों का काढ़ा शहद के साथ देना चाहिए।

कमजोरी दूर करने के लिए—भोजन के समय पेट भर

कर आम खाने चाहिए। इससे किसी भी कारण से पैदा हुई कमजोरी दूर होती है।

दाह पर—आम की चार फाँके रोज खानी चाहिए। दाह शान्त होता है। आम अग्निवर्द्धक और रुचिप्रद होता है। बहुत खाने पर भी इससे भूख नहीं मरती ; बल्कि दूसरे पदार्थों पर रुचि उत्पन्न होती है। पर वैशाख और जेठ मास में ही आम खाना अच्छा होता है।

प्रदर पर—आम की अन्तर छाल मे आधा सेर पानी डाल कर उसका अष्टमांश काढ़ा बनाए और उसमें शक्कर डालकर पिलाए। चार दिन मे लाभ होता है।

बच्चों के अतिसार पर—आम की गुठली को सेक कर उसका चार माशा चूर्ण शहद से गीला करके देना चाहिए।

कृमि पर—उपर्युक्त प्रमाण मे आम की गुठली का चूर्ण थोड़े से शहद में देना चाहिए।

अतिसार पर—आम के पेड़ की चार तोला अन्तर छाल को कूटकर आधा सेर पानी मे, मंदाग्नि पर अष्टमांश काढ़ा बनाए। काढ़ा तैयार हो जाने पर उसमें शहद डालकर अतिसार के रोगी को पिलाना चाहिए। पेट मे मरोड़ उठकर आँव गिरने पर भी यही काढ़ा देना चाहिए।

इलायची

इलायची हिन्दुस्थान तथा इसके आस-पास के गर्म देशों में उत्पन्न होती है। यह ठण्ढे देशों में नही होती। यह मलाबार, कोचीन, मंगलोर तथा कर्नाटक में बहुत पैदा होती है। इसे संस्कृत

में एला, हिन्दी में इलायची, गुजराती में एलचो, मराठी में वेलदोड़े, बङ्गला में एलायच, कर्नाटकी में यालकक्की, तैलिङ्गी में एलाकी, तामील में एल या इलाची, मलयलम में एलु या एलातरी, फ़ारसी में हैल या हाल, अरबी में काकीलसिगार, अंग्रेजी में कार्डेमम्, लैटिन में इलेटेरिया कार्डीमोमं कहते हैं। इसके वृक्ष हल्दी के वृक्ष के जैसे होते हैं। मलाबार प्रान्त में इलायचो आप-ही-आप पैदा होतो है। मलाबार से प्रतिवर्ष बहुत-सी इलायची इंलैण्ड तथा दूसरे देशों में बेचने के लिये भेजी जाती है। इलायची स्वादिष्ट होती है। यह अधिकतर खाने के पदार्थों में ही डाली जाती है। बड़ी इलायची के नाम से इसकी एक दूसरी जाति पहाड़ों पर आप-ही-आप उत्पन्न होती है। यह लहसुन के बराबर होती है। छोटी इलायची कड़वी, शीतल, तीक्ष्ण, लघु, सुगन्धित, पित्तकर, र्भ-पात-कारी, और रुच होती है तथा वायु, कफ़, अर्श, क्षय, वषदोष, वस्तिरोग, कण्ठरोग, मूत्रकृच्छ्, अश्मरी और व्रण का नाश करती है। इलायची रात्रि को कदापि नहीं खानी चाहिए, कारण कि इससे कोढ़ हो जाता है। बड़ी इलायची तीक्ष्ण, रुक्ष, रुचिकर, लघु, मुख-शुद्धि-कर, सुगन्धित, पाचक शीतल और अग्निदीपक होती है। यह कफ, पित्त, रक्तरोग, हृद्रोग, विषदोष, क़ै, तृषा और वस्ति, मुख तथा मस्तक के शूल का नाश करती है।

आँखों में जलन होने अथवा धुँधला दीखने पर—इलायची के दाने और शक्कर सम भाग लेकर कूट ले और उसमें से चार माशा चूर्ण में एरण्ड डालकर, प्रातःकाल दतौन करने के पश्चात् सेवन करे। इसमे मस्तिष्क और आँखों में ठण्ढक होती तथा आँखों की ज्योति बढ़ती है।

रक्त-प्रदर, रक्त-मूल-व्याधि और रक्तमेह पर—इलायची के दाने, केसर, जायफल, वंशलोचन, नागकेसर और शंखजीरे को सम भाग लेकर उनका चूर्ण करे और प्रतिदिन दो माशा चूर्ण, दो माशा शहद, छः माशा गाय का घी और तीन माशा शक्कर में मिलाकर सेवन करे। इसे दिन में दो बार अर्थात् प्रातः और सायंकाल खाना चाहिये। लगभग चौदह दिन तक इसे सेवन करना चाहिये। रात्रि के समय इसे खाकर आध सेर गाय के दूध को शक्कर डालकर तपाये और पीकर सो जाये। जब तक यह औषधि सेवन करे, तब तक गुड़, गरी आदि गर्म चीजें न खाय।

कफ रोग पर—इलायची के दाने सेंधा नमक, घी और शहद को मिलाकर पिये।

धातुपुष्टि पर—इलायची के दाने, जावित्री, बादाम, गाय का मक्खन और मिश्री को मिलाकर प्रातःकाल सेवन करने से वीर्य की वृद्धि होती है।

मूत्रकृच्छ्र पर—इलायची के दानों का चूर्ण करके शहद मे मिला कर खाना चाहिए।

उदावर्त्त रोग पर—थोड़ी इलायची लेकर घी के दिये पर सेंके। इसके पश्चात् उनका चूर्ण करके शहद में मिलाकर चाटे।

मुख के रोग पर—इलायची के दानों के चूर्ण और सिकी हुई फिटकिरी के चूर्ण को मिला के मुँह मे रखकर लार गिरा दे। इसके पश्चात् मुख को स्वच्छ पानी से साफ कर ले। दिन में चार-पाँच बार ऐसा करना चाहिए।

सब प्रकार के शूल पर—इलायची के दाने, हींग, इन्द्रजव और सेंधा नमक का काढ़ा बनाकर एरण्ड के तेल में मिलाकर देना

चाहिए। इससे कमर, हृदय, उदर, नाभि, पीठ, कुक्षि, मस्तक, कान और नेत्र में उठता हुआ शूल शीघ्र ही मिट जाता है।

जीर्ण ज्वर और सर्व ज्वर पर—इलायची के दाने, वेळ, विषखपरा को दूध और पानी में मिलाकर, जब तक दूध शेष रहे तपाए और ठंडा होने पर छान कर पिये। इसके पीने से सब प्रकार का ज्वर नष्ट हो जाता है।

कफ-मूत्र-कृच्छ्र पर—गो-मूत्र, शहद या केले के पत्ते का रस, इन तीनों में से किसी भी एक चीज में इलायची का चूर्ण मिलाकर पिलाना चाहिए।

कै होने पर—इलायची के छिलकों को जलाकर, उसकी राख को शहद में मिलाकर चटाना चाहिए।

बिच्छू के विष पर—इलायची के दानों को चबाकर कान में जोर से फूँक देना चाहिए।

जमालगोटे के विष पर—इलायची के दानों को दही में पीसकर देना चाहिए।

अजीर्ण—बदहजमी—पर—लगभग दस इलायचियों को साधारण कूटकर आधा सेर पानी मे अष्टमांश काढ़ा बनाए और उसमे शक्कर डालकर पिलाये।

कै—उल्टी—पर—ऊपर की तरह उतने ही प्रमाण में इलायची का काढ़ा बनाकर एक-एक घण्टे के अन्तर पर आधा-आधा तोला देना चाहिए। एकदम सब काढ़ा भूलकर भी न पीना चाहिए; इससे उल्टी बन्द होने के बदले जारी हो जाती है।

कफयुक्त खाँसी पर—आधा माशा इलायची के दानों का

महीन चूर्ण, आधा माशा सोंठ का महीन चूर्ण मिलाकर शहद के साथ बार-बार चाटना चाहिए।

सूखी खाँसी पर—छिलके सहित इलायची को आधा जलाकर उसका कपड़े में छना हुआ चूर्ण घी और शक्कर के साथ खाना चाहिए।

किसी भी कारण से पेट फूलने पर—आधा माशा इला-यची के कपड़े में छने हुए चूर्ण में दो रत्ती भुनी हुई हींग डालकर नीबू के रस में देना चाहिए।

पेशाब करते समय जलन होने और पेशाब रुक-रुक कर आने पर—अच्छी बड़ी दस इलायचियाँ लेकर महीन कूटे और उसमें पावभर पानी और पावभर दूध डाले। फिर, उसका आधा काढ़ा बनाकर उसमे शक्कर डालकर चार बार पिलाना चाहिए।

पेशाब बिल्कुल न आने पर—पाँच इलायची और ग्यारह तरबूज के बीजों को एकत्र कूटकर ऊपर की तरह उसमें पावभर पानी और पावभर दूध डालकर आधा शेष रहने तक पकाए। बाद मे इसे पिलाने से पेशाब अच्छी तरह होता है और पेशाब के समय होने वाली जलन और पेशाब में धातु का जाना आदि दोष दूर होते हैं।

मस्तक-शूल पर—इक्कीस इलायचियों का चूर्ण करके कपड़े में छाने और उसमें दो चुटकी कपड़े में छना हुआ छोटी पीपल का चूर्ण मिलाए; फिर वह चूर्ण भीग जाय, इतनी शहद उसमे डालकर देना चाहिए।

थूहर

थूहर की कई जातियाँ होती हैं। जैसे—तिधारा, चौधारा, नागफनी, डंडा और अँगुलिया थूहर आदि। चौधारे थूहर को संस्कृत में स्नुहीया सेंहुड, हिन्दी मे थूहर, या सेंहुड़, गुजराती में थोर या थुवेर, बंगला में सीजवृक्ष, मराठी में साँबर नीवडुंगा या वइनीवडुंगा, कर्नाटकी में कळी या मुंडुकल, मलयलम में तीरुकळी, तैलिङ्गा मे जेमडं, फ़ारसी में लादना, अरबी मे जकुम्, लैटिन में युफोरुया ट्रायगोवा और अंग्रजी में मिल्कस् हेज् कहते हैं। यह गोल होता है। इस पर छोटे-छोटे काँटे होते हैं। इसमें से सफेद दूध निकलता है। तिधारे थूहर में तीन शाखाएँ निकलती हैं और प्रत्येक शाखा पर काँटे होते हैं। इसे संस्कृत में त्रिधारा, हिन्दी में तिधारा थूहर, गुजराती मे त्रणधारियो-थुवेर, मराठी में तिधारी, या नीवडुंगा और कर्नाटकी में मुरेनकळी कहते हैं। इसमें से भी सफेद दूध निकलता है। बम्बई की ओर के लोग दीपावली पर इसके टुकड़े करके उसमें वत्तियाँ जलाते हैं।

नागफनी थूहर के पत्ते हथेली के बराबर और मोटे होते हैं। ये एक-पर-एक उगते चले जाते हैं। इसके काँटे दो अंगुल लम्बे और बहुत ही तीक्ष्ण होते हैं। इनके चुभ जाने से घाव हो जाता है। इसमे लाल फल लगते हैं। बहुत से लोग उन्हे मीठे लगने के कारण खाते भी हैं। इसके रस की लाल स्याही बहुत अच्छी होती है। इसे संस्कृत में कंथारी या कुंभारी, हिन्दी में नागफनी थूहर, गुजराती में दक्षिणी थुरीओ या कंटालो थोर, मराठी में फणीनीवडुंग, कर्नाटकी में फड़ीगळो, तैलिङ्गी में नागजमडु, तामील और

मलयलम में ओनांगताली, लैटिन में ऑप्टिनियाडिलेनाइ और अंग्रेजी में प्रीफ्लिपियर कहते हैं। यह सब जगह होती है। डंडा थूहर के पत्ते लम्बे होते हैं।

नागफनी थूहर—दीपन, रुचिकर, तीखी, उष्ण और कड़वी होती है ; तथा रक्तदोष, कफ़, वायु, ग्रन्थिरोग, स्नायुरोग और सूजन का नाश करती है। नागफनी थूहर के फल खाने से श्वास और खाँसी दूर होती है।

तिधारा थूहर—नागफनी थूहर की तरह लाभकारी होती है।

चौधारा थूहर—तीखी, कड़वी, उष्ण, अग्निदीपक, सारक, गुरु और क़ै लानेवाली होती है।

इसके पत्ते—रुचिकर, तीखे और अग्निदीपक होते हैं ; तथा कुष्ठ, अष्ठिला, आध्मान, वातशूल, और सब प्रकार के उदर-रोग का नाश करते हैं।

इसका दूध—उष्णवीर्य, स्निग्ध, तीखा, सारक और लघु होता है ; तथा आध्मानवायु, उदररोग, विषदोष और गुल्म का नाश करता है।

उपयोग—

आग से जले घाव पर—चौधारे थूहर का दूध लगाना चाहिए।

निद्रा न आने पर—चौधारे थूहर की जड़ को गुड़ के साथ खाना चाहिए।

भ्रमर के विष पर—चौधारे थूहर और पीपल को पीस-कर लेप करना चाहिए।

नवजात शिशु का गला कफ़ से रुँध जाने पर—चौधारे

थूहर को केले के हरे पत्तों में लपेट कर आग पर सेंके और उसके तीन बूँद रस में छः बूँद शहद मिलाए। पश्चात् इस औषधि का थोड़ा-सा भाग लेकर शिशु के तालू और जीभ पर लगाना चाहिए।

घाव पर—चौधारे थूहर के दूध में सेंधा नमक मिलाकर घाव में भरना चाहिए।

सूजन पर—चौधारे थूहर को आग पर सेककर उसका गूदा सूजन पर लगाना चाहिए।

नल विकार पर—चौधारे थूहर के पत्तों पर एरण्ड का तेल लगाकर सेंके और उसमे स्याह जीरा, लहसुन, हीग, काली मिर्च और पीपल मिलाकर बारीक पीसे। पश्चात् उसकी सुपारी के समान गोली बनाकर गरम पानी के साथ खाना चाहिए।

कास, श्वास, क्षय और हृद्रोग पर—चौधारे थूहर के छः रत्ती दूध में गुड़ मिलाकर खाना चाहिए।

बच्चों के श्वास पर—चौधारे थूहर के पत्तों को सेंककर उनका रस निकाले और उसमें बोल या गंधरस, हर्र और रेवंद-चीनी मिलाकर हलुआ बनाए। पश्चात् थोड़ा ठण्डा होने पर पेट पर उसका लेप करे; परन्तु नाभि पर न लगने पाए।

संधिवात पर—तिधारे थूहर के दूध में निंबोली का तेल मिलाकर लेप करना चाहिए।

सूजन, गाँठ आदि पर—तिधारे थूहर के दूध का लेप करना चाहिए।

बालक के कफ़-विकार पर—तिधारे थूहर के टुकड़े करके आग पर सेंके और उसके रस में फूले हुए सुहागे का चूर्ण और शहद मिलाकर देना चाहिए। दस महीने के बालकों के लिए

इसकी मात्रा एक चने भर है। पुरुष भी इस औषधि का सेवन कर सकते हैं।

दाह पर—तिधारे थूहर के दूध का लेप करना चाहिए।

फोड़े पर—तिधारे थूहर की जड़ का रस लगाए। पश्चात् उस पर तिधारे थूहर के वृक्ष की मिट्टी लगाने से सात दिन में लाभ होता है।

बच्चों के फोड़ों पर—पहले चन्दन लगाए, पश्चात् नागफनी थूहर की जड़ को घिस कर लेप करे।

बच्चों की खाँसी पर—नागफनी थूहर के फलों को आग पर गरम करके उसकी छाल को निकाल कर मसले और कपड़े-द्वारा उसका रस निचोड़ कर शक्कर के साथ पिलाए।

मूल-व्याधि पर—नागफनी थूहर के सूखे पत्तों की धूनी देना चाहिए।

निद्रा के लिए—नागफनी थूहर की जड़ को गुड़ के साथ सेवन करना चाहिए।

वात-द्वारा उत्पन्न हुए नहारू पर—नागफनी थूहर की जड़ को गोमूत्र में पीस कर लेप करना चाहिए।

विषाबिल

यह वृक्ष कोंकण और कर्नाटक की ओर बहुत होता है। इसके फल नारंगी के समान होते हैं। इसे संस्कृत में रक्तपूरका या वृक्षाम्ल, हिन्दी में विषाबिल या महादा, गुजराती में कोकम, बङ्गला में महादा, मराठी में अमसुल, कर्नाटकी में तितिड़ीक, सोले,

मरगिन या हुलीमरा, लैटिन में गारसिनिया—परप्युरीआ और अंग्रेजी में कोकम या बटर ट्री कहते हैं। इसके बीजों का तेल निकाला जाता है। यह खाने और औषधि में डालने के काम में आता है। बड़ा स्वादिष्ट होता है। दक्षिण, गुजरात और कर्नाटक वगैरह देशों में इसको दाल-शाक में खटाई की जगह छोड़ा जाता है। मोमबत्ती बनाते समय मोम में यह तेल डाल देने से वह नरम हो जाता है।

कच्चे फल—फीके, रुचिकर, खट्टे, उष्ण, गुरु, अग्निदीपक, पित्तकर, कफकर और तीखे होते हैं; तथा वातोदर, व्रण, वायु, और अतिसार का नाश करता है।

पक्के फल—मधुर, रुचिकर, ग्राही, तीखे, लघु, उष्ण, खट्टे, फीके, रूखे और अग्निदीपक होते हैं; तथा कफ, वायु, तृषा, संग्रहणी, आमवात, रक्तदोष, पित्त, अर्श, शूल, गुल्म, व्रण, कृमि, हृद्रोग और वातोदर का नाश करते हैं। इसके वृक्ष के गुण भी इसी की तरह हैं।

उपयोग—

हड्डियों के दुखने पर—विषाबिल के पत्तों को पीसकर गरम करे और उसकी पट्टी बाँधे।

शीतपित्त पर—विषाबिल के फल को पाव भर पानी में जीरा और खाँड डाल कर पीना चाहिए।

अम्लपित्त और पित्तरोग पर—विषाबिल, इलायची और शक्कर की चटनी बनाकर खानी चाहिए।

ठण्ढ से होठ फट जाने पर—विषाबिल का तेल लगाना चाहिये।

हथेली और पैर के तलुओं में जलन होने पर—विषाबिल का तेल लगाना चाहिए।

अधिक घी खाने से अजीर्ण हो जाने पर—विषाबिल का काढ़ा पीना चाहिए।

रुचि के लिए—विषाबिल की छाल देनी चाहिए। यह रोगी के मुख में रुचि उत्पन्न करती है और अन्य किसी विकार को नहीं बढ़ने देती।

शरीर पर पित्ती उठने पर—दो तोला विषाबिल को पाव भर पानी में रात को भिगो दे। सबेरे वह पानी पीना चाहिए। ऐसा दो तीन दिन तक करना चाहिए। अथवा विषाबिल के पानी को शरीर पर मलकर गरम पानी से स्नान करना चाहिए। ऐसा रोज एक बार दो-तीन दिन तक करना चाहिए।

आँव और अतिसार पर—विषाबिल के तेल को पतला करके अच्छी तरह आधा तोला शक्कर के साथ देना चाहिये।

पैरों की जलन और हाथ फटने पर—विषाबिल का तेल मलना चाहिए।

मूलव्याधि और वायुगुल्म पर—परहेज के लिए इमली के स्थान पर विषाबिल देना चाहिए।

अशोक

अशोक का वृक्ष आम के बराबर होता है। इसके पत्ते बड़े सुन्दर और आम के पत्तों की तरह लम्बे होते हैं। इसे संस्कृत और हिन्दी में अशोक, गुजराती मे आसोपालव, बङ्गला और

मराठी में अशोक, कर्नाटकी में अशोंके, तैलिङ्गी में अशोकेमानुं, मलयलम में अशोकं और लैटिन में जोनेसिया असोका कहते हैं। इसकी छाया घनी होती है। सुन्दर होने के कारण मंगलोत्सवों पर इसकी बन्दनवारें भी बनाई जाती हैं। इसे देव-मन्दिरों और बगीचों में लगाया जाता है। इसके फूल लाल होते हैं।

अशोक का वृक्ष—मधुर, शीतल, अस्थि को जोड़नेवाला, प्रिय, सुगन्धि-युक्त, कृमिनाशक, फीका, उष्ण, कान्तिवर्द्धक, स्त्रियों के शोक का नाश करनेवाला, ग्राही और पित्तकर होता; तथा दाह, गुल्म, उदर, शूल, आध्मान, विष, अर्श, व्रण, तृषा, अरुचि और रक्तदोष का नाश करता है।

उपयोग—

रक्तप्रदर पर—अशोक की छाल को दूध और पानी में मिलाकर, दूध शेष रहे, तब तक तपाये। पश्चात् उसे ठण्डा करके पिलाये।

सर्व प्रदर पर—अशोक की छाल को पीस कर उसमें रसांजन * मिलाये और चावल के पानी में शहद डाल कर दे।

रक्त प्रदर पर—अशोक की अन्तर्छाल को चन्दन की तरह घिसे। यह घिसी हुई छाल एक तोला, चावल की धोवन पाँच तोला, मिश्री एक तोला और शहद चवन्नी भर मिलाकर दिन में तीन बार देना चाहिए।

---

* दारु हल्दी के आठवें अंश काढे में बकरी का मूत्र मिलाकर बनाया हुआ चूर्ण।

बादाम

बादाम के वृक्ष, एशिया-खंड के ईरान, मक्का, मदीना, मस्कत, शीराज आदि स्थानों में बहुत होते हैं। ये आजकल भारत-वर्ष के बगीचों और काश्मीर में भी बोये जाने लगे हैं। इसे संस्कृत में वातांबुफल या वाताम्, हिन्दी और बंगला में बादाम, गुजराती और मराठी में बदाम, तैलिङ्गी में बेदम, तामील में नटवड्डम, फारसी में बादाम, अरबी में लोज्म, लैटिन में एमिग्डेलस् कम्युनी एमेर और अंग्रेजी में अम्लेंड कहते हैं। यह वृक्ष बहुत बड़ा होता है। इसकी दो जातियाँ होती हैं—कड़वी और मीठी। बादाम पौष्टिक होती है। यह एक मेवा है। इसका तेल भी निकाला जाता है। कड़वी बादाम हानिकारक होती है। उसे उपयोग में नहीं लाना चाहिए।

बादाम का वृक्ष—सारक, उष्ण, गुरु, अम्ल, कफकर, स्वादिष्ट, स्निग्ध, फीका, शुक्रकर, वात-नाशक और उष्णवीर्य होता है।

कच्ची बादाम—सारक, गुरु और पित्तकर होती है; तथा कफ, पित्तविकार और वायु का नाश करती है।

पक्की बादाम—उष्ण, स्निग्ध, वात-नाशक, कफकर, शुक्रकर, और जड़ होती है; तथा रक्तपित्त का नाश करती है।

बादाम का गूदा—मधुर, वृष्य, स्निग्ध, उष्ण, पौष्टिक, कफकर और वात-पित्त-नाशक होता है।

तेल निकालने की रीति—छिली हुई बादाम को थोड़ी देर पानी में रख कर उनके छिलके निकाल दे और उन्हे बारीक पीसे। पीसते समय थोड़ी मिश्री डाल देना भी आवश्यक है। पीसने के

पश्चात् उसे मल-मलकर दबाने से तेल निकल आता है। यह तेल मस्तिष्क को ठण्डा और हलका रखता है। इसे कान में डालने से सब प्रकार के कर्ण रोगों का नाश हो जाता है।

बादाम की खीर—बादाम को फोड़ कर गरम पानी मे डाले और छिलके निकाल कर बारीक पीसे। पश्चात् उसे दूध में पकाये। जब वह कुछ गाढ़ी होने लगे, तो शक्कर और घी डालकर उतार ले। इस खीर को खाने से शक्ति और वीर्य की वृद्धि होती है।

उपयोग—

भिलावाँ से उठे हुए छालों पर—बादाम को घिस कर लगाना चाहिए।

कानखजूरे के काँटे चुभ जाने पर—बादाम का तेल लगाना चाहिए।

दाँत मजबूत करने के लिए—बादाम के छिलकों की राख में नमक मिलाकर दाँत घिसना चाहिए।

मस्तक-शूल और शिरोरोग पर—बादाम और केसर को गाय के घी में मिलाकर नस्य करना चाहिए। या प्रतिदिन प्रातः-काल तीन दिन तक बादाम की खीर खानी चाहिए। बादाम और कपूर को दूध में घिसकर मस्तक पर लेप करने से भी शीघ्र लाभ होता है।

धातुवृद्धि के लिए—डेढ़ तोला गाय के घी में एक तोला गाय का मक्खन या ताज़ा खोवा मिलाकर प्रतिदिन सुबह-शाम उसमें, बादाम, शक्कर, कंकोल, शहद और इलायची मिलाकर ७ दिन तक देना चाहिए।

मस्तिष्क में शीतलता लाने के लिए—बादाम को छील

कर आग पर सेके और शक्कर के साथ खाये। एक घण्टे बाद मक्खन और शक्कर खाये। पश्चात् दिन मे तीन बार बादाम का तेल मस्तक पर मले।

शक्ति के लिए बादाम पाक—तीन पाव बादाम, पावभर खोवा, डेढ़ सेर शक्कर, सेरभर घी, आधा तोला जायफल, आधा तोला जावित्री, आधा तोला केसर, आधा तोला वंशलोचन, आधा तोला कमलाच, एक तोला इलायची, एक तोला दालचीनी, एक सेर तेजपात, एक तोला नागकेसर, साढ़े चार तोला बिहीदाना और पौन तोला लौंग, लेकर सबको खूब महीन चूर्ण करके बादाम की लुगदी और खोवे को घी में भूने। फिर शक्कर की चाशनी बनाकर उसमें सब औषधियाँ डालकर पाक बना ले। इस पाक को खाने से वीर्य-वृद्धि होती है, शरीर पुष्ट होता है और वायु रोग दूर होता है। ज्वर से उठने के बाद अशक्ति दूर करने के लिए तो यह बहुत ही मुफीद है।

केवड़ा

केवड़े का वृक्ष बहुत से देशों में पाया जाता है। संस्कृत में इसे केतकी, हिन्दी में केवड़ा या गगनधूल, गुजराती में केवड़ो, मराठी मे केवड़ा, कर्नाटकी में बिलेकेदगे मुण्डोगे, तैलिङ्गी में मुगलीपुवु, गाजंगी या केतकी, तामील में केदगे, मलयलम में केता या केतकी, फारसी मे करज, अरबी में कादी, और लैटिन में पैंडेनस ओडोरा टिसीमस कहते हैं। इसके पत्तों मे काँटे होते हैं। इसके वृक्ष घने जङ्गलों मे उगते हैं। इसकी दो जातियाँ होती हैं—सफेद और पीली। सफेद जाति को केवड़ा और पीली को केतकी कहते हैं। केतकी बहुत सुगन्धित होती है और उसके पत्ते कोमल

होते हैं। यह माघ और फागुन के महीनों में फूलती है। केवड़ा श्रावण मास में फूलता है। केवड़े के निकट साँप बहुत रहते हैं। कर्नाटक देश में केवड़े के पत्तों के छाते और टापियाँ बनाई जाती हैं। केवड़े का तेल बहुत सुगन्धित होता है। केवड़े के फूल में रखने से कत्था बहुत सुगन्धित हो जाता है। केवड़े के अन्दर एक प्रकार की गुद्दी होती है; उसका शाक बनाया जाता है।

केवड़े का वृक्ष—तीखा, मीठा, कड़वा और लघु होता है; तथा विष और कफ़ का नाश करता है।

केवड़े के फूल—लघु, तीखे, कड़वे, कान्तिवर्द्धक और उष्ण होते हैं; तथा कफ़, वायु और केश की दुर्गंध का नाश करते हैं।

फूल की गुद्दी—शरीर के सफेद दागों की नाशक और थोड़ी गरम होती है।

केवड़े के फल—मीठे और वायु, प्रमेह तथा कफ़ के नाशक होते हैं।

केतकी—कड़वी, नेत्रों के लिए हितावह, उष्ण, लघु, तीखी और मधुर होती है; तथा विषदोष और कफ़ का नाश करती है।

इसके फूल—सुखकर, कामोद्दीपक, किंचित् उष्ण, कड़वे, सुगन्धित और नेत्रों के लिए हितावह होते हैं।

इसके अँकुर—बहुत ठण्डे, देह को दृढ़ करनेवाले, तीखे, शक्तिवर्द्धक, और रसायन होते हैं; तथा पित्त और कफ़ का नाश करते हैं।

उपयोग—

रक्तप्रदर पर—केवड़े की जड़ को पानी मे घिसकर शक्कर के साथ पिलाना चाहिए।

अपस्मार पर—केवड़े के डंठल और केतकी के फूलों को समभाग में लेकर पीसे और उसे तम्बाकू की तरह सूँघे।

गरमी से मस्तक दुखने पर—केवड़े का पानी और सफेद चन्दन घिसकर एक बर्त्तन में रक्खे। पश्चात् उस बर्त्तन के चारों ओर कपड़ा लपेट कर हिलाये और सूँघे।

प्रमेह पर—केतकी को उबाल कर उसके दो तोला रस मे दो पैसा भर शक्कर डाल कर पिलाना चाहिए।

सब प्रकार की गर्मी पर—केवड़े के पत्तों के रस में जीरा पीसकर शक्कर मिलाए और सात दिन तक पिये। (पथ्य—मट्ठा और भात ; परन्तु भात या मट्ठे मे नमक नहीं डालना चाहिए)।

कंठ-रोग पर—केवड़े के फूल की गुदी की बीड़ी बनाकर पीना चाहिए। इससे कण्ठ-सर्पादि रोग दूर होते हैं।

जंभीरी

जंभीरी नीबू की ही एक जाति होती है। यह हिन्दुस्थान में सब जगह होता है। इसे संस्कृत में जंबीर, हिन्दी में जंभीरी, गुजराती मे इंडलींबु या गधड़लींबु, बंगला में गोंड़ालींबु, मराठी मे ईडलींबु, कर्नाटकी में कांचिले, दोड्ड लिकायी या काड़लिंबे, मलयमल में कट्टु कुरन्तु, तैलिङ्गी मे जंभीर, या अडविनीमा, तामील में कट्टेलु मिच्चे, और लैटिन में आटलांटिया मोनोफाइला कहते है। ये नारंगी से बड़े होते हैं। पकने पर इनका रंग पीला हो जाता है और इनमें से सुगन्ध आती है। इनकी दो जातियाँ

होती हैं—छोटी और बड़ी। इनके पत्ते और फूल एक से होते हैं। छोटी जाति के फल की छाल पतली और बड़ी की मोटी होती है। इसका अचार बहुत अच्छा होता है। इसके रस का "लेमोनेड" बनाया जाता है।

जंभीरी का वृक्ष—खट्टा, फीका, कड़वा, सारक और उष्ण होता है तथा कफ, और पित्त का नाश करता है।

उपयोग—

तूतिया के विष पर—जंभीरी के रस में शक्कर डालकर देना चाहिए।

अम्लपित्त पर—सायंकाल के समय छोटे जंभीरी का रस पिलाना चाहिए।

आँक

आँक का वृक्ष सर्वत्र प्रसिद्ध है। संस्कृत में इसे अर्क, हिन्दी में आँक, गुजराती में आकड़ो, बङ्गला में आकंद, मराठी मे रुई, कर्नाटकी में यक्के, तामील में अर्क, मलयलम में येरिकु, तैलिङ्गी में निलाजिलीडे, फारसी में खुर्क, अरबी में उषर, और अंग्रेजी में जाइन्टॉटिक स्वॉलोवर्ट कहते हैं। इसके पत्ते बड़ के जैसे और मृदु होते हैं। यह हवन के काम में भी आता है। इसमें फूल और फल भी आते हैं। फल के पक जाने पर अंदर से रेशम-सरीखी नर्म रुई निकलती है। उसे उपयोग में लाया जाता है। शरीर के साधारण दर्द पर आँक का दूध उपयोगी होता है। बहुत वर्षों पहले लोग आँक के पत्तों को भी लिखने के काम में लाते थे; परन्तु अब कागजों का प्रचार होने के कारण इन्हे कोई नहीं पूछता।

आँक का वृक्ष—सारक और गरम होता है; तथा वायु, कुष्ठ, खाज, विष, प्लीहा, गुल्म, अर्श, यकृत्, श्लेष्मोदर और कृमि का नाश करता है। *

उपयोग—

वायु से अंग दुखने पर—आँक के पत्तों को गरम करके शरीर सेकना चाहिये।

ऊर्ध्वरस और श्वास पर—आँक के फूल के काँटे और काली मिर्च को पीसकर उसकी गोली बनाकर खिलाना चाहिए या आँक के डंठल और फूलों को पीसकर, गुड़ में पकाकर खिलाये।

---

* आँक की दो जातियाँ होती हैं—सफेद और लाल। बहुत से लोग मदार को ही सफ़ेद आँक बतलाते हैं; परन्तु ग्रन्थों में उनका अलग अलग वर्णन मिलता है।

आँक यकृत् और फेफड़े को हानि पहुँचाता है। घी इसे गुणकारी बना देता है। इसकी मात्रा तीन माशा तक है। इसके दूध में विष होता है। चक्रदत्त में लिखा है कि आँक की जड़ की छाल देने से चर्मरोग, पेट के कृमि, खाँसी जलोदर आदि रोग नष्ट हो जाते हैं; तथा शरीर का पसीना बह निकलता है। आँक का दूध देने से दस्त लग जाते हैं और शरीर पर लगाने से शरीर का रंग लाल हो जाता है। आँक के फूल पाचनशक्ति बढ़ानेवाले और पेट-दर्द, खाँसी, जुकाम, श्वास तथा अरुचि का नाश करते हैं। आँक के दूध में भीगी हुई इसकी जड़ की छाल को सुखाकर उसकी धूनी लेने से श्वास रोग दूर हो जाता है। श्लीपद और अंडवृद्धि पर जड़ की छाल गाय के मट्ठे में घिसकर लगाने से लाभ होता है। मीर मुहम्मद हुसेन का कथन है कि—आँक का दूध शरीर पर छाले बढ़ानेवाला, कफ़-नाशक और सब प्रकार के दूध के से रसों से गरम होता है। यह दाद और अर्श का नाशक तथा दाँतों के पोले पड़ जाने और दर्द होने पर शहद में मिलाकर उसमें रुई का फोया गीला करके दाँतों के नीचे रखने से शीघ्र लाभ पहुँचाता है। आँक के दूध में भीगे हुए अन्न के दानों को सुखाकर खाने से कुष्ठ रोग नष्ट हो जाता है। इस औषधि से दस्त लग जाते हैं।

पाण्डु रोग पर—आँक की जड़ को चावल के पानी में घिसकर उसकी बूँदें नाक में टपकाना चाहिए।

आँक के विष पर—इमली के पत्ते पीसकर लेप करना चाहिए।

मस्तक-वायु पर—आँक के पके हुए पत्ते माथे पर बाँधना चाहिए।

आधा शीशी पर—आँक की जड़ का धुआँ सूँघना चाहिए।

अपस्मार पर—आँक के दूध में सड़कों पर पड़े हुए सूखे गोबर की राख भिगोकर सुखा ले। सूखने पर उसे सूँघे। सूँघने से छींकें आती हैं और मस्तक भी उतर जाता है। उसे सूँघने के पश्चात् घी भी सूँघना चाहिए।

कुत्ते के विष पर—आँक के दूध में गुड़ और तेल मिलाकर लेप करना चाहिए।

आँक का दूध सूजन पर भी लगाया जाता है। डाक्टर एन्सिल का मत है कि 'आँक-के पत्ते और जड में से जो दूध निकलता है, उसे सुखाकर देने से बहुत शीघ्र जुलाब लग जाता है।' श्वेत कुष्ठ के लिए भी यह बहुत गुणकारी है। मि० प्लेफेर आँक की छाल को शरीर के लिए बहुत लाभ-दायक बतलाते हैं। डा० डंकन के मतानुसार आँक की छाल का रस कै लानेवाला होता है। चरक में इसे भेदनीय, पसीना लानेवाला, कै लानेवाला, कफ-नाशक और योनि-दोष-नाशक बतलाया गया है; तथा इसके बीजों को मूत्र लानेवाला माना गया है। सुश्रुत ने भी इसे क्रमि-नाशक, व्रणशोधक और वात-विकार-नाशक माना है।

गर्मी के ज्वर पर लोग इसके पत्तों को सेककर उनका रस शरीर पर लगाते हैं। इससे पसीना आकर ज्वर दूर हो जाता है।

आँक अमृत की तरह गुणकारी होता है। सिर दर्द पर इसके पत्तों पर घी लगाकर सेंके और सिर पर बाँधे। इससे सिर दुखना बन्द हो जाता है।

सूजन पर—लोहकीट और आँक के पत्तों को भैंस के मूत्र में पीसकर लेप करना चाहिए।

सब प्रकार के विष पर—आँक की जड़ ठण्ढे पानी में घिसकर पिलाना चाहिए। या आँक की पाँच-छः नरम पत्तियों के रस में घी मिलाकर पीना चाहिए।

घुटनों के दर्द पर—आँक का दूध तीन दिन तक लगाना चाहिए।

अर्श पर—आँक और इमली की लकड़ी की अग्नि करके उसपर अजवाइन जलाये और अर्श पर उसको धूनी दे।

शीत ज्वर पर—आँक की कोंपल पान के साथ खाना चाहिए।

कर्ण-शूल पर—आँक के पके हुए पत्तों पर घी लगाकर आग पर सेके। पश्चात् उनका रस निकालकर कान में डाले।

श्लीपद (पैर हाथ का मोटा हो जाना) रोग पर—आँक की जड़ को काँजी मे पीसकर लेप करना चाहिए।

बिच्छू के विष पर—आँक की जड़ को पानी में घिसकर लगाना चाहिए।

सर्प के विष पर—आँक के पत्तों को आँक के दूध में पीसकर गोली बनाये और एक-एक घड़ी के पश्चात् खिलाये, या आँक की जड़ को घिसकर पिलाये।

मूत्राघात पर—आँक के दूध में बबूल की छाल का चूर्ण मिलाकर पेडू पर और नाभि के आस-पास लेप करे।

श्वास-कास पर—आँक के पत्तों का एक या दो तोला रस पिलाना चाहिए। इससे क़ै होकर कफ़ और पित्त निकल जाते

हैं। रस पिलाने के पश्चात् घी या घी-भात अवश्य खिलाना चाहिए।

नहारू पर—आँक का दूध लगाना चाहिए।

सूजन, वायु और त्रिदोष पर—आँक के पत्ते और लोह-कीट को भैंस के मूत्र में पीसकर सूजन पर लेप करना चाहिए।

रक्तगुल्म पर—आँक के फूलों को तेल मे तलकर खाना चाहिए।

वात-रोग पर—आँक की गीली जड़, धमासा, चिरायता, देवदारु, रहसनी, निर्गुंडि या मेवड़ी, बच, अगेथू, पीपल, पीपलामूल, चित्रक, सोंठ, अतीस, और भंग का काढ़ा बनाकर पिलाना चाहिए। इससे तीव्र त्रिदोष, वायु, दाँतो का बँध जाना, शीतांग, श्वास, कास, सूतिका-रोग और वात-रोग का तत्काल नाश हो जाता है।

दूसरी विधि—उपर्युक्त काढ़े में से अतीस, धमासा, अगेथू और सोंठ को निकाल कर बाकी बचे हुए में विषखपरा डालकर उसका काढ़ा पिलाना चाहिए। इससे सुवा-रोग, अनेक प्रकार की वायु, शैत्य और अपस्मार का नाश होता है।

तीसरी विधि—आँक की जड़, जीरा, सोंठ, काली मिर्च, पीपल, भारंगमूल, बैंगन, काकड़ाश्रृंगी और पुष्करमूल को सम भाग में लेकर गोमूत्र में काढ़ा करके पिलाना चाहिए। इससे शीतांग, सन्निपात, प्रमेह, श्वास, कफवृद्धि और ऊर्ध्वरस का नाश होता है।

सूजन पर—आँक की जड़, विषखपरा और नीम की छाल को घिसकर लेप करना चाहिए, या इसका काढ़ा पिलाना चाहिए और काढ़े के पानी से बारम्बार सूजन को धोना चाहिए।

उरुस्तम्भ पर—आँक की जड़ को घिसकर गरम करके लेप करना चाहिए।

शोफोदर पर—तीन दिन तक आँक के एक-एक पत्ते के रस को घी के साथ देना चाहिए। इसका पथ्य दूध-भात है।

प्लीहोदर पर—आँक के पत्ते और सेंधे नमक को मटके में डाले और उसका मुँह बन्द करके आग पर रक्खे पश्चात् इस चार को दही के पानी के साथ पिलाये।

श्वास पर—आँक की जड़ और गाँठ को छोटी पीपल के साथ खरल करे और शहद में मिलाकर बेर की गुठली के बराबर गोली बना कर खाये।

गंडमाला पर—आँक के दूध में हीराकसीस और कुलिञ्जन पीसकर लेप करना चाहिए।

मुख के काले दागों पर—आँक के दूध में हलदी को पीसकर लेप करना चाहिए।

बद या किसी भी गाँठ पर—आँक के दूध में कत्था और रेवंदचीनी को घोटकर चन्दन की तरह गाँठ पर लेप करना चाहिए। यह परीक्षित है।

प्लीहोदर और पेट के सब विकारों पर—एक तोला आँक की जड़ की छाल को कूटकर उसमें चालीस तोला (आधा सेर) पानी डालकर अष्टमांश काढ़ा बनाये। इस काढ़े से पेट के सब विकार दूर होते हैं।

खाँसी पर—आँक के पत्तों के रस में नमक डालकर देना चाहिए। छोटे बच्चों को भी एक चमचा आँक के पत्तों के रस में राई के बराबर नमक डालकर पिलाने से कफ, श्वास और पेट

फूलना आदि विकार दूर होते हैं। आँक की जड़ का काढ़ा भी खाँसी के लिए उपयोगी है।

कफ़ पर—आँक की जड़ को आँक के दूध में भिगोकर सुखाये। सूख जाने पर इसकी धूनी लेनी चाहिए। पुराने श्वास के लिए भी यह क्रिया बहुत उपयोगी है।

छोटे बच्चों के यकृत और प्लीहोदर पर—एक रुपये के बराबर आँक का पत्ता लेकर उसमें दो तोला कुलथी डालकर आधा सेर पानी में अष्टमांश काढ़ा बनाए। इस काढ़े को छानकर इसमें रत्तीभर नमक डालकर देना चाहिए। एक दो दस्त होकर पेट साफ़ होता है।

श्लीपद रोग पर—आँक की जड़ को मट्ठे में घिस कर गाढ़ा-गाढ़ा लेप करना चाहिए। और आँक की जड़ की एक तोला छाल में त्रिफला डालकर, आधा सेर पानी में अष्टमांश काढ़ा बनाये। इस काढ़े मे एक माशा शहद और तीन माशा मिश्री डालकर रोज एक बार सुबह देना चाहिए। सब प्रकार की सूजन में यह लेप और काढ़ा लाभदायक है।

कुष्ठ और गलित कुष्ठ पर—दो रत्ती आँक की जड़ का चूर्ण शहद के साथ देना चाहिए। एक तोला आँक की जड़ का आधा सेर पानी में अष्टमांश काढ़ा बनाकर एक बार देना चाहिए। इसमे परहेज़ करने की परम आवश्यकता है। जब तक लाभ न हो, काढ़ा पिलाना जारी रखना चाहिए। आँक के दूध को पकाकर तीन रत्ती शहद के साथ दिन में तीन बार देने से भी कुष्ठ रोग दूर होता देखा गया है। पर इसका प्रयोग बहुत दिनों तक जारी रखना पड़ता है।

बच्चों का पेट फूलने पर—तेल से पेट सेंककर आँक के पत्ते गरम कर बाँधने चाहिए।

सब प्रकार की गाँठ पर—आँक के दूध में रेवन्दचीनी का शीरा घिसकर गाँठ पर गाढ़ा-गाढ़ा लेप करना चाहिए। इससे गाँठ नरम होकर बैठ जाती है।

करंज

करंज का वृक्ष वनों में उगता है। इसकी छाया ठण्डी और घनी होती है। इसे संस्कृत में करंज, हिन्दी में कंजा या कटकरंजा, गुजराती मे कणझी या करंज, मराठी में करंज, बङ्गला मे डहर-करंज, कर्नाटकी में हुलगली, होंगे या कानग्यानगिड़ा, तैलिङ्गी मे कंजकरनगु, तामील में पुंगामारं, मलयलम मे पोन्नां, लैटिन मे पोनगेमियालेब्रा और अंग्रेजी मे स्मथलिव्ड पोनगेमिया कहते हैं। इसके बीजों का तेल निकाला जाता है। वह जलाने के काम में आता है। *

करंज का वृक्ष—पक जाने पर तीखा, तेज्य, उष्ण, कड़वा और फीका होता है; तथा उदावर्त, वायु, योनि-दोष, वातगुल्म, अर्श, व्रण, खुजली, कफ, विष, विचर्चिका, पित्त, कृमि, त्वग्दोष, उदर-रोग, प्रमेह और प्लीहा का नाश करता है।

करंज की फलियाँ—उष्ण और लघु होती हैं; तथा मस्तष्क-रोग, वायु, कफ, कृमि, कुष्ठ, अर्श और प्रमेह का नाश करती हैं।

---

* करंज के पत्ते, बीज, छाल और तेल व्यवहार में लाये जाते हैं। इनकी मात्रा दो मासे तक है।

करंज का तेल—वात-नाशक, कृमि-नाशक और अति स्निग्ध होता है ; तथा कड़वा, उष्ण, फोड़े के घाव को भरनेवाला और नेत्ररोग, विचर्चिका, वायु, कुष्ठ, व्रण, खुजली, गुल्म, उदावर्त, योनि-दोष और अर्श का नाश करता है। इसके दीपक का प्रकाश बहुत ठण्ढा होता है। इसके लेप से अनेक रोगों का नाश हो जाता है।

उपयोग—

चूहे आदि के विष पर—करंज के बीज और छाल को घिस कर लेप करना चाहिए।

खाज और खुजली पर—करंज के तेल में कपूर या नीबू का रस मिलाकर लगाना चाहिए।

अंडवृद्धि पर—चावल के पानी में करंज की जड़ को घिस-कर लेप करना चाहिए।

पित्त पर—करंज की छाल खिलाना या उसका रस पिलाना चाहिए।

व्रण आदि के कृमि नष्ट करने के लिए—करंज, नीम और सम्हालू के पत्तों को पीसकर लेप करना चाहिए।

आधा-शीशी पर—करंज के बीजों को गरम पानी में घिसे और उसमें थोड़ा गुड़ डालकर नस्य करे।

उरुस्तंभ पर—करंज की जड़ या छाल को घिसकर गरम करके लेप करना चाहिए।

कै पर—करंज के बीजों को थोड़े सेक कर टुकड़े करके खाना चाहिए।

अण्डवृद्धि, सूजन, गाँठ और गण्डमाला पर—करंज के बीजों को घिसकर लेप करना चाहिए।

भगंदर पर—करंज के पत्ते बाँधना चाहिए।

कुष्ठ पर-करंज की छाल और उसके बीजों का तेल उपयोगी है।

आँवला

आँवले का वृक्ष भारतवर्ष में बहुत होता है। इसे संस्कृत में आमलकी, हिन्दी में आँवला या आमल, गुजराती में आमलाँ, बंगला में आमलकी, मराठी में आँवळे, कर्नाटकी में नल्लीमारा, तैलिंगी में उसदकाय या वेळी, तामील में नेल्लीमारं, मलयलम में नेल्ली या आमलकं, फ़ारसी में आम्लज, अरबी में अम्लषी, लैटिन में फिलेंथस एंब्लिका और अंग्रेजी में एंब्लिक मिरोबेलन कहते हैं। यह बहुत बड़े होते हैं। इसके पत्तों की आकृति छोंकर के पत्तों के जैसी होती है। यह कार्तिक मास में फलता है। आँवले साधारणतः तेंदू के बराबर होते हैं। आँवले का मुरब्बा और अचार भी बनाया जाता है। इसकी दो जातियाँ होती हैं। सफेद आँवला और जङ्गली आँवला। आँवले की लकड़ी मे से भी सफेद कत्था निकलता है। सूखे आँवले को पीस कर शरीर पर लगाया जाता है। त्रिफला के तीन फलों में एक आँवला भी है।

आँवले का वृक्ष—कुछ तीखा, सारक, मीठा, कड़वा खट्टा, फीका और शीतल होता है। यह जरा और व्याधि का नाशक, वृष्य, केश्य, हितकारी और अरुचिनाशक होता है; तथा रक्त

पित्त, प्रमेह, विष, ज्वर, आध्मान, बन्धकोष, सूजन, शोष, तृषा, रक्तविकार और त्रिदोष का नाश करता है।

सूखे आँवले—कड़वे, तीखे, खट्टे, मधुर, फीके, केश्य, भग्नसंधानकर, धातुवर्द्धक नेत्र के लिए लाभदायक और शरीर पर लगाने से कान्तिवर्द्धक होते हैं; तथा पित्त, कफ, प्रमेह, विष और त्रिदोष का नाश करते हैं।

उपयोग—

सर्वज्वर पर—सूखे आँवले, चित्रक की जड़, छोटी हर्र, पीपल और सेंधा नमक को सम भाग लेकर चूर्ण कर ले। इसे खाने से सब प्रकार का ज्वर दूर होता है।

दूसरी विधि—सूखे आँवले, चित्रक की जड़, छोटी हर्र और पीपल का काढ़ा बनाकर पिलाने से भी ज्वर दूर होता है।

पित्त दूर करने और पुष्टि के लिए—एक सेर आँवलों को बीजों तक सुई से छेद कर बहुत देर तक चूने के पानी में रक्खे और दो सेर अदहन आये हुए पानी में डालकर थोड़ा उबाले। पश्चात् उन्हें कपड़े से पोंछकर खाँड या मिश्री की चार तारी चाशनी में डाल दे। यह मुरब्बा चार-पाँच वर्ष तक अच्छी तरह रह सकता है। इसके सेवन से पित्त नष्ट होता और बल बढ़ता है।

अरुचि पर—आँवलों को थोड़ा उबालकर पीसे और उसमें जीरा, काली मिर्च, पीपल, सोंठ, धनियाँ, दालचीनी, सेंधा नमक, संचल, हर्र और नमक पीसकर मिलाए। उसकी गोलियाँ बनाकर खाए। ये गोलियाँ अत्यन्त रुचिकर और पाचक होती हैं।

खुजली पर—सूखे आँवले की राख को तेल में मिलाकर शरीर पर लगाना चाहिए।

स्वरभेद पर—गाय के दूध में सूखे आँवले का चूर्ण मिलाकर देना चाहिए।

अशुद्ध अभ्रक भक्षण करने से उत्पन्न हुए विकार पर—आँवले का रस पीने या आँवले को पानी में गलाकर तीन दिन तक खाने से सब प्रकार के विकार दूर होते हैं।

कै और श्वास पर—आँवले के रस में शहद और पीपल डालकर देना चाहिए।

वातरक्त पर—सूखे आँवले को एरण्ड के तेल में तलकर पीस ले और सुबह-शाम शक्कर और गरम पानी के साथ सेवन करे।

कै पर—सूखे हुए आँवले का चूर्ण चन्दन के चूर्ण में मिलाकर शहद के साथ देना चाहिए।

प्रमेह पर—आँवले के रस या सूखे आँवले के काढ़े में दो माशा पिसी हल्दी और शहद डालकर देना चाहिए।

वृद्ध न होने के लिए—सूखे आँवले को पानी में पीस कर शरीर पर लगाए और थोड़ी देर पश्चात् स्नान कर ले। नित्य-प्रति इस नियम का पालन करने से शरीर पर झुर्रियाँ नहीं पड़तीं और केश सफेद नहीं होते।

आँखों की अग्नि शान्त करने के लिए—सूखे आँवले और तिल को रात के समय पानी में डालकर प्रातःकाल पीसकर आँखों पर लगाए और एक घण्टे के पश्चात् स्नान कर ले। इससे आँखों की जलन शान्त होकर सर्वदा ठण्डक रहती है।

पित्त पर—सूखे आँवले पीसकर उससे दुगने घी में शक्कर मिलाकर खिलाना चाहिए।

मुख सूखने पर—आँवले और अंगूर को पीसकर घी में

मिलाए। पश्चात् उसकी गोली बनाकर मुँह में रखे। इससे जीभ, तालु और गले का सूखना बन्द हो जाता है।

ज्वर की अरुचि पर—आँवले, अंगूर और शक्कर को पीसकर कल्क बनाए और मुख में रखे।

मूत्रकृच्छ्र या गर्मी पर—आँवले के रस और गन्ने के रस को मिलाकर पिलाना चाहिए।

नाक से लहू बहने पर—सूखे आँवले को घी में तलकर लपसी में पीसे और मस्तक पर उसका लेप करे।

योनिदाह पर—आँवले के रस में शक्कर डालकर पिलाना चाहिये।

प्रमेह पर—पावभर आँवले के पत्तों के रस में पावभर मट्ठा मिलाकर पिलाना चाहिये।

कान्ति बढ़ाने के लिए—सूखे या सिके हुए आँवले और सफेद तिल को पीसकर रोज शरीर पर मलना चाहिये। इसे मलने के थोड़ी देर बाद गरम पानी से स्नान करना बहुत जरूरी है।

वीर्यवृद्धि के लिए—आँवले के रस को घी में मिलाकर देना चाहिए।

वृद्धावस्था दूर करने के लिए—तिल और सूखे आँवले के चूर्ण को समभाग एकत्र करके नित्य प्रातःकाल बीस दिन तक देना चाहिए।

देह तेजस्वी बनाने के लिए—शिशिर ऋतु में असगंध और आँवले का चूर्ण सम भाग लेकर घी और शहद के साथ देना चाहिए।

नाक से लहू गिरने पर—सूखे आँवले को घी में सेके और पानी में पीस कर मस्तक पर लेप करे।

मस्तकशूल पर—प्रातःकाल आँवले का चूर्ण घी और शक्कर के साथ देना चाहिए।

पित्तशूल पर—आँवले का चूर्ण शहद के साथ देना चाहिए।

मूर्च्छा पर—आँवले के रस में घी डालकर पिलाना चाहिए।

रक्तपित्त पर—आँवले का चूर्ण शक्कर और घी के साथ देना चाहिए अथवा आँवले या हर्र का मुरब्बा खिलाना चाहिए।

रक्तातिसार पर—आँवले का रस शहद, घी और दूध के साथ देना चाहिए।

अम्लपित्त पर—एक तोला सूखे आँवलों को रात के समय पानी में भिगो दे। प्रातःकाल उसमें तीन माशा सोंठ और एक माशा जीरा डालकर बारीक पीसे। पश्चात् उसको गोली बनाकर दो तोला मिश्री के साथ सात तोला दूध में पिए।

बालकों के अतिसार पर—सूखे आँवले, चित्रक, छोटी हर्रं, पीपल और संचल नमक का चूर्ण कर करके प्रातःकाल और रात को सोते समय गरम पानी में बच्चे की शक्ति के अनुसार देना चाहिए।

पित्तविकार पर—एक तोला सूखा आँवला रात को कलई के बर्तन में गलाने को रख दे। प्रातःकाल उसे पीसकर सात तोला गाय के दूध के साथ देना चाहिए।

पाण्डुरोग पर—सूखा आँवला, हल्दी, और गेरू को मिलाकर अंजन करना चाहिए।

पित्त बढ़ जाने और उसके कारण चक्कर आने और आँखों के आगे अँधेरा होने पर—आँवले के दो तोला रस मे उसी के बराबर मिश्री मिलाकर पीना चाहिए। एक-दो दिन पीने से लाभ होता है।

पेशाब के समय दाह होने, पेशाब थोड़ा आने या साफ़ न आने पर—आँवले के दो तोला रस में दो तोला मिश्री मिलाकर दिन मे दो बार, यानी सुबह-शाम देना चाहिए। दो-तीन दिन में लाभ मालूम होगा।

प्रदर और अम्लपित्त पर—आँवले का रस दो तोला, जीरे का चूर्ण एक मासा और मिश्री मिलाकर सुबह-शाम देना चाहिए। एक-दो सप्ताह में लाभ होगा। यदि ताजे आँवले न मिलें तो सूखे आँवले दो तोला रात को पानी में भिगोकर उसमें जीरा और शक्कर डालकर सवेरे पिलाना चाहिए। इसी प्रकार सवेरे भिगोये हुए शाम को पिलाना चाहिए। परन्तु सूखे आँवले, ताजे आँवलों की तरह गुणकारी नहीं होते।

धूप से या किसी अन्य कारण से सिर तप जाने पर—दूध मे आँवले पीसकर लेप करना चाहिए। आँवले का तेल सिर में लगाने से भी मस्तक शान्त रहता है।

आँवले का तेल बनाने की विधि—आँवलों का एक सेर रस निकालकर उसमें एक सेर शुद्ध गरी का तैल डाले और मंदाग्नि पर पकाए। जब आँवलों का सब रस जल जाय और केवल तैल ही शेष रह जाय, तब उसे नीचे उतार कर उसमें सूखी हुई पनड़ी के पत्ते डालकर रख लेना चाहिए। यह तैल सिर में डालने से बड़ी ठण्ढक रहती है।

शरीर की गरमी दूर करने और धातुवृद्धि के लिए—आँवले, गोखरू और गिलोय का कपड़छन किया हुआ चूर्ण बराबर-बराबर यानी कुल तीन माशा लेकर तीन माशा शहद और आधा तोला घी के साथ सवेरे देना चाहिए।

सर्वज्वर पर—आँवले, चित्रक, हर्र, छोटी पीपल और सिंधव; इन सब औषधियों को पहले कूटकर कपड़े में छाने फिर तोल ले और चूर्ण बनाए। यह आमल्यादि चूर्ण रोज़ रात को तीन माशा खाकर दो घूँट पानी पीना चाहिए। ज्वर धीरे-धीरे चला जाता है। मुख में रुचि उत्पन्न होती है, दस्त साफ़ होता है, भूख अच्छी लगती है और ज्वर वाले रोगी को आराम मालूम होता है।

पेट के विकार पर—आँवले का मुरब्बा खाना चाहिए।

मुरब्बा बनाने की सरल विधि—अच्छे बड़े-बड़े आँवले लेकर उन्हें थोड़ा उबाले और छेदकर शक्कर की चाशनी में डाल दे। पन्द्रह दिनों में अच्छा मुरब्बा तैयार हो जाता है।

कनेर

यह पुष्प-वृक्ष सर्वत्र प्रसिद्ध है। इसकी ऊँचाई दस-ग्यारह हाथ से अधिक नहीं होती। संस्कृत में इसे करवीर, हिन्दी में कनेर, गुजराती में करेण, या कणेर, बङ्गला में करवी, मराठी मे कण्हेर, कर्नाटकी में कणलिगे, तैलिङ्गी मे कानेरचेट्टु गन्नेरु, तामील में अलारि या करवीरं, मलयलम में कनाविरं, फ़ारसी में खरजेहरा, अरबी में सुमुलहिमार, लैटिन में निरियम ओडोरम् और अंग्रेजी मे स्वीट सेंटेड या ओलिएन्डर कहते हैं इसकी चार

जातियाँ होती है। सफेद, लाल, गुलाबी और पीली। सफेद कनेर औषधि के उपयोग में बहुत आता है। इसकी जड़ों में विष होता है। इसके पत्ते लम्बे और छोटे होते हैं। कहते हैं कि साँप इसके पास तक नहीं फटकता।

सफेद कनेर—तीखा, कड़वा, फीका, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य और ग्राही होता है; तथा प्रमेह, कृमि, कुष्ठ, व्रण, अर्श और वायु का नाश करता है। यह खाने में ज़हरीला और नेत्रों के लिए हितावह तथा लघु होता है। यह विष, विस्फोटक, खुजली, कफ, ज्वर और नेत्ररोग का नाश करता है। इसे खाने से घोड़ा मर जाता है।

लाल कनेर—शोधक, तीखा, कड़वा, और लेप करने से कुष्ठनाशक होता है।

गुलाबी कनेर—मस्तक-शूल, कफ और वायु का नाश करता है। इसके और पीले कनेर के गुण सफेद कनेर के जैसे होते हैं। इनकी मात्रा दो रत्ती से चार रत्ती तक है।

उपयोग—

सर्प, बिच्छू आदि के विष पर—सफेद कनेर की जड़ को घिसकर दंश पर लेप करना या इसके पत्तों का रस पीना चाहिए। यदि पीने के पश्चात् ग्लानि उत्पन्न हो, तो घी पीना चाहिए।

उपदंश पर—कनेर की जड़ को घिस कर लेप करना चाहिए। इससे असाध्य पीड़ा भी दूर होती है।

विषम ज्वर पर—कनेर की जड़ को रविवार के दिन कान से बाँधना चाहिए। इससे सब प्रकार का ज्वर दूर होता है।

मूलव्याधि पर—कनेर की जड़ को घिसकर लेप करना चाहिए।

शिरोरोग पर—सफेद कनेर की जड़ को चिकने पत्थर पर घिसकर मस्तक के वेदना-युक्त भाग पर लगाना चाहिए।

सर्प के विष पर—सफेद कनेर के फूलों को सुखा कर उसमें उतनी ही सूखी और मसली हुई तम्बाकू मिलाए। पश्चात् उसमें थोड़ा-सा बड़ी इलायची का चूर्ण डालकर वस्त्र से छान कर नस्य करे।

कचनार

कचनार का वृक्ष बहुत बड़ा होता है। इसकी तीन जातियाँ होती हैं—पीली, लाल और सफेद। इसके फूलों में साधारण सुगन्ध आती है। इसमें शिकाकाई के जैसी फलियाँ लगती हैं। इसकी लकड़ी चिकनी और लाल रंग की होती है। वह रंग के काम में भी आती है। संस्कृत में कचनार को कांचनार, हिन्दी में कचनार, गुजराती में कंचनार, बङ्गला और मराठी में कांचन, कर्नाटकी में कोचाले या कचनार, तैलिङ्गी मे देवकांचन और लैटिन में बोहिनिया, या वरियेगेटा कहते हैं।

लाल कचनार—शीतल, सारक, अग्निदीपक, फीका और ग्राही होता है; तथा कफ, पित्त, व्रण, कृमि, रक्तपित्त, कुष्ठ, वायु और गुदभ्रंश का नाश करता है।

कचनार के फूल—शीतल, फीके, रुक्ष, ग्राही, मधुर और लघु होते हैं; तथा पित्त-क्षय, प्रदर, ऊर्ध्वरस और रक्तविकार का नाश करते हैं।

सफेद कचनार—ग्राही, फीका, मधुर, रुचिकर और रुक्ष

होता है ; तथा श्वास, ऊर्ध्वरस, पित्त, रक्तविकार, क्षत और प्रदर का नाश करता है।

पीला कचनार—ग्राही, दीपन और फीका होता है ; तथा मूत्रकृच्छ्र; कफ और वायु का नाश करता है।

उपयोग—

कंठमाल पर—कचनार की छाल को चावल के पानी में घिसकर दो तोला से चार तोला पर्य्यन्त देना चाहिए, या कचनार की छाल के काढ़े में सोंठ का चूर्ण डालकर ४२ दिन तक देना चाहिए।

कफ से उत्पन्न हुए नहारू पर—कचनार की छाल को पीसकर लेप करना चाहिए।

दाह पर—कचनार की छाल के रस में पिसा हुआ जीरा और कपूर डालकर देना चाहिए।

कंठमाल की गाँठों को फोड़ने के लिए—कचनार की जड़, चित्रक और अडूसे को पानी में घसकर सात दिन तक लेप करना चाहिए।

कंठमाला पर—कचनार की चार तोला खूब अच्छी कुटी हुई छाल में आधा सेर पानी डाल कर मंदाग्नि पर उसका अष्टमांश काढ़ा बनाए। फिर उसे छानकर उसमें तीन माशा शहद डालकर देना चाहिए। इससे दस्त साफ़ होकर धीरे-धीरे गाँठों का ज़ोर कम हो जाता है। कई दिनों तक कचनार पीने से शरीर की कोई भी गाँठ बैठ जाती है।

गुड़हर

गुड़हर की कई जातियाँ होती हैं ; जैसे—सफेद, लाल, गेरुआ आदि। इसे संस्कृत में जपा, हिन्दी में ओड़हुल या गुड़हर, गुजराती में रतनजोत या जासुन्दी, मराठी में जासवंद, कर्नाटकी में दासनल या दाशाल, तामील में केंबरते, तैलिंगी में दासनचेट्टु मलयलम में चेंपरुत्ति, लैटिन में हिबिस्करसोज्रा या साइनेंसिस् और अंग्रेजी में शुफलावर कहते हैं। सफेद गुड़हर अधिक गुणकारी होता है। लाल गुड़हर के फूल का रस चाकू पर लगाकर उससे नीबू काटने पर अन्दर से लहूके-से रंग का रस निकलता है।

गुड़हर का वृक्ष—तीखा, शीतल, किंचित् उष्ण, मधुर, स्निग्ध, पुष्टिकर, सूर्य्य की आराधना करने योग्य, गर्भवृद्धिकर, ग्राही, केश्य, क़ै लानेवाला और कृमि-वर्द्धक होता है ; तथा दाह, अर्श, धातुरोग, प्रमेह और प्रदर का नाश करता है।

गुड़हर के फूल—ग्राही, लघु, कड़वे और केश को बढ़ानेवाले होते हैं।

उपयोग—

पित्तशमन के लिए—सफ़ेद गुड़हर के पत्तों के रस में शक्कर डालकर पीना चाहिए।

गर्भधारण के लिए—सफेद गुड़हर की जड़ को एक रंग की गाय के दूध में घिसे। पश्चात् उसमें बारीक पिसे हुए बिजोरे के बीजों को डालकर ऋतुकाल के समय पिलाए।

गर्भस्राव पर—सफेद गुड़हर की जड़, गोपीचन्दन, सफेद चिकनी मिट्टी और कुम्हार के काम में आनेवाली मिट्टी को दूध में घिसकर पिलाना चाहिए।

प्रदर और पुष्टि के लिए—सफेद गुड़हर की चार-पाँच कलियों को घी में तलकर सात दिन तक सुबह-शाम शक्कर के साथ खाए और ऊपर से गाय का ताजा दूध पिए।

मूलव्याधि और रक्तातिसार पर—सफेद गुड़हर की कलियों को घी में तलकर उसमें शक्कर और नागकेसर मिलाए। पश्चात् घी में गोली बना कर दो बार खिलाए।

उदकमेह पर—गुड़हर के पत्ते या फूल शक्कर के साथ खाना चाहिए।

प्रदर और धातुविकार पर—सफेद गुड़हर की जड़, कमलकन्द, और सफेद सेमल की छाल के छः माशा छने हुए चूर्ण को रोज सुबह-शाम गाय के दूध में शक्कर के साथ मिलाकर पीना चाहिये।

बाल टूट जाने पर—चौदह दिन तक नित्य प्रति गुड़हर की पाँच कलियाँ शक्कर के साथ खाना चाहिए।

प्रदर, धातुविकार, रक्तमूलव्याधि, उपदंश और प्रमेह पर—सफेद गुड़हर की जड़ दूध में घिसकर उसमें शक्कर डाले और सुबह-शाम रोज सेवन करे। तीखे, उष्ण और तेल के पदार्थ वर्ज्य हैं। यह औषधि पुष्टिकर भी होती है।

गर्भस्राव पर—सफेद गुड़हर की पाँच कलियों को घी में तलकर शक्कर डालकर उसका शीरा बनाये और जिन स्त्रियों को गर्भस्राव होता हो, उन्हें दूसरे महीने से लेकर पूरे दो महीने तक लगातार दिन में एक बार यह शीरा खिलाना चाहिए। इससे गर्भ स्थिर होता है, गिरता नहीं।

बाल बढ़ाने के लिए—गुड़हर के फूलों का रस निकाल कर सिर में डालने से बाल बढ़ते हैं।

बाल उड़ जाने पर—गुड़हर के फूलों का रस नियमित रूप से मलना चाहिए।

ठण्ढक के लिए गुड़हर का तैल—गुड़हर के एक सेर रस में एक सेर शुद्ध गरी का तैल डालकर मन्दाग्नि पर पकाये। जब सब रस जल जाय, तब नीचे उतार कर उसमें पनड़ी, खस, नागरमोथा, जटामासी (बालछड़), तगर आदि सुगन्धित द्रव्य डालकर रख लेना चाहिए। यह तैल मस्तक के लिए बहुत शीतल है।

मैनफल

मैनफल का वृक्ष बहुत बड़ा नहीं होता। इसे संस्कृत में मदन, हिन्दी में मैनफल या करहर, गुजराती में मींढल, मराठी में गेळ या मेणफळ, बङ्गला में मयनाकाँटा, तामील में पुंगारे या मारुक्कारे, तैलिङ्गी में मारिंगा या वसन्त कड़िमि चेट्टु, कर्नाटकी में मंगारे, बोनगेरे, या रणयबोनगेरे, मलयलम में मांगाकायी, अरबी में जोजुल्कं, नैपाली मे मैदल, पंजाबी में मिंडकोल्ल, लैटिन में रेन्डियाड्युमेटोरम् और अंग्रेजी में बुशीगार्डिनिया कहते हैं। इसमें दो इंच लम्बे मोटे काँटे होते हैं। इसके पत्ते बड़ के जैसे होते हैं। इसमें सुपारी के बराबर फल लगते हैं। पक जाने पर उनका रंग पीला हो जाता है। यह वृक्ष पहाड़ी देशों में बहुत होता है।

मैनफल का वृक्ष—तीखा, कड़वा, गरम, मधुर, लेखन, लघु, रुक्ष, कै लाने वाला; तथा कफ, वायु, व्रण, सूजन, आनाह, विद्रधि विष, गुल्म, जुकाम, कुष्ठ, अर्श और ज्वर का नाश करता है।

उपयोग—

पेट के आगन्तुक शूल पर—मैनफल को लपसी में घिसकर दिन में नौ-दस बार नाभि पर लेप करना चाहिए।

पित्त गिराने के लिए—मैनफल के दो पैसे भर रस में शहद मिलाकर पिलाना चाहिए। यदि गीला फल न मिले, तो सूखे फल का चूर्ण शहद में मिलाकर देने से भी क़ै होकर पित्त गिर पड़ता है।

कफ़वात पर—मैनफल का चूर्ण दूध मे मिलाकर पीना चाहिए। इससे क़ै होकर कफ़ वायु की पीड़ा दूर हो जाती है।

आधाशीशी पर—सूर्योदय से पहले मैनफल और शक्कर को गाय के दूध में घिसकर नस्य करना चाहिए।

स्तनरोग पर—मैनफल को ठण्डे पानी मे घिसकर लेप करना चाहिए।

जूँ मारने के लिए—मैनफल का रस सिर में लगाना चाहिए।

कफ गिराने के लिए—एक तोला मैनफल, आधा तोला सेंधा नमक और डेढ़ माशा पीपल का चूर्ण चार माशा गरम पानी में डालकर पीना चाहिए। इससे क़ै होकर कफ़ निकल जाता है।

कै कराने के लिए—अच्छे बड़े तीन मैनफलों की छाल निकाल कर कूटे और रात के समय पाँच तोला पानी में भिगोदे। सवेरे उस पानी को पीने से तुरन्त वमन होता है। कफ़, पित्त जब बहुत बढ़ जाते हैं, तब कै के द्वारा उन्हे निकालने के लिए यह पानी दिया जाता है।

बच्चों को कफ बढ़ने पर—मैनफल को पानी में घिसकर पिलाना चाहिए।

कृमि पर—मैनफल का कपड़छन किया हुआ एक माशा चूर्ण शहद में गीला करके चटाना चाहिए। दस्त साफ़ होकर कृमि निकल जाते हैं।

अतिसार पर—कपड़छन किया हुआ मैनफल का आधा माशा चूर्ण शहद में मिला करके चटाना चाहिए। एक दिन में तीन बार यह प्रयोग करना चाहिए। दो-तीन दिन में कठिन-से-कठिन अतिसार दूर होता है।

पेट में किसी प्रकार का ज़हर चला जाने पर—तीन मैनफलों की छाल को पानी में मसलकर वह पानी पिलाना चाहिए। इससे वमन होकर विष निकल जायगा।

हरफारेवड़ी

हरफारेवड़ी का वृक्ष अधिक बड़ा नहीं होता। इसे संस्कृत में लवली, हिन्दी में हरफारेवड़ी, गुजराती में खाटी आमली या राय आमली, बंगला मे नोपाळ या लोओपाड़, मराठी में राय-आँवली काथ आँवला और लैटिन में फिल्यांगस डिस्टिकस् या सायको डिस्टिका कहते हैं। इसके पत्ते लम्बे होते हैं। इसके वृक्ष पर अंगूर की तरह फलों के गुच्छे लगते हैं। उनका अचार बनाया जाता है।

हरफारेवड़ी—खट्टी, फीकी, कड़वी, रुचिकर, प्रिय, रूक्ष, स्वादिष्ट, वातकर, किंचित् मधुर, लघु, विषद और सुगंधित होती है; तथा कफ, पित्त, वातपित्त, मूत्राश्मरी और अर्श का नाश करती है।

उपयोग—

जुलाब के लिए—हरफारेवड़ी की छाल के रस में काली

मिर्च, पाँच लौंग और बेल को पीसकर डाले। इस औषधि को पीने के पश्चात् जुलाब रोकने के लिए घी-भात खाना आवश्यक है।

शरीर पर पित्ती उछल आने पर—हरफारेवड़ी या उसके पत्तों के रस में घी और काली मिर्च का चूर्ण डाले। पश्चात् उसे तपाकर शरीर पर लेप करे।

नाड़ी-व्रण पर—दो तोला हरफारेवड़ी के छिलकों का रस, तीन तोला इमली की छाल का रस और पाँच तोला गाय के घी को मिलाकर सात दिन तक पिलाना चाहिए।

रुद्राक्ष

रुद्राक्ष का वृक्ष बहुत बड़ा होता है। इसे संस्कृत, हिन्दी, गुजराती और मराठी में भी रुद्राक्ष ही कहते हैं। यह वृक्ष कोंकण के बहुत से भागों में पाया जाता है। इसकी दो जातियाँ होती हैं—छोटी और बड़ी। इसके फल के बीजों को "रुद्राक्ष" कहते हैं। रुद्राक्ष की मालाएँ बनाई जाती हैं। मैसूर और उसके निकट भी इसके वृक्ष बहुत होते हैं। नेपाल में भी इसके वृक्ष बहुत होते हैं और वहाँ होनेवाले पंचमुखी, सप्तमुखी रुद्राक्ष को सब साधु-सन्त बड़े प्रेम से गले में धारण करते हैं।

रुद्राक्ष का वृक्ष—खट्टा, गरम और रुचिकर होता है; तथा वायु, कफ, शिरपीड़ा, भूतबाधा और ग्रहबाधा का नाश करता है।

उपयोग—

साधारण ज्वर पर—रुद्राक्ष को शहद में घिसकर पिलाना चाहिए।

टेसू

टेसू का वृक्ष बहुत बड़ा नहीं होता। इसे संस्कृत में पलाश, हिन्दी में टेसू, केसू, पलास, ढाक, काँकरियाँ और धारा, गुजराती में खाखरो, बङ्गला में पलाशगाछ, मराठी में पळस, उड़िया में पराशु, तामील में परसन्, कर्नाटकी में मुत्तल्लु या केंपुमुत्तल, तैलिङ्गी में मातुकाचेट्टु, लैटिन में ब्युटिया फ्रण्डाज़ा और ब्युटिया पार्विफ्लोरा और अंग्रेजी में डाउनी ब्रान्च ब्युटिया कहते हैं। इसकी लकड़ी बढ़इयों के काम में नही आती। इसके पत्ते और फूल काम के होते हैं। पत्तों से पत्तलें और दोने बनाये जाते हैं। इसके फूलों का रंग केसर का-सा होता हैं। वे रंग के लिए उपयोगी होते हैं। इसका गोंद स्तंभक होता है। इसके फूलों का रंग कुछ-कुछ तोते की चोंच के जैसा होने के कारण संस्कृत में उसे "किंशुक" कहते हैं।

टेसू का वृक्ष—गरम, फीका, वृष्य, अग्निदीपक, सारक, कड़वा, स्निग्ध, ग्राही और भग्न-संधान-कर होता है; तथा व्रण, गुल्म, कृमि, प्लीहा, संग्रहणी, अर्श, वायु, कफ, योनिरोग और पित्तरोग का नाश करता है।

टेसू के फूल—स्वादिष्ट, कड़वे, गरम, फीके, वातकर, ग्राही, शीतल और तीखे होते हैं; तथा तृषा, दाह, पित्त, कफ, रक्तदोष, कुष्ठ और मूत्रकृच्छ्र का नाश करते हैं।

टेसू के फल—रूखे, लघु, गरम और तीखे होते हैं; तथा कफ, वायु, उदरशूल, कृमि, कुष्ठ, गुल्म, प्रमेह और अर्श का नाश करते हैं।

टेसू के बीज—स्निग्ध, गरम और तीखे होते हैं; तथा कफ और कृमि का नाश करते हैं।

टेसू की कोंपलें—कृमि और वायु का नाश करती हैं।

उपयोग—

बच्चों के कृमि पर—टेसू के फल का चूर्ण शहद के साथ देना, या दूध में घिसकर पिलाना चाहिए।

दाद पर—टेसू के फल को नीबू के रस में घिसे और गरम करके लेप करे।

वन्ध्या स्त्री के गर्भधारण के लिए—टेसू के फल को जलाकर उसकी राख पानी में मिलाकर पिलानी चाहिए। इससे वन्ध्या स्त्री गर्भिणी हो जाती है।

मासिकधर्म बन्द हो जाने पर—टेसू के फल और शेवती गुलाब के फूल को पानी या घी के साथ भक्षण करना चाहिए और फिटकिरी की पोटली योनि में रखनी चाहिए।

कृमि पर—टेसू के बीज और बायबिड़ंग को तीन-तीन माशा लेकर चूर्ण करे। पश्चात् चूर्ण को नीबू के रस या शहद के साथ चाटे।

बच्चों की फुंसियों पर—टेसू के फल को नीम के रस में घिसकर लगाना चाहिए।

कृमि पर—टेसू के बीजों को कूटकर पानी में गला दे। पश्चात् उस पानी को छान कर शहद के साथ पिये।

नहारू पर—टेसू के फूल को पीसकर गुड़ में मिलाये और उसकी सात गोलियाँ बनाकर रोज एक-एक खाये।

अतिसार पर—थोड़ा-सा टेसू का गोंद शक्कर के साथ खाना चाहिए।

खाँसी और मुखरोग पर—टेसू के पत्तों के डंठलों को मुँह में रखकर उनका रस चूसना चाहिए।

कान में कीड़ा घुस जाने पर—टेसू के अंकुरों का रस कान में डालना चाहिए।

सर्प के विष पर—टेसू की जड़ को पानी में घिस कर पिलाना और दंश पर लेप करना चाहिए।

गलगंड पर—टेसू की जड़ को चावल के धोवन में पीसकर कान के पीछे और किनारों पर लेप करना चाहिए।

बिच्छू के विष पर—टेसू के फल को आँक के दूध में भिगो-भिगोकर छाया में इक्कीस बार सुखाये। पश्चात् उसे पीस कर गोलियाँ बनाकर रख ले। इस गोली को पानी में घिसकर बिच्छू के काटे हुए पर लगाने से तुरन्त विष उतर जाता है।

पेशाब साफ़ होने के लिए—टेसू के कपड़छन किये हुए तीन माशा चूर्ण को दूध और मिश्री के साथ देना चाहिए। इससे पेशाब साफ होकर पेशाब के सब रोग दूर होते हैं और जीर्ण-ज्वर तथा शरीर के गर्मी आदि के विकार भी दूर होते हैं।

पेशाब रुकने और पेड़ू की सूजन पर—टेसू के फूल मोदक पात्र में उबाल कर उनकी पोटली पेडू पर बाँधनी चाहिए।

छाती में कफ जम जाने पर—टेसू के फूल उबाल कर उनसे छाती सेंकनी चाहिए, अथवा राई का तेल छाती पर अच्छी तरह मलकर टेसू के उबले हुए फूलों से सेंकना चाहिए। कफ पतला होकर निकल जायगा।

शक्ति के लिए—टेसू के गोंद को महीन करके घी में तले। जब वह फूल जाय, तब उसमें बराबर की शक्कर, बादाम, पिश्ता, छुहारा और चिरौंजी डालकर शक्ति के अनुसार खाये।

अशक्ति पर—एक तोला टेसू की जड़ का आधा सेर पानी में अष्टमांश काढ़ा बनाकर रोज़ सुबह एक बार मिश्री और शहद के साथ देना चाहिए। दो सप्ताह में ही शक्ति बढ़ी हुई मालूम होगी। इस औषधि से विशेषकर पुरुष की इन्द्रिय-शक्ति बढ़ती है।

खिरनी

खिरनी का वृक्ष गुजरात की ओर बहुत होता है। इसे संस्कृत मे राजादनी, हिन्दी मे खिरनी, गुजराती में रायण, बंगला में कशिरनी या क्षीरखेजूर, मराठी में खिरणी, या राँजणी, कर्नाटकी में खिरनीमारा, लैटिन में माइमुसोप्सेहेगज़ाङ्का और अंग्रेज़ी में ओवरयुसलीण्ड माइमुसोप्स कहते हैं। यह बहुत बड़ा होता है। इसके फल निंबोली के जैसे होते हैं। उन्हे 'खिरनी' कहते हैं। खिरनी बहुत मीठी और गरम होती है। उनमे दूध भी होता है। खिरनी के वृक्ष की लकड़ी मज़बूत और चिकनी होती है।

खिरनी—मधुर, गुरु, तर्पण, वृष्य, हृद्य, शीतल, ग्राही, स्वादिष्ट, फीकी, पक जाने पर मीठी, धातुवर्द्धक, मलस्तंभक, रुचि-कर, पौष्टिक होती है; तथा तृषा, मूर्छा, मद, भ्रान्ति, क्षय, त्रिदोष और रक्तदोष का नाश करती है।

उपयोग—

अपस्मार पर—खिरनी के वृक्ष की गाँठ को सेंककर उसके रस में शहद और पीपल का चूर्ण मिलाकर देना चाहिए।

वातपित्त, प्रदर और रक्तपित्त पर—खिरनी और कैथ के पत्तों को घी में सेंककर पीसकर देना चाहिए।

सफेद चम्पा

सफेद चम्पे का वृक्ष भी हिन्दुस्थान में सभी जगह पाया जाता है। इसे संस्कृत में श्वेत चंपक, हिन्दी में सफेद चम्पा, गुजराती में धोलो चंपो और मराठी में पाँढरा चम्पा कहते हैं। इसके पत्ते लम्बे और फूल सफेद होते हैं। इसका रस इतना गरम होता है कि शरीर पर लगने से छाले उठ आते हैं। इसके फूलों का शाक भी बनाया जाता है।

चम्पे का वृक्ष—सारक, कड़वा, तीखा, फीका और गरम होता है; तथा कुष्ठ, खाज, व्रण, शूल, कफ, वायु, उदर और आध्मान का नाश करता है।

उपयोग—

फोड़े, गाँठ आदि को बैठाने के लिए—चम्पे के दूध का लेप करना चाहिए।

शीतज्वर पर—चम्पे के फूल को—डंठल निकालकर—पानी के साथ खाना चाहिए।

खुजली पर—चम्पे के दूध में गरी या चन्दन का तैल और कपूर मिलाकर लेप करना चाहिए।

दस्त के लिए—चम्पे की छाल को नारियल की गरी के साथ-साथ खाये। इसके पश्चात् घी-भात खाना, या चम्पे की छाल के रस में अदरक का रस मिलाकर पीना आवश्यक है।

वायु से अंग जकड़ जाने पर—सफेद चम्पे के पत्तों को गरम करके शरीर सेंकना, या उनका रस मलना चाहिए।

सर्प-दंश पर—चम्पे की ताजी कलियाँ घिसकर पिलाना चाहिए। यदि ताजी कली न मिले, तो सूखी को दूध में उबाल कर काम में लाया जा सकता है।

शीतज्वर पर—चम्पे की कलियों को डंठल-सहित पान में रखकर तीन बीड़ियाँ बनाये। पश्चात् ज्वर आने के पहले एक-एक घड़ी में एक-एक पान खिलाये।

सर्प-दंश पर—चम्पे और बेल की छाल को एकत्र कूटकर उसका आधा सेर तक रस पिलाना चाहिए।

बेल

बेल का वृक्ष हिन्दुस्थान में सर्वत्र होता है। इसे संस्कृत में बिल्व, हिन्दी और मराठी में बेल-वृक्ष, गुजराती में बोली, अरबी में अनारहिन्दी, कर्नाटकी में बेललबन्, तैलिङ्गी में मारेंडुचेट्ट, तामील और मलयलम में बिल्वं, लैटिन में इगलममेंरोस् और अंग्रेजी में बेल ट्री कहते हैं। इसके पत्ते शिव-पूजा के काम में आते हैं। इसके फल को बेल कहते हैं। वह कैथ के जैसा होता है। कच्चे बेल का शाक और अचार बनाया जाता है। पके हुए बेल में शहद की-सी लसी पैदा हो जाती है। गरीब लोग पके फल को खाने के

काम में लाते हैं। इसके वृक्ष की छाया बहुत ही शीतल और गुण-कारी होती है। बेल की छाल का पीला रंग भी बनता है। इसके वृक्ष की डालियों में काँटे होते हैं। एक डंठल में तीन-तीन पत्ते लगते हैं। ग्रीष्म ऋतु के आरम्भ मे इसमे नये पत्ते आते हैं। इसके फूल सफ़ेद और सुगन्धित होते हैं। इसकी लकड़ी चन्दन के समान पवित्र मानी जाती है। इसके पत्तों को पीसकर आँख में आँजने से नेत्र-रोग नष्ट हो जाते हैं।

बेल का वृक्ष—मधुर, हृद्य, फीका, गुरु, रुचिकर, दीपन, उष्ण, ग्राही, रूखा, कड़वा, तीखा और पाचक होता है; तथा वातातिसार और ज्वर का नाश करता है।

बेल—मधुर और लघु होता है; तथा त्रिदोष, क़ै, शूल, कफ़, वायु, मूत्रकृच्छ्र और पित्त का नाश करता है।

कच्चे बेल—स्निग्ध, गुरु, ग्राही, दीपक, पाचक, कड़वे, गरम और फीके होते हैं; तथा शूल, आमवात, संग्रहणी और कफातिसार का नाश करते हैं।

पके बेल—दाहक, मधुर, फीके, विष्टंभकारी, कड़वे, ग्राही, तीखे, गरम, दुर्जर, वातकर और अग्निमांद्यकारी होते हैं।

पुराने बेल—मधुर, फीके, जड़कर, तीखे, गरम, संग्रही, दीपक, पाचक और हृद्य होते हैं; तथा कफ़ और वायु का नाश करते हैं।

बेल के पत्ते—ग्राही और वात-नाशक होते हैं।

उपयोग—

बच्चों के आँव पर—बेल का गूदा खिलाना चाहिए।

सर्प-दंश पर—बेल, कैथ और चौलाई—इन तीनों की जड़ का रस पिलाना चाहिए।

कृमि पर—बेल के पत्तों का रस पिलाना चाहिए।

अम्लपित्त से गले में जलन होने पर—दिन में चार-पाँच बार, दो-तीन पैसे-भर बेल के पत्तों का रस पिलाना चाहिए।

बहरेपन पर—बेल को गोमूत्र में पीसकर तल में मिलाये। पश्चात् गरम करके कान में डाले।

आँव-संग्रहणी पर—कच्चा, सूखा हुआ बेल, सौंफ़ और सोंठ का काढ़ा पिलाना चाहिए।

धातुपुष्टि के लिए—गाय के दूध में बेल की छाल का रस और पिसा हुआ जीरा मिलाकर पिलाना चाहिए।

गला दुखने पर—पके बेल का गूदा खाना चाहिए।

रक्तातिसार पर—सूखे हुए कच्चे बेल का चूर्ण गुड़ के साथ खाना चाहिए।

सब प्रकार के अतिसार पर—कच्चे बेल और आम की गुठली के काढ़े में शक्कर और शहद मिलाकर खाना चाहिए।

मुँह आने पर—बेल को तोड़कर पानी में उबाले और उसके जल से कुल्ला करे।

सब प्रकार के अतिसार पर—बेल और आम की छाल के काढ़े में शहद और शक्कर डालकर पिलाना चाहिए।

क़ै और अतिसार पर—बेल और आम की गुठली के रस में शक्कर मिलाकर पिलाना चाहिए।

विषमज्वर पर—बेल के पत्तों को गुड़ में मिलाकर, उसकी गोली खिलानी चाहिए।

धातु गिरने पर—बेल के पावभर पत्तों को पानी में पीसे। पश्चात् उसके रस में छः माशा जीरा और एक तोला शक्कर डालकर सात रोज़ तक देना चाहिए।

गर्भिणी के कै और अतिसार पर—सूखे हुए कच्चे बेल और सोंठ का काढा बनाये और उसमें जौ का आटा डालकर खिलाये।

बच्चों की संग्रहणी पर—बेल और सोंठ का चूर्ण गुड़ के साथ देना चाहिए।

त्रिदोषजनित कै पर—बेल की छाल के काढ़े में शहद डालकर देना चाहिए।

धातुपुष्टि के लिए—यंत्र-द्वारा बेल का अर्क निकाल कर पिलाना चाहिए।

शरीर की दुर्गंध दूर करने के लिए—बेल के पत्तों के रस का लेप करना चाहिए।

सूजन, मलबद्धता, सूलव्याधि और विशूचिका पर—बेल के पत्तों का रस पिलाना चाहिए।

जीर्णज्वर पर—बेल की जड़ को दूध में उबाल कर पिलाना चाहिए।

विशूचिका पर—बेल, सोंठ और कायफल का काढ़ा पिलाना चाहिए। केवल बेल और सोंठ का काढ़ा भी गुणकारी होता है।

गर्भिणी के अतिसार पर—बेल, जायफल और वामा-वर्तफला (मरोड़फली या मुर्रा) को घिसकर पिलाना चाहिए।

रक्त-आँव पर—तीन माशा अधपका सूखा बेल मिश्री और शहद में मिलाकर, प्रत्येक बार शौच से लौटने के बाद देना चाहिए।

सब प्रकार के अतिसार पर—अधपका सूखा बेल, धनिया,

सोंठ, नागरमोथा और अतीस, ये पाँचों औषधियाँ तीन-तीन माशा लेकर आधा सेर पानी में उनका अष्टमांश काढ़ा बनाये और सुबह-शाम पिलाये।

पेशाब बहुत आने पर—एक तोला बेल और छः माशा सोंठ का आधा सेर पानी में अष्टमांश काढ़ा बनाकर पिलाना चाहिए। एक सप्ताह तक पिलाने से बहुत पेशाब होने की शिकायत दूर होगी।

लगातार आनेवाले ज्वर पर—एक तोला बेल की अथवा बेल के मूल की छाल और छः माशा बेल के सूखे पत्तों का आधा सेर पानी में अष्टमांश काढ़ा बनाकर नित्य दो बार देना चाहिए। एक सप्ताह में लाभ होता है। यह अनुभूत प्रयोग है। विषमज्वर अथवा किसी भी प्रकार का ज्वर इससे दूर होता है।

वायु के विकार-विशेष कर हृदयरोग-पर—बेल के मूल का काढ़ा पिलाना चाहिए।

गरमी दूर करने के लिए—चार तोला बेल का गूदा पाव भर पानी में मसल कर छाने और उसमें चार तोला शक्कर डालकर पिये। यह शरबत पेट को साफ करता और शरीर की गरमी को दूर करता है।

शक्ति के लिए—दो तोला बेल के पत्ते पीसकर उसमे पानी डालकर उसका रस निकाले और दो तोला शक्कर मिलाकर पिये। इससे शक्ति बढ़ती और गरमी दूर होती है।

भयंकर अतिसार और आमांश पर—पाँच तोला बेल के गूदे और पाँच तोला सफेद कत्थे का चूर्ण कपड़छन करके उसमें दस तोला मिश्री मिलाकर बोतल में भर कर रख छोड़े। यह औषधि भयंकर अतिसार और आमांश के लिए बहुत उपयोगी

है। अथवा बेल का मुरब्बा देना चाहिए। यह भी पेचिश आदि के लिए बहुत उपयोगी है।

फालसा

फ़ालसे का वृक्ष बड़ा होता है। यह बगीचों में बोया जाता है। उत्तरी हिन्दुस्थान में इसकी उत्पत्ति बहुत होती है। इसे संस्कृत में पुरुषक, हिन्दी, गुजराती, बङ्गला, मराठी और अरबी मे फालसा, फ़ारसी में पालसा, कर्नाटकी में बेट्टहा, लैटिन में ग्रेबियाएशियाटीका, और अंग्रेजी में एशियाटीक ग्रेबिया कहते हैं। इसका फल पीपल के फल के बराबर होता है। इसको फालसा कहते हैं। यह मीठा होता है। गरमी के दिनों में इसका शर्बत भी बनाया जाता है।

फालसे का वृक्ष—खट्टा, फीका, पित्तकर और लघु होता है; तथा वायु का नाश करता है।

कच्चे फालसे—पित्तकर, लघु, उष्ण, खट्टे, फीके और वात-नाशक होते हैं।

पके फालसे—मधुर, स्वादिष्ट, रुचिकर, तर्पण, शीतल, मलावरोधक, हृद्य, धातुवर्द्धक और खट्टे होते हैं; तथा वात, पित्त, रक्तदोष, तृषा, दाह, क्षत-क्षय, सूजन और पित्त-ज्वर का नाश करते हैं।

उपयोग—

पित्तविकार और हृद्रोग पर—पके फालसे के रस को पानी में मिलाकर, पिसी हुई सोंठ और शक्कर के साथ पिलाना चाहिए।

दाह-शमन के लिए—पके हुए फालसे शक्कर के साथ खाने चाहिए।

मृत और मूढ़ गर्भ गिराने के लिए—नाभि, वस्ति और योनि पर फालसे की जड़ का लेप करना चाहिए।

मदार

मदार के वृक्ष बिल्कुल आँक के वृक्ष के जैसे होते हैं; केवल फूल और वृक्ष के रंग में अन्तर होता है। इसे संस्कृत, बङ्गला और मराठी में मांदार, हिन्दी में मदार, गुजराती में मंदार, कर्नाटकी में मांदारलुं, तामील में कोकक्कुमांदारे, मलयलम में वेलुत्तामांदारं, और लैटिन में केलोट्रोपिस प्रोसिरा कहते हैं। मदार के वृक्ष सफेद और भूरे रंग के होते है। यह वनों में अपने-आप उग आते हैं। इसके फूल सफेद होते हैं। उन पर भौंरे बहुत बैठते हैं। एक वर्ष के पश्चात् मदार में फूल आते हैं। इसके दूध को उबालकर गाढ़ा बना लेने से गोंद की तरह उपयोगी पदार्थ बन जाता है।

मदार का वृक्ष—तीखा, कड़वा और गरम होता है; तथा कफ, मेद, विष, वायु, कुष्ठ, व्रण, सूजन, खुजली और विसर्प का नाश करता है।

सफेद मदार—अति उष्ण, कड़वा और मलशोधक होता है; तथा मूत्रकृच्छ्र, व्रण, कृमि और अत्यन्त दारुण व्याधि का नाश करता है।

उपयोग—

विषम ज्वर पर—रविवार के दिन मदार की जड़ को कान पर बाँधने से शीघ्र लाभ होता है।

आम-वात, रक्तातिसार, उपदंश और रक्तकुष्ठ पर—दिन में तीन बार डेढ़ माशा मदार की जड़ की छाल का चूर्ण शक्कर के साथ देना चाहिए।

वातशूल पर—मदार की जड़ का चूर्ण दूध के साथ पीना चाहिए।

अमरूद

अमरूद का वृक्ष अधिकतर सभी जगह होता है; परन्तु भारतवर्ष में इसकी उत्पत्ति सबसे ज्यादा होती है। इसे संस्कृत में बहुबीज, हिन्दी में अमरूद या जामफल, गुजराती में जमरुख या जामफल और मराठी में पेरू कहते हैं। इसकी दो जातियाँ होती हैं—एक लाल और दूसरी सफेद। सबसे अच्छे अमरूद लखनऊ और इलाहाबाद मे होते हैं और उनका वजन कभी-कभी एक सेर तक हो जाता है। इसमें दो वर्ष के पश्चात् फल आते हैं। इनका रायता बहुत अच्छा बनता है। पके फल खाते समय अगर काली मिर्च, नमक और नीबू का उपयोग किया जाय तो अधिक खाना भी हानि नहीं करता। स्वाद भी बढ़ जाता है। अमरूद अधिक खा लेने से ज्वर चढ़ आता है। यह ठण्डे होते हैं। इसकी लकड़ी चिकनी और मजबूत होती है। इससे बन्दूक के कुंदे बनाये जाते हैं।

उपयोग—

पेट में गड़बड़ी होने पर—अमरूद को कोंपलों को पीस-कर पिलाना चाहिए।

भंग के नशे पर—अमरूद के पत्तों का रस पीना या अमरूद खाना चाहिए।

ठंढक के लिए—अमरूद के बीजों को निकाल कर पीसे और लड्डू बनाकर गुलाब-जल में शकर के साथ पिये।

मीठा नीम

मीठा नीम अधिक ऊँचा नहीं होता। यह अधिकतर बगीचों में बोया जाता है। इसे संस्कृत में कैटर्य, हिन्दी में मीठा नीम, गुजराती में मीठो लीमड़ो और मराठी में कढ़ी निंब कहते हैं। इस वृक्ष में छोटे-छोटे काँटे भी होते हैं। इसके पत्तों में सुगन्ध आती है। घी लगे हुए पत्तों को आँच से सेककर कढ़ी में डालने से उसमें सुगन्ध आने लगती है। पत्तों की चटनी भी बनाई जाती है। इसका उपयोग अधिकतर गुजरात और दक्षिण मे ही होता है। इसीलिए इसे गुजराती नीम भी कहते हैं। दक्षिणी लोग इसको कढ़ी में डालकर बहुत खाते हैं और इसीलिए इसका नाम कढ़ी निंब हो गया है। भारत के अन्य प्रान्तों में इसका उपयोग प्रायः नहीं होता; पर युक्त-प्रान्त में और विशेषतया कानपुर, काशी वगैरः में इसके पत्तों का उपयोग चटनी बनाने में किया जाता है। कुछ लोग कढ़ी में डालकर भी खाते हैं। हम स्वतः इसका उपयोग करते हैं; क्योंकि इसके व्यवहार से कढ़ी बड़ी जायकेदार

हो जाती है, बशर्ते कि पतली बनी हो। चटनी भी बड़ी स्वादिष्ट बनती है।

मीठे नीम का वृक्ष—शीतल, कड़वा, तीखा, फीका और लघु होता है; तथा दाह, अर्श, कृमि, शूल, संताप, सूजन, कुष्ट, भूतबाधा और विष का नाश करता है।

छोंकर

छोंकर को "समी" भी कहते हैं। इसके वृक्ष बहुत बड़े होते हैं। इसके पत्तों की आकृति इमली के पत्तो के जैसी होती है। यह हवन के काम में भी आता है। बहुत-सी जगह विजयदशमी के दिन इसका पूजन भी किया जाता है। इसे संस्कृत और मराठी में शमी, हिन्दी में छोंकर, समी या सफेद कीकर, गुजराती में खीजड़ो या समड़ी, बङ्गाल में शाइबाबला, कर्नाटकी में बन्नी, तैलिङ्गी में शमीचेट्टु, या नबोचेट्टु, लैटिन मे प्रोसोपिरास्पाइ-सिजेरा और अंग्रेजी में स्पंजट्री कहते हैं।

छोंकर का वृक्ष—फीका, रुक्ष, शीतल, लघु, कड़वा, तीखा और रेचक होता है; तथा रक्तपित्त, कुष्ट, अतिसार, अर्श, श्वास, ऊर्ध्वरस, कफ, भ्रम, कृमि, कम्प और श्रम का नाश करता है।

इसके फल—तीखे, पित्तकारी, गुरु, स्वादिष्ट, रुक्ष, उष्ण और केश नाशक होते हैं।

छोटी समी—(इसे संस्कृत में लघुशमी, गुजराती में खीजड़ो, मराठी में खैरी या लघुशमी, और कर्नाटकी मे काड्बन्नि कहते हैं।)—फीकी, रुक्ष, शीतल और लघु होती है; तथा

रक्तपित्त, अतिसार, अर्श, कुष्ठ, श्वास, कफ और श्वेतकुष्ट का नाश करती है।

इसके फल—गुरु, स्वादिष्ठ, रुक्ष, पित्तकर, और उष्ण होते हैं ; तथा व्रण, केश और खुजली के नाशक होते हैं।

उपयोग—

खाज पर—छोंकर के पत्तों को गाय के दही में पीसकर लेप करना चाहिए।

नखों के विष पर—छोंकर, नीम और बड़ की छाल को पीसकर लेप करना चाहिए।

धातुस्थान की गरमी पर—छोंकर और किंकिरात के फूलों को समभाग लेकर थोड़े से जीरे के साथ पीसे और पावभर दूध डालकर छान ले। पश्चात् उसमें दो तोला शक्कर मिलाकर पिये।

मूत्रकृच्छ्र पर—छोंकर के फूलों को गाय के दूध में पीसकर उसमें पिसा हुआ जीरा और खाँड मिलाकर पीना चाहिए।

मूत्र के साथ धातु गिरने पर—छोंकर के फूल के रस में दूध मिलाकर तपाये और उसमें जीरा तथा शक्कर डालकर पिये।

गरमी पर—छोंकर के फूल या पत्तों के रस में जीरा और शक्कर डालकर चौदह दिन तक पीना चाहिए।

सर्प-दंश पर—छोंकर के पत्तों का रस पिलाना चाहिए।

फोड़े को पकाने के लिए—छोंकर की सूखी फली को पानी में घिसकर लेप करना चाहिए।

लौंग

लौंग के वृक्ष बहुत बड़े होते हैं। इसे संस्कृत, बंगला, गुजराती, मराठी और कर्नाटकी में लवंग, हिन्दी में लौंग, फारसी में दरख्ते मेहक, अरबी मे मिखकर्कन फूल, तैलिङ्गी में लवंगाल, लैटिन में क़ारेयाफाइलसएरो मटिकस् और अंग्रेजी में क्लोव्ज कहते हैं। आठ-नौ वर्ष के पश्चात् इसमे फल आने लगते हैं। लौंग सुगंधित पदार्थों और मसालों में डाली जाती है। इसका तैल निकाला जाता है।

लौंग का वृक्ष—लघु, कड़वा, चक्षुष्य, रुचिकर, तीक्ष्ण, फलने के समय मधुर, उष्ण, पाचक, अग्निदीपक, स्निग्ध, हृद्य, वृष्य और विषद होता है; तथा वायु, पित्त, कफ, आँव, क्षय, ऊर्ध्व-रस, शूल, आनाहवायु, श्वास, हिचकी, वमन, विष, चतक्षय, तृष्णा, पीनस, रक्तदोष और आध्मानवायु का नाश करता है।

लौंग—गरम, पाचक और कफ-नाशक होती है; तथा आँव तृषा, पेट-दर्द, वमन और वायु को दूर करती है।

उपयोग—

जुकाम पर—लौंग का काढ़ा पीना चाहिए।

मूर्च्छा पर—लौंग को घिसकर अंजन करना चाहिए।

रतौंधी पर—लौंग को बकरी के मूत्र में घिसकर अंजन करना चाहिए।

दाँत दुखने पर—लौंग के अर्क में रुई भिगोकर दाँत पर रखना चाहिए।

खाँसी पर—लौंग, काली मिर्च और वहेड़े सम भाग लेकर कूटे और इन तीनों के बराबर सफेद कत्था या खैर की छाल कूट कर मिलाये। पश्चात् बबूल की छाल के काढ़े में उसकी तीन-तीन माशा की एक-एक गोली बनाये। इसे दिन में दो-तीन बार खाने से खाँसी दूर होती है।

प्रमेह पर—लौंग, जायफल और पीपल को आधा-आधा तोला लेकर उसमें दो तोला काली मिर्च और १६ तोला सोंठ मिलाकर चूर्ण करे; पश्चात् चूर्ण में उसी के बराबर शक्कर डाल कर खाये। इससे खाँसी, ज्वर, अरुचि, प्रमेह, गुल्म, श्वास, अग्निमांद्य और संग्रहणी का नाश होता है।

खाँसी, ज्वर, अरुचि, प्रमेह, संग्रहणी और गुल्म पर—लौंग, जायफल और पीपल एक भाग, वहेड़े तीन भाग, काली मिर्च दो भाग और सोंठ सोलह भाग डालकर चूर्ण करे। पश्चात उसमें उतनी ही शक्कर डालकर छः माशा तक सेवन करे।

सूखी या तर खाँसी पर—सुबह-शाम दो-तीन लौंग मुख में रखकर रस चूसते रहना चाहिए।

दमे पर—मुख में लगातार लौंग रखना चाहिए। बम्बई के एक सुप्रसिद्ध डाक्टर लगातार मुख में लौंग रखने से चार महीने में दमे से मुक्त हुए थे।

भूख लगने के लिए—आधा माशा लौंग का चूर्ण एक माशा शहद के साथ रोज सुबह चाटना चाहिए। थोड़े ही दिनों में भूख अच्छी तरह लगने लगती है।

गर्भिणी की उल्टी पर—एक माशा लौंग का चूर्ण अनार के रस के साथ देना चाहिए।

सख़्त ज्वर में ख़ूब प्यास लगने पर—सेर भर पानी में चार लौंगें डालकर पानी को आधा जलाये और सख्त ज्वर में प्यास लगने पर पिलाये। इससे प्यास मिटती है और अन्य दोष नहीं बढ़ने पाते।

पेट में दर्द होने और लगातार सफ़ेद दस्त होने पर—लौंग का चूर्ण शहद के साथ चाटना चाहिए।

खैर

खैर* का वृक्ष वनों में उगता है। सह्याद्रि के निकटवर्त्ती वनों में यह बहुत होता है। इसे संस्कृत में खदिर, हिन्दी, मराठी और कर्नाटकी में खैर, गुजराती मे खेर, तैलिङ्गी में खासु या खदिरमु, मलयलम में करनिलि, तामील मे बोड़ाले और लैटिन में एकेशिया केटेच्यु कहते हैं। इसमें छोटे-छोटे काँटे भी लगते हैं। इसके पत्ते छोंकर के जैसे होते हैं। इसकी लकड़ी बहुत-सी चीजें

---

* खैर की दो जातियाँ होती है; एक सफेद और दूसरी लाल। इसकी लकडी यज्ञ के काम में भी आती हैं। मदनपाल-निघण्टु में लिखा है कि इसकी तेज रंग की लकड़ी और फली को उबाल कर एक प्रकार का सत्व निकाला जाता है। उसी को कत्था कहते हैं। चिरायते को पानी में गलाए। पश्चात् उस पानी में १०-१२ ग्रेन कत्था डालकर पुराने ज्वर की बीमारी में देने से शीघ्र लाभ होता है। रुधिर के विकार से दाँत से लहू गिरने पर कत्थे को लगाना और खाना चाहिए।

डाक्टर एम० रोसना का कथन है कि कुष्ठ और गहरे घाव पर कत्थे को बहुत बारीक पीसकर दूसरी औषधियों के साथ मरहम में मिलाकर लगाने से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

चरक में लिखा है कि खैर की छाल कुष्ठनाशक होती है।

बनाने के लिए उपयोगी होती है। इसके वृक्ष से कत्था उत्पन्न होता है। इसकी लकड़ी बहुत वर्षों तक पानी में रहने पर भी खराब नहीं होती। इसकी लकड़ी के अन्दर का भाग बहुत कठोर होता है। बढ़ई और लोहार लोग इसे हथियारों की मूठ बनाने के काम में लाते हैं। कोल्हू भी इसी का बनाया जाता है।

मकान आदि बनाते समय कत्थे का पानी या खैर की गीली और हरी लकड़ी के टुकड़े करके छाल-सहित उबाल कर उसका अर्क चूने में मिला देने से मकान इतना मज़बूत हो जाता है कि एकाएक तोप के गोले से भी नहीं उड़ सकता।

खैर का वृक्ष—पाचक, शीतल, कड़वा, फीका, रक्तशोधक और दाँत के लिए हितावह होता है; तथा कफ़, पित्त, कृमि, व्रण, कुष्ठ, ज्वर, सूजन, ऊर्ध्वरस, मेद, प्रमेह, आँव, अरुचि, पाण्डु और रक्तदोष का नाश करता है।

खैर का गोंद—मधुर, बलकर और धातुवर्द्धक होता है।

सुश्रुत में भी लिखा है कि खैर की छाल मेदशोषक और कुष्ठनाशक होती है।

इन ग्रन्थों में कत्थे को स्तंभक माना गया है। खैर के पत्तों का काढ़ा बनाकर देने से रुधिर शुद्ध और मूत्र-स्थान के रोगों का नाश होता है। भारतवर्ष के लोग कत्थे को ठण्ढा, ग्राही और पाचक मानते हैं, तथा गले के भीतर के रोग, मुख की गरमी, खाँसी, दस्त और शूल के रोगों में बहुत उपयोगी समझते हैं। पुराने घाव, फोड़े और गाँठ पर इसको पीसकर लेप करते हैं। मुसलमानी ग्रन्थों में भी इसे इतना ही लाभदायक माना गया है। खैर की पुरानी लकड़ी के अन्दर से छोटे-छोटे टुकड़े निकलते हैं। उसे खैर का सत्त्व कहते हैं। खैर का सत्त्व मीठा और कसैला होता है। देशी औषधियों में इसे हृदय-रोग के लिए बहुत गुणकारी माना गया है। यह कफ़ का नाश करता है।

सफेद खैर से निकला हुआ कत्था सबसे उत्तम माना जाता है।

खैर का सत्त्व—ग्रण्य और विशद होता है; तथा रक्तदोष, कफ और मुखरोग का नाश करता है।

उपयोग—

कुष्ठ रोग पर—खैर की जड़, पत्ते, फूल, फल और छाल का काढ़ा करके, उसका स्नान, पान, भोजन और लेप करना चाहिए। इससे सब प्रकार के कुष्ठ का नाश होता है। कुष्ठ पर खैर का कत्था घिसकर लगाने से भी लाभ होता है।

घोड़े के अपस्मार पर—रोज पाँच तोला कत्था खिलाना चाहिए।

थक जाने पर—खैर की छाल के रस में हींग डालकर पीना चाहिए।

प्रमेह पर—चार पैसे भर खैर के अंकुर और एक पैसे भर जीरे को पीसे और गाय के दूध में मिलाकर छान ले। पश्चात् उसमें शक्कर डालकर दो बार पिये।

खाँसी पर—खैर के भीतर की छाल चार भाग, बहेड़े दो भाग और लौंग एक भाग लेकर पीस ले। पश्चात् शहद के साथ सेवन करे।

कान बहने पर—सफेद कत्थे का बहुत महीन चूर्ण करके गरम पानी मे मिलाये और उसकी पिचकारी की-सी धार बनाकर कान में डाले। पश्चात् कान को स्वच्छ जल से धो डाले।

पित्त-विकार पर—एक तोला खैर के फूल और तीन माशा सोंठ को बारीक पीसकर गोली बनाये। पश्चात् गोली को गाय के ताजे दूध मे मिलाकर उसका प्रति दिन प्रातःकाल तीन दिन तक सेवन करे।

श्वेतकुष्ठ पर—खैर की छाल और आँवले के काढ़े में बावची का चूर्ण डालकर पिलाने से श्वेतकुष्ठ दूर हो जाता है।

भगंदर पर—खैर की छाल और त्रिफले का काढ़ा बनाकर उसमे भैंस का घी और बायबिडंग का चूर्ण मिलाकर देना चाहिए।

सोमल के विष पर—गाय के दूध में कत्था घिसकर देना चाहिए।

दाँत या दाढ़ से खून निकलने और मुँह आने पर—खैर की छाल के काढ़े से कुल्ले करना चाहिए। सोलह तोला खैर की छाल को कूटे और उसमें दो सेर पानी डालकर पकाये। जब सेरभर पानी शेष रह जाय, तब उसे उतारकर कुल्ले करने के काम में लाये। दिन में कम-से-कम तीन बार इस पानी से कुल्ले करना चाहिए और प्रत्येक बार एक सेर पानी कुल्ले करने के लिए लेना चाहिए।

दस्त लगने पर—दो तोला खैर की छाल का आधा सेर पानी में अष्टमांश काढ़ा बनाकर शहद के साथ पीना चाहिए। खाँसी के लिए भी यह काढ़ा उपयोगी है।

सीताफल

सीताफल का वृक्ष भारतवर्ष मे सब जगह होता है। इसके पत्ते रामफल के जैसे होते हैं। इसमें चार-पाँच वर्ष के बाद फल आने लगते हैं। सीताफल आश्विन और कार्त्तिक मास में पकते हैं। इसके बीज काले होते हैं। इसे संस्कृत मे सीताफल, हिन्दी मे सीताफल या शरीफा, गुजराती और मराठी में सीताफल, बगला

में आता या आथ, तैलिङ्गी में सीताफल, फारसी में काज, लैटिन में एनेना स्केमोसा और अरबी तथा अंग्रेज़ी मे कस्टर्डएपल कहते हैं। यह इतना ठण्डा होता है कि यदि इसे सीताफल की अपेक्षा "शीतफल" कहा जाए तो अनुचित न होगा।

सीताफल का वृक्ष—मधुर, शीतल, हृद्य, शक्तिवर्द्धक, स्वादिष्ट, कफ़कर, वातकर, पौष्टिक और पित्त-नाशक होता है।

उपयोग—

मूत्राघात पर—सीताफल की जड़ को घिसकर पिलाना चाहिए।

दाह-शमन के लिए—पके हुए सीताफल को तोड़कर रात के समय ओस मे रखे और प्रातःकाल खाए।

सिर की जुएँ मारने के लिए—सीताफल के बीजों को बारीक पीसकर सिर में लगाए और रात को सोते समय एक मोटा कपड़ा सिर पर कस कर बाँध ले; परन्तु यह औषधि आँखों में न लगने पाए; क्योंकि इससे आँखें ख़राब हो जाती हैं।

पिश्ता

पिश्ते का वृक्ष बहुत बड़ा होता है। यह पर्शिया, बुखारा और अफ़ग़ानिस्तान के वनों में उत्पन्न होता है। इसके फलों के ऊपर पतला और कड़ा छिलका होता है। उसे फोड़ने पर अन्दर से हरी-हरी गरी निकलती है। गरी पर लाल और छोटी बूँदें भी होती हैं। इसी गरी को संस्कृत मे निकोचक, हिन्दी, फ़ारसी

और मराठी में पिश्ता, गुजराती में पिस्ताँ, बङ्गला में पिस्ता, अरबी में फिस्तक, लैटिन में पिस्टेशियाव्हेरा, और अंग्रेजी में पिस्टेशिओ नट कहते हैं। पिश्ता छिलके-सहित बोने पर उगता है। यह भी मेवा होता है। यह पौष्टिक होता है। इसका तैल सिर पर लगाने से पित्त का शमन करता है। इसे रेशम को लाल रँगने के उपयोग में भी लाया जाता है।

पिश्ते का वृक्ष—गुरु, स्निग्ध, उष्ण, वृष्य, स्वादिष्ट, मीठा, धातुवर्द्धक, पित्तकर, रक्त को स्वच्छ करनेवाला, पौष्टिक, भेदक, कड़वा और सारक होता है; तथा कफ, वायु, गुल्म और त्रिदोष का नाश करता है।

उपयोग—

पुष्टि के लिए—पिश्ता, बादाम, चिरौंजी और खसखस को बारीक पीसे और दूध में उसकी खीर बनाकर गाय के घी और शक्कर के साथ खाये।

मीठा नीबू

यह नीबू की ही जाति का होता है; परन्तु उससे कुछ बड़ा और नारंगी के बराबर होता है। इसे संस्कृत मे मधुजंबीर, हिन्दी में मीठा नीबू, गुजराती में मीठुँ लींबु या मोसंबी, बंगला में कमलालेबु, मराठी में साकरलींबु, कर्नाटकी मे किचिले या सक्करेगंची, फारसी में लिमनेशीरो, अरबी में लीमु नेहुलु और अंग्रेजी में स्वीटलेमन् कहते हैं। यह मीठा होता है। इसका वृक्ष बहुत ऊँचा होता है। उसमें काँटे भी होते हैं। मीठे नीबू का रंग

पक जाने पर लाल हो जाता है। यह गरमी के दिनों में बहुत अच्छा लगता है।

मीठे नीबू का वृक्ष—मधुर, स्वादिष्ट, शीतल, तर्पण, तृष्णा, वृष्य, पुष्टिकर, जड़, ग्राही, और धातुवर्द्धक होता है; तथा वायु, पित्त, कफ, वमन, शोष, विषरोग, रक्तरोग, अरुचि और भ्रम का नाश करता है।

उपयोग—

कै पर—सूखे हुए मीठे नीबू की राख शहद के साथ देनी चाहिए।

पपीता

यह वृक्ष भारत मे सभी जगह उत्पन्न होता है। संस्कृत में इसे मधुकर्कटी या वातकुंभफल, हिन्दी में पपीता या अरण्डककड़ी, गुजराती में पोपैया, मराठी में पपई, बंगला में वाताविलेबु, तेलिङ्गी में बोप्पई, तामील में पप्पाय, मलयलम में पप्पायं, कर्नाटकी में पोप्पलसु, लैटिन में कारिकापापैया और अंग्रेजी मे पपाव कहते हैं। इसका वृक्ष एरण्ड की तरह होता है। इसके फलों को "पपीता" कहते हैं। कच्चे पपीते का शाक बनाया जाता है। पका पपीता मीठा होता है। परन्तु अधिक खाने से वह शरीर में विकृति उत्पन्न करता है। वह वातकर, घाव को भरनेवाला तथा प्रमेह आदि व्याधियों को उत्पन्न करता है। इसके पत्तों के डंठल पोले होते हैं और पत्ते एरण्ड के पत्तों के जैसे होते हैं।

पपीते का वृक्ष—ग्राही होता है ; तथा कफ और वायु को कुपित करता है।

पका पपीता—मधुर, जड़, रुचिकर, पित्तनाशक और गुरु होता है।

उपयोग—

दाद आदि पर—कच्चे पपीते को चीर कर उसका रस लगाना चाहिए।

मूलव्याधि पर—तीन दिन तक कच्चे पपीते का रस लगाना चाहिए।

प्लीहा पर—पपीते की पुल्टिस बाँधना चाहिए और दिन मे तीन बार एक चमचे भर पपीते के रस में शक्कर डालकर पीना चाहिए।

कृमि पर—एक चमचे भर पपीते के रस में शक्कर डालकर पीना चाहिए। यदि बालक को देना हो, तो दो बूँदें बहुत होती है।

ऋतु साफ़ आने के लिए—पपीता खाना चाहिए।

भूख बढ़ाने के लिए—रोज़ नियमित रूप से थोड़ा-थोड़ा पपीता खाना चाहिए। अन्न पचाने के लिए भोजन के बाद पपीता खाना चाहिए।

कृमि पर—दो चमचा कच्चे पपीते के दूध (रस) में दो चमचा शहद मिलाकर घोंटे। बहुत देर तक घोंटने के बाद जब वे एकदम मिल जायँ, तब उनसे दुगुना अच्छी तरह खौला हुआ पानी मिलाकर ठण्ढा होने पर पिलाये। दो-तीन दिन तक देने से कृमि निकल जाते हैं। यह प्रमाण पुरुषों के लिए है ; यदि दस वर्ष के लड़के को यह औषधि देनी हो, तो इससे आधे प्रमाण में और छोटे बच्चों को देनी हो, तो इससे भी आधे प्रमाण में देनी चाहिए।

करौंदा

करौंदे का वृक्ष पहाड़ी देशों में अधिक होता है। इसे संस्कृत में करमर्द, हिन्दी में करौंदा, गुजराती में करमदा, बंगला में करमचा, मराठी में करवन्द, कर्नाटकी में करजिगे, तैलिङ्गी में वाका या पारिकचेट्टु, लैटिन में केरिसा कोरंडास, और अंग्रेजी में जास्मिनफ्लावर्डकेरिसा कहते हैं। इसमें काँटे होते हैं। इसके फल गोल, छोटे और हरे रंग के होते हैं। पकने पर काले हो जाते हैं। कच्चे करौंदे का अचार बहुत अच्छा होता है। इसकी लकड़ी जलाने के काम में आती है। एक विलायती करौंदा भी होता है, जो भारतीय बगीचों मे पाया जाता है। इसका फल कुछ बड़ा होता है और देखने में सुन्दर भी। इस पर कुछ सुर्खी-सी होती है। इसीको अचार और चटनी के काम में अधिक लाया जाता है।

कच्चे करौंदे—कड़वे, अग्निदीपक, गुरु, पित्तकर, ग्राही खट्टे, उष्ण और रुचिकर होते हैं; तथा रक्तपित्त और कफ को बढ़ाने-वाले और तृषा का नाश करते हैं। इसकी एक कड़वी जाति भी होती है।

पक्के करौंदे—मधुर, रुचिकर, लघु और शीतल होते हैं, तथा पित्त, रक्तपित्त, त्रिदोष, विष और वायु का नाश करते हैं।

उपयोग—

विष-परीक्षा के लिए—करौदे की जड़ को पानी में घिस-कर पिलाना चाहिए; यदि विष चढ़ा होगा, तो क़ै न होगी।

खाज पर—कड़वे करौदे की जड़ को पानी या तिल के तेल में घिसकर लगाना चाहिए।

घाव के कीड़े मारने के लिए—कड़वे करौंदे की जड़ को चन्दन की तरह पानी में घिसकर लेप करना और थोड़ा-सा पतला करके घाव में डालना चाहिए।

सर्प-दंश पर—कड़वे करौंदे की जड़ पानी में घिसकर पिलाना चाहिए।

विषम ज्वर पर—कड़वे करौंदे की जड़ को पानी में घिसकर शरीर पर लेप करना चाहिए।

शोफोदर पर—कड़वे करौंदे की जड़ को गोमूत्र में घिसकर पिलाना चाहिए।

शीसम

शीसम का वृक्ष बहुत बड़ा होता है। यह सह्याद्रि पर्वत पर और मालाबार प्रान्त में बहुत होता है। इसे संस्कृत में शिशपा, हिन्दी, गुजराती और मराठी में शीसम, बंगला में शीशु, कर्नाटकी में करीयइञ्बड़ी या बीटीमारा, तामील में तुक्कं, मलयलम में विट्टी, तैलिङ्गी में जिट्टेगुचेट्ठु, अरबी में सासम, लैटिन में डालबर्जियालाट्रोफोलिया और अंग्रेजी में सीसू ट्री कहते हैं। इसकी लकड़ी काली और मजबूत होती है। उस पर खुदाई का काम बहुत अच्छा होता है। उसमें कीड़े नहीं लगते। यह संदूक, पलंग, कुरसी आदि कई चीजें बनाने के काम में आती है।

सफ़ेद शीसम—कड़वा, ठण्ढा, वर्णकर, शक्तिवर्द्धक और रुचिकर होता है; तथा पित्त, दाह, सूजन और विसर्प का नाश करता है।

पीला शीसम—कड़वा, शीतवीर्य, वर्णकर, शक्तिवर्द्धक, उष्ण और रुचिकर होता है ; तथा श्रम, वायु, पित्त, ज्वर, क़ै, सूजन, हिचकी, विसर्प और दाह का नाश करता है।

काला शीसम—अग्निदीपक, कड़वा, तीखा, उष्ण और फीका होता है ; तथा कफ, वायु, सूजन, अतिसार, कुष्ठ, मित्रकुष्ठ, मेद, कृमि. वस्तिरोग, वमन, गर्भदोष, त्रिदोष, प्रमेह, पीनस, व्रण, रक्तदोष और अजीर्ण का नाश करता है।

उपयोग—

प्रमेह पर—चार पैसे भर शीसम के पत्तों के रस में पिसा हुआ जीरा मिलाकर पिलाना चाहिए।

शिकाकाई

शिकाकाई का वृक्ष बहुत बड़ा होता है। इसे संस्कृत में श्रीवल्ली, हिन्दी और मराठी में शिकाकाई, गुजराती में शिकेकाई, कर्नाटकी में शिंगीकाई या शिगेटवल्ली, तामील में कियाक्के, तेलिङ्गी में चिकाया, मलयलम में चिकाकाई और लैटिन में एकेशिया कोनसिना कहते हैं। इसके पत्ते छोटे होते हैं। इसमें चपटी और सात-आठ इञ्च लम्बी फलियाँ लगती हैं। उन्हें "शिकाकाई" कहते हैं। यह अरीठे के ही समान शरीर को साफ़ करती है। इसे सिर धोने के काम में भी लिया जाता है। पिसी हुई शिकाकाई को पानी में उबालकर शरीर पर लगाने से शरीर साफ़ हो जाता है।

शिकाकाई का वृक्ष—तीखा और खट्टा होता है ; तथा वायु, कफ और सूजन का नाश करता है।

शिकाकाई की फलियाँ—अति खट्टी, रुचिकर और तैल की चिकनाहट मिटानेवाली होती हैं।

उपयोग—

पित्त, मलशुद्धि और पेट के गुल्म पर—शिकाकाई का पानी पिलाना चाहिए।

ढोर के विष खा लेने पर—शिकाकाई को बीज-सहित मट्ठे में पीसकर पिलाना चाहिए।

बिच्छू के विष पर—शिकाकाई पान में डालकर खाना चाहिए।

पांडुरोग, सूजन और पेट में किसी प्रकार का विष चला जाने पर—एक तोला शिकाकाई का आधा सेर पानी में अष्टमांश काढ़ा बनाकर और छानकर पिलाना चाहिए। उल्टी होकर सब प्रकार का विष उतर जाता है। इससे कफ़ भी पतला होकर निकल जाता है। सूजन वाले को पिलाने से दस्त साफ़ होकर सूजन उतर जाती है। पेट के वायु और गुल्म के लिए भी यह लाभदायक है। पांडुरोग पर इसे पीने और दही-भात खाकर रहने से वह अच्छा होता है।

चन्दन

चंन्दन के वृत्त बहुत बड़े होते हैं। इसे संस्कृत, हिन्दी, और मराठी में चन्दन, गुजराती में सुखड़, फ़ारसी में संदल, अरबी में संदलेअबायद, कर्नाटकी में श्रीगंधमारा, तैलिङ्गी में चन्दनमु, तामील और मलयलम में चन्दनमारं, लैटिन में सेंटेलम्

आलबम् और अंग्रेज़ी में सेंडल कहते हैं। यह वृक्ष मलाबार प्रान्त की ओर बहुत होता है। इसके पत्ते छोटे और नीम के पत्तों के जैसे होते है। इसमें छोटे और काले रंग के फल लगते हैं। इसकी लकड़ी सुगंधित होती है। जब यह वृक्ष पुराना हो जाता है, तो इसे काटकर इसके टुकड़े ज़मीन में गाड़ देते हैं। पश्चात् बहुत दिनों बाद निकाल कर साफ़ करते हैं। इसकी संदूक, पंखे आदि कई चीजें बनाई जाती हैं। प्रत्येक इत्र इसके तैल के पुट से तैयार होता है।

सफ़ेद चन्दन—कड़वा तीखा, शीतल, फीका, वृष्य, कांति-वर्द्धक, कामोत्तेजक, सुरभित, रुक्ष, आनन्दप्रद, लघु और हृदय के लिए हितकारी होता है; तथा पित्त, भ्रम, कै, ज्वर, कृमि, तृषा, संताप, मुखरोग, दाह, श्रम, शोष, विष, कफ़, और रक्तदोष का नाश करता है। जो चंदन गाँठ और छेदवाला, जड़, श्वेतवर्ण, काटने पर अन्दर से लाल, घिसने पर पीला, स्वाद में कड़वा, अति सुगंधित और शीतल होता है; वही सबसे उत्तम होता है। जिस चंदन में ये लक्षण नहीं होते, वह ख़राब होता है।

पीला चन्दन—शीतल, कड़वा और कान्तिवर्द्धक होता है; तथा कफ़, कोढ़, कंडू, विशूचिका, दद्रुकृमि, रक्तपित्त, विष, पित्त, तृषा, दाह और ज्वर का नाश करता है।

केसरी चन्दन—कड़वा और शीतल होता है; तथा पित्त, श्रम, शोष और श्वास का नाश करता है।

गुलाबी चन्दन—शीतल और कड़वा होता है; तथा कफ़, वायु, पित्त, कुष्ठ, कंडू, व्रण और रक्तदोष का नाश करता है।

किंचित् पीला चन्दन—शीतल और कड़वा होता है;

तथा पित्त, कफ, वायु, श्रम, छाले, खाज, दाह, कुष्ठ, तृषा, अपस्मार और दाद का नाश करता है।

सूखा हुआ चन्दन—कड़वा, सुगंधित और शीतल होता है ; तथा मूत्रकृच्छ्र, पित्त, रक्तविकार और दाह का नाश करता है। गीले चंदन को काटकर सुखा लेने से उसमें सुगंध कम आती है। लाल चन्दन की लकड़ी ग्राही और पौष्टिक होती है। सूजन में ठण्ढक लाने के लिए और मस्तक दुखने पर यह सफेद चन्दन से भी अधिक लाभदायक होती है।

उपयोग—

दाह पर—चन्दन और कपूर को घिसकर शरीर पर लेप करना चाहिए।

खुजली पर—चन्दन के तैल को नीबू के रस में मिलाकर लेप करना चाहिए।

मूत्रकृच्छ्र और रक्तातिसार पर—चावल के पानी में चन्दन को घिसकर शहद और शक्कर के साथ पिलाना चाहिए।

बच्चों के शरीर पर गर्मी से फुंसियाँ उठने पर—चन्दन और गुलाबजल में पिसे हुए धनिये और खस का लेप करना चाहिये। अकेला चन्दन भी लाभ करता है।

गरमी पर—चावल के पानी में सफेद चन्दन घिसकर खाँड के साथ देना चाहिए।

हिचकी पर—स्त्री के दूध में चन्दन को घिसकर नस्य करना चाहिए।

प्रमेह और प्रदर पर—एक तोला वंशलोचन और एक तोला इलायची के दानों को महीन कूट कर वस्त्र से छान ले।

पश्चात् उसे चन्दन के तैल में मिलाकर सुपारी के बराबर गोलियाँ बनाये। सुबह-शाम आधा तोला शक्कर को चार तोला ठण्डे पानी में मिलाकर एक-एक गोली के साथ सेवन करना चाहिए। इसका पथ्य गेहूँ की रोटी, अरहर की दाल, घी और शक्कर है।

सख़्त ज्वर में नींद न आने और सिर दर्द करने पर—कपूर, केसर और चन्दन घिसकर सिर पर लगाना चाहिए।

शरीर पर किसी जगह सूजन आने से जलन होने पर—चन्दन को घिसकर लेप करना चाहिए। कुछ दिनों में जलन मिटकर सूजन उतर जाती है।

पित्त से आये हुए ज्वर में—एक तोला चन्दन का आधा सेर पानी में अष्टमांश काढ़ा बनाकर उसमें थोड़ी मिश्री डालकर पिलाने से पित्तज्वर मे होनेवाली पित्तकी उल्टी बन्द होती है और धीरे-धीरे ज्वर भी उतर जाता है।

हृदय की कमजोरी पर—एक माशा घिसे हुए चन्दन में चुटकी-भर शक्कर और बूँद-भर शहद डालकर देने से हृदय में शक्ति आती है।

पेशाब की जलन और लाल रंग का पेशाब होने पर—एक पैसे भर चन्दन घिसकर उसमें नौ टंक दूध और दो तोला मिश्री मिलाकर पिलाना चाहिए।

प्रमेह पर—एक तोला दूध में चन्दन के तैल की पाँच-छः बूँदें और चुटकी-भर शक्कर डालकर तीन-तीन घण्टे के अन्तर पर दिन मे पाँच बार देना चाहिए। एक दिन में लाभ मालूम होता है। अथवा एक तोला शीतलचीनी (कंकोल) और एक तोला वंशलोचन के कपड़छन किये हुए चूर्ण को चन्दन के तैल में

भिगोकर दो-दो घण्टे के अन्तर पर चार-चार रत्ती के प्रमाण में देना चाहिए। दो रोज़ में सब प्रकार का प्रमेह दूर होता है।

ठण्ढक के लिए चन्दन का शरबत—चन्दन के दस तोला महीन बूरे को अस्सी तोला उत्तम सुगन्धित गुलाबजल में भिगो दे। चौबीस घण्टे तक भीगने के बाद वह जल मन्दाग्नि पर चढ़ाये। खौलने पर नीचे उतार कर छाने और अस्सी तोला मिश्री डालकर उसका पाक बनाये। बाद मे उसे बोतल में भरकर रख ले। यह चन्दन का शरबत सुबह-शाम एक-एक तोला लेने से गरमी दूर होती है।

सेमल

सेमल का वृक्ष बहुत बड़ा होता है। इस पर काँटे होते हैं। इसे संस्कृत में शाल्मली, हिन्दी में सेमल, गुजराती में शिमलो, मराठी मे सावरी या काँटे साँवर, और कर्नाटकी मे साँवरीकंद या बूरघगड्डे कहते हैं। यह दो-तीन सौ वर्षों तक रहता है। इसकी दो जातियाँ होती हैं—सफेद और लाल। इसमें कार्तिक और मार्गशीर्ष में फूल और चैत्र में फल आते हैं। जब वे कच्चे होते हैं, तभी उन्हें सुखाकर रुई निकाल ली जाती है। इसकी रुई बहुत मुलायम होती है। धनी लोग इसके गद्दी-तकिये बनवाते हैं। इसे धुनने में ज्यादा मेहनत नहीं पड़ती। इसकी लकड़ी बहुत चिकनी और हलकी होती है। इसकी नावें बनाई जाती हैं। मृदंग भी बनाये जाते हैं। इसमें से लाल रंग का गोंद भी निकलता

है। सेमल के फूल के शाक का सेंधे नमक के साथ घी में तलकर खाने से कष्टसाध्य प्रदर, रक्तपित्त और कफ का नाश हो जाता है।

सेमल का वृक्ष—शीतल, मधुर, बलवर्द्धक, वृष्य, फीका, लघु, स्निग्ध, शुक्रकर, रसायन और धातुवर्द्धक होता है; तथा पित्त, रक्तदोष और रक्तपित्त का नाश करता है।

सेमल की छाल का रस—ग्राही, फीका और कफनाशक होता है। इसके अन्य गुण वृक्ष के जैसे हैं।

सेमल के फूल—स्वादिष्ट, कड़वे, गुरु, रुक्ष, शीतल, वातकर और ग्राही होते हैं; तथा कफ, पित्त और रक्तदोष का नाश करते हैं।

सेमल का कन्द—मधुर और शीतल होता है; तथा मलस्तंभ, पित्त, दाह, शोक और संताप का नाश करता है।

सेमल का सार—कड़वा, तीखा, भेदक और उष्ण होता है; तथा कफ, वायु, प्लीहा, यकृत, गुल्म, विषदोष, भूतबाधा, मलस्तंभ, रक्तदोष, मेद और शूल का नाश करता है।

सेमल का गोंद—ठण्डा, ग्राही, स्निग्ध, वृष्य, पुष्टिकर, धातुवर्द्धक, फीका, वर्णकर, बुद्धिप्रद, वयःस्थापक, गुरु, स्वादिष्ट, कफकर, गर्भस्थापक, रसायन और वातनाशक होता है; तथा प्रवाहिका, अतिसार, आमपित्त, रक्तदोष और दाह का नाश करता है।

उपयोग—

प्रदर पर—सेमल की छाल का चूर्ण दूध में पिलाना चाहिए। अथवा सेमल के काँटों का चूर्ण दूध और शक्कर के साथ पिलाना चाहिए।

मूत्रकृच्छ्र पर—सेमल की छाल का चूर्ण शक्कर के साथ देना चाहिए।

बिच्छू के विष पर—पुष्य नक्षत्र और रविवार के दिन, अपनी छाया वृक्ष पर न पड़े, इस प्रकार जा कर सेमल के उत्तर की ओर की जड़ लाये। पश्चात् जहाँ तक बिच्छू का विष चढ़ा हो, उस स्थान से लेकर नीचे तक तीन बार फेरे और थोड़ी-सी घिसकर दंश पर लेप करे।

गर्मी के विकार पर—साधारण सफेद सेमल के कन्द को सुखाकर उसका चूर्ण करके रक्खे और रोज सफेद सेमल की छाल को दूध मे घिसकर उसमे वही तैयार किया हुआ छः माशा चूर्ण और एक तोला शक्कर मिलाकर पिलाना चाहिए। यह औषधि दिन में दो बार दी जाती है। इसे लगभग २१ दिन तक सेवन करना और परहेज से रहना चाहिए।

धातुपुष्टि के लिए—आधा तोला सेमल के गोंद का चूर्ण, चार तोला शक्कर, और २० तोला गाय के दूध को मिलाकर पिलाना चाहिए। अथवा काँटेवाले सेमल की चार तोला हरी जड़ को कूटकर रात के समय पावभर दूध मे रक्खे और सुबह छान-कर एक तोला शक्कर के साथ पिये। इस औषधि को लगभग सात-आठ दिन तक सेवन करना चाहिए।

शरीर की शक्ति बढ़ाने के लिए—सेमल की जड़ की छाल का चूर्ण शहद और शक्कर के साथ खाना चाहिए।

आग से जले घाव पर—सेमल की रुई को पानी में पीसकर लेप करना चाहिए।

वीर्य-पतन पर—सफेद सेमल के कन्द का चूर्ण करके शक्कर के साथ खिलाना चाहिए।

बद पकाने के लिए—सेमल के हरे कन्द को धोकर छाल निकाल दे और उसे कूटकर गाढ़ा रस निकाले। इस रस को बद पर लगाने से जलन शान्त होती और बद शीघ्र पक जाती है।

प्रमेह पर—सफेद सेमल के कंद को छीलकर उसके महीन टुकड़े करे और सुखाकर पीस ले। पश्चात् आधा तोला चूर्ण को रोज सुबह-शाम एक तोला घी और छः माशा जायफल के चूर्ण के साथ सेवन करे। यदि सेमल का कन्द न मिले, तो छाल का चूर्ण काम में लाये।

जीर्णातिसार पर—सेमल के गोंद का ३-४ माशा चूर्ण शक्कर के साथ देना चाहिए।

अतिसार पर—सेमल की छाल को घिसकर पिलाना चाहिए। अथवा सेमल की छाल का रस पिलाना चाहिए। इसकी जड़ को घिसकर पिलाने से भी लाभ होता है।

मूत्र के साथ धातु गिरने पर—सेमल की छाल को गाय के दूध में घिसकर पिसे हुए जीरे और खाँड के साथ देना चाहिए। इस औषधि को लगभग चौदह दिन तक सेवन करना चाहिए।

हृद्रोग पर—सेमल की छाल को दूध में उबाल कर एक महीने तक खाने से वह हृदय को असीम बल प्रदान करती और वात को नष्ट करती है। जो मनुष्य इस औषधि को एक वर्ष तक खाता है, वह एक सौ वर्ष तक जीवित रहता है।

शीतला न निकलने के लिए—सेमल का रस और सफेद चन्दन अथवा अडूसे का रस और मुलहठी या जई का रस और

मुलहठी ; इन तीनों में से एक औषधि का सेवन करने से कभी शीतला नहीं निकलती।

सँहजन

सँहजन के वृक्ष बहुत बड़े होते हैं। इसकी लकड़ी मकान बनाने के काम में नहीं आती। इसके पत्ते छोटे होते हैं। इसके नरम पत्तों का, फूल का और फलियों का शाक बनाया जाता है। इसका नाम संस्कृत मे शिग्रु, हिन्दी में सँहजन, मराठी में शेवगा, गुजराती में सरगवो, कनाड़ी में नुग्गिय, अंग्रेजी में होर्सरेडीस ट्री, लैटिन मे मोरीगाप्टेरीपोस्पेर्मा, तैलिङ्गी में मुलङ्गा, तामिल मे मोरंग, और मलयलम में मुरिना है। सँहजन वातनाशक और उष्ण होता है। इसकी एक जाति जंगल में होती है, जिसे जंगली सँहजन कहते हैं।

सँहजन का वृक्ष—तीक्ष्ण, उष्ण, रुचिकर, अग्निदीपक, पाचक, सारक, लघु, हृद्य, पित्तकोपन, खारा और कड़वा होता है; तथा कफ, वायु, मुखजाड्य, व्रण, कृमि, आम, विषदोष, विद्रधि, वन्ध्यत्व, गुल्म, उपदंश, गंडमाला, सूजन, कण्डू, अजीर्ण, मेद-रोग, सूजन और नेत्ररोग का नाश करता है।

सँहजन की फलियाँ—फीकी, अग्निदीपक, स्वादु, तथा मधुर होती है; और कफ, पित्त, शूल, कुष्ठ, ज्वर, क्षय, श्वास तथा गुल्म का नाश करती हैं।

सँहजन के बीज—तीक्ष्ण, उष्ण, चक्षुष्य और अवृष्य होते है; तथा कफ, वायु, विद्रधि, मेदरोग, गंडमाला, अजीर्ण, विष-

दोष, गुल्म, व्रण, कृमि, कफ और सूजन का नाश करते हैं। इसके बीजों को घिसकर नस्य करने से मस्तकशूल का नाश होता है।

सँहजन के फूल—तीक्ष्ण, उष्ण, तथा चक्षुष्य होते हैं और स्नायुरोग, कृमि, कफ, विद्रधि, सूजन, वन्ध्यत्व और गुल्म का नाश करते हैं।

सँहजन के पत्ते—तीक्ष्ण, उष्ण, रुचिकर, अग्निदीपन, पाचन, पथ्य तथा सारक होते हैं; और वायु, कृमि, कफ तथा ज्वर का नाश करते हैं।

काला सँहजन—अत्योष्ण, तीक्ष्ण, रुच्य, अग्निदीपन, पाचन, खारा, कड़वा, दाहक, ग्राहक, अवृष्य, पित्तज तथा रक्त-कोपन होता है, और कफ, कृमि, वायु, विषदोष, विद्रधि, प्लीहा, शूल, गुल्म तथा नहारू का नाश करता है।

सफेद सँहजन—तीक्ष्ण, रुच्य, अग्निदीपन, कड़वा, सारक तथा मधुर होता है। मुखजाड्य, वायु, सूजन और अङ्गों के उत्कलन का नाश करता है।

फूल—शीत, स्वर्य, फीके, लघु, ग्राहक, चक्षुष्य, रक्तपित्त-वर्द्धक, ग्राहक और कफ, पित्त, वायु, शिरोव्यथा तथा कृमि के नाशक होते हैं।

पत्ते—चक्षुष्य, स्वादु, शीतल, शुक्रकर, स्निग्ध तथा गुरु होते हैं। वात, पित्त, मेद और कृमि का नाश करते हैं।

लाल सँहजन—अतीव वीर्यवर्द्धक, मधुर तथा रसायन होता है। आध्मान, वायु, पित्त, कफ और सूजन का नाश करता है।

उपयोग—

नेत्ररोग पर—सँहजन के पत्तों के रस में शहद मिलाकर

अंजन करना चाहिए। इससे तिमिरादिक सर्व नेत्र-रोग दूर होते हैं।

सर्प-दंश पर—सँहजन की छाल, कड़वी तोरई और अरीठों को एकत्र पीसकर रस निकालना चाहिए, पश्चात् उसमे काली-मिर्च पीसकर पिलाना चाहिए।

हिचकी पर—सँहजन की जड़ का काढ़ा पिलाना चाहिए।

कान बहने पर—सँहजन के फूल सुखाकर उसका चूर्ण करके कान मे डालना चाहिए।

गंडमाला पर—सँहजन का दूध, सफेद गुलबाँस का कन्द और काली मिर्च को ठण्डे पानी में घिसकर लेप करना चाहिए।

नहारू पर—सँहजन की छाल अथवा जड़ कूट कर नहारू पर बाँधना चाहिए।

नलवायु पर—चार पैसे-भर सँहजन की छाल का रस, दो पैसे-भर अदरक का रस और छः माशा शहद एकत्र करके ७ दिन तक देना चाहिए।

जीभ फट जाने पर—हमेशा सँहजन के पत्तों को चबाकर उनका रस चूसना चाहिए।

शीघ्र प्रसव होने के लिए—सँहजन के मूल का रस पानी में डाले और उसे खौला कर पैर पर लेप करे।

बालकों का पेट बढ़ जाने पर—जंगली सँहजन की छाल का रस एक चम्मच-भर निकाले और उसमें उतना ही गाय का घी डालकर तीन दिन तक पिलाये।

सोमल के विष पर—चार पैसे-भर सँहजन की छाल का रस आधा सेर दूध में मिलाकर पिलाना चाहिए।

सोज़ाक पर—एक तोला सँहजन का गोंद गाय के घी में

मिलाकर ग्यारह दिन तक खाने से सोजाक आराम हो जाता है। कलकत्ते के प्रसिद्ध वैद्य पं० हरिदासजी का परीक्षित है।

बाँझपन पर—सँहजन की छाल का काढ़ा करके और उसमें पीपल तथा काली मिर्च का चूर्ण डालकर पिलाये।

कमर के दर्द पर—सँहजन की छाल थोड़ी गरम करके बाँधना चाहिए।

सर्व प्रकार के वायु पर—जंगली सँहजन का कन्द लाये और उसका रस निकाल कर पिलाये। अथवा सँहजन की छाल की पट्टी बाँधना चाहिए। इससे सब तरह की वायुपीड़ा दूर होती है।

सर्व नेत्ररोग और आँख दुखने पर—सँहजन के पत्तों के रस मे शहद डालकर अंजन करना चाहिए।

अन्तर्विद्रधि पर—सँहजन के काढ़े में हीग का चूर्ण डाल-कर पिलाना चाहिए।

विषम ज्वर पर—काले सँहजन की छाल का चूर्ण गुड़ और धनिये के साथ देना चाहिए।

पथरी पर—सँहजन के मूल का काढ़ा करके पिलाना चाहिए।

मस्तकशूल पर—सँहजन के पत्तों के रस मे काली मिर्च खरल करके उसका लेप करना चाहिए।

फोड़े को बैठाने के लिए—सँहजन की छाल घिसकर लेप करना चाहिए।

कफजन्य मस्तकशूल पर—सँहजन के बीजों को पानी में घिसे और नाक में टपकाये।

भूख न लगने और वायु से पेट में दर्द होने पर—सँहजन

की फलियों का शाक खाना चाहिए। ज्वर में मुख का स्वाद अच्छा करने के लिए भी इसे देना चाहिए।

शरीर के अन्दर के भाग म फोडा होने पर—सँहजन के मूल की छाल एक तोला लेकर कूटे और आधा सेर पानी में उसका अष्टमांश काढ़ा बनाकर पिलाये तथा अन्दर के फोड़े के कारण ऊपर जिस जगह सूजन आ गई हो, उस जगह सँहजन की छाल बाँधे। इससे या तो फोड़ा अच्छा हो जाता है या ऊपर मुँह होकर फूट जाता है।

शरीर में किसी भी जगह शूल उठने या दर्द होने पर-सँहजन के मूल का उपर्युक्त विधि से काढ़ा बनाकर पिलाये और छाल का रस निकाल कर उसमें उससे चौगुना तैल मिलाकर दर्द की जगह मालिश करे।

ज्वर में स्मरणशक्ति चली जाने और मस्तक जड़ हो जाने पर—सँहजन की छाल को सिर पर बाँधना चाहिए।

अर्धांगवायु पर—सँहजन और एरण्डमूल का काढ़ा पिलाये और सँहजन का रस और तैल मिलाकर गरम करके उससे मालिश करे।

सिर-दर्द पर—सफद सँहजन के बीजों का महीन कपड़छन किया हुआ चूर्ण सूँघना चाहिए।

मैदा लकड़ी

इसका वृक्ष बड़ा होता है। इसकी छाल लाल रंग की होती है और अनेक औषधियों मे काम आती है। 'मैदा' नामक

वनस्पति के अभाव में कई मनुष्य मैदा लकड़ी को उपयोग में लाते हैं।

उपयोग—

पुष्टई के लिए—मैदा लकड़ी का छः माशा की मात्रा मे चूर्ण करे और उसे दूध तथा शक्कर में डालकर एक मास तक सेवन करे।

अतिसार और प्रमेह पर—मैदा लकड़ी को दो माशा ठण्ढे पानी में पीसकर पिलाना चाहिए।

चोट लगे हुए भाग पर—मैदा लकड़ी, सज्जी खार और आमी हल्दी का लेप करना और सेकना चाहिए। इससे जमा हुआ रक्त प्रवाहित हो जाता है।

चोट लगने से खून जम जाने और सूजन आ जाने पर—हल्दी, भिलावाँ, लालचन्दन, विशेष धूप, गूगल और मैदा लकड़ी, इन सब औषधियों को ठण्ढे पानी में घिसकर गरम करके गाढ़ा-गाढ़ा लेप करना चाहिए। दूसरी बार लेप करना हो, तब पहले किये हुए लेप को धो देना चाहिए।

शहतूत

यह वृक्ष भारत के कई प्रान्तों में होता है। चीन देश मे यह बहुत ही होता है। इसके वृक्ष बड़े होते हैं। इसका संस्कृत नाम पूर्ण, तूत, हिन्दी में शहतूत, बङ्गला में तूंत-दपलासपिपुल, मराठी मे तूत, सैतूत, तैलिङ्गी में कम्पालिचेट्टु, तामिल में मशुकदईचेडि, फारसी में शाहतूत, तूवतुर्श, तूतशीरी, अरबी में

तूत, तूतहामीज़, तूतशिरी, लैटिन में मोरस इण्डका-निग्राआवा, अंग्रेज़ी में मलबेरिज़ है। इसकी तीन जातियाँ होती हैं—काली, हरी और लाल। काली और लाल शहतूत पर वर्षा ऋतु में फल आते हैं। ये स्वादिष्ट और मीठे होते हैं। रक्त की वृद्धि करते हैं। हरी और काली शहतूत के वृक्ष रेशम के कीड़ों के जीवन के उपयोग में आते हैं। वे कीड़े इनके पत्ते खाकर रेशम उत्पन्न करते हैं। चीन देश में रेशम अधिक उत्पन्न होता है।

पके फल—गुरु, स्वादु, शीतल तथा ग्राहक होते हैं। पित्त, वायु और रक्तदोष का नाश करते हैं।

कच्चे फल—गुरु, सारक, खट्टे और उष्ण होते हैं; तथा रक्तपित्त का नाश करते हैं।

बायबिडंग

इसके वृक्ष दस-बारह हाथ तक ऊँचे होते हैं। इसके पत्ते पाँच अंगुल लम्बे और तीन अंगुल चौड़े होते हैं। इस वृक्ष पर अंगूर के गुच्छों की तरह फल लगते हैं, उनको बायबिडंग कहते हैं। इसका संस्कृत नाम विडंग, हिन्दी में बायबिडंग, गुजराती और मराठी में वावडींग, कनाड़ो में वायुविलंग, तैलिङ्गी मे वायु-विडंगमु, फ़ारसी में रम, बरंगज, काबली, अंग्रेज़ी में बेब्रंग और लैटिन में अम्बेलियारिबीस है। ये फल कृमि-नाशक होते हैं।*

* मीर मुहम्मद हुसेन लिखते हैं कि—"बायबिडङ्ग खाने से पेशाब का रङ्ग लाल हो जाता है। इसलिए इनको ताजे दूध के साथ देना चाहिए।" डा० रान्सवर सका वर्णन करते हुए लिखते हैं कि—"कई पंसारी बायबिडङ्ग के साथ कालीमिर्च

वायविडंग—तीक्ष्ण, उष्ण, लघु, दीपन, रुच्य, कड़वी और वायु, कफ, अग्निमांद्य, अरुचि, भ्रान्ति, कृमि, शूल, आध्मान, उदर, प्लीहा, अजीर्ण, श्वास, हृद्रोग, विषदोष मलावष्टम्भ, आम, मद, खाँसी तथा दाह का नाश करती है।

उपयोग—

कृमि पर—वायविडङ्ग के काढ़े में गुड़ डालकर पिलाना चाहिए अथवा वायविडङ्ग का चूर्ण शहद के साथ देना चाहिए।

बालक के आरोग्य के लिए—जब बालक एक महीने का हो जाय, तब उसे एक वायविडङ्ग का चूर्ण शहद के साथ नित्य देना चाहिए। इस प्रकार प्रत्येक मास में एक-एक वायविडङ्ग बढ़ाना चाहिए। इससे बालक को कभी कोई रोग न होगा।

मिलाकर बेचते हैं। वायविडङ्ग के चूर्ण को छोटे बालक के लिए एक छोटे चम्मच-भर दो बार देना चाहिए। मनुष्य के लिए उसकी मात्रा एक बड़े चम्मच-भर है। इसका स्वाद उत्तम, थोड़ा कसैला और कुछ सुगन्धित होता है। छोटे बालकों के पीने के दूध में वायविडङ्ग के कुछ दाने मिला देने से पेट में वायु का कोप नहीं होता।"
सुश्रुतसंहिता में—वायविडङ्ग को शरीर में शक्ति उत्पन्न करने के लिए और वृद्धावस्था के प्रभाव से मुक्त होने के लिए मुलहठी के साथ सेवन करने के लिए कहा गया है। चरकसंहिता में—वायविडङ्ग को कृमिनाशक, कुष्ठनाशक और सिरोविरेचन (नाक से पानी गिरानेवाला) तथा गुल्म, शूल, खाँसी और श्वासनाशक कहा गया है। इस समय के वैद्यों का कथन है कि—"वायविडङ्ग पेट के दर्द की नाशक, पाचन-शक्ति बढ़ानेवाली, उदर के कृमि को निकालनेवाली, अजीर्ण और चर्मरोगों का नाश करनेवाली है।" यूनानी हकीम वायविडङ्ग को जुलाब द्वारा पेट की गड़बड़ी को ठीक करनेवाली मानते हैं। पेट के अन्दर के कृमि निकालने के लिए सूखे वायविडङ्ग के फल पीसकर ७ वर्ष तक के बालक के लिए एक चम्मच और अधिक वर्ष के

अरुचि और ज्वर पर—बायबिडङ्ग और शहद की गोली मुँह में रखना चाहिए। इससे अरुचि और असाध्य ज्वर का भी नाश हो जाता है।

मस्तक फिरने पर—बायबिडङ्ग की माला बनाकर कान से बाँधना चाहिए।

बालक की खाँसी और श्वास पर—बायबिडंग का चूर्ण शहद के साथ देना चाहिए।

हृद्रोग पर—बायबिडंग और कुलिंजन का चूर्ण चार माशा गोमूत्र में डालकर पिलाना चाहिए। इससे हृदय के असाध्य कृमियों का नाश हो जाता है।

मलशुद्धि के लिए—बायबिडंग और अजवाइन का चूर्ण गरम पानी में डालकर पीना चाहिए।

मनुष्यों के लिए दो चम्मच मक्खन और शक्कर के साथ मिलाकर दिया जाता है। डा० रायल कहते हैं कि—"इससे दस्त भी लग जाते हैं और पानी के साथ मिलाकर दिया जाये, तो पेट के कृमि निकल जाते हैं।" वे अर्शों पर भी इसको लाभदायक बतलाते हैं। सुश्रुत में—इस फल को पित्त के प्रकोप से उत्पन्न छोटी-छोटी फुन्सियों का नाशकर्त्ता कहा गया है। अंग्रेजी ग्रन्थकारों की राय में—इसके मूल और छाल का स्वाद कडवा होता है। इसका गुण सिंकोना (जिस वृक्ष से कुनाइन निकलती है, उसकी छाल) के समान ही है। यह शीतल होता है। इसके फल खाँसी, सर्दी, और श्वास-रोग पर अत्यन्त गुणकारी माने जाते हैं। दस्त लग जाने पर फल के ऊपर की छाल साबूदाना और मक्खन के साथ देने से बड़ा लाभ होता है। दूध में मिलाकर पिलाने से पाण्डुरोग का नाश होता है। इसी प्रकार पित्त के रोगों में भी इसको दिया जाता है। यदि दस्त के समय बड़ा कष्ट होता हो और आँव निकलता हो, तो नीबू के रस के साथ मिलाकर बायबिडङ्ग को खाना चाहिए।"

कृमि पर—बायबिडंग का चूर्ण गरम पानी के घूँट के साथ देना चाहिए। चूर्ण देने से पहले त्रिफला या एरण्ड के तैल का जुलाब देना चाहिए और पाँच दिन तक चूर्ण देने के बाद एक बार पुनः अच्छा-सा जुलाब देना चाहिए। इससे सब प्रकार के कृमि एकदम निकल जाते हैं।

कुष्ठ पर—बायबिडंग को पत्थर पर थोड़ा रगड़ कर उसके सब छिलके निकाल दे और उसके कपड़छन किये हुए चूर्ण में त्रिफला और निशोथ का कपड़छन किया हुआ चूर्ण मिलाये। फिर यह बायबिडंग, त्रिफला और निशोथ का चूर्ण एक पैसे-भर लेकर एक पैसे-भर गुड़ के साथ खाना चाहिए। इस प्रकार सुबह-शाम दो बार एक महीने तक खाना चाहिए। यह चूर्ण लगातार छः महीने तक खाने और सख्त परहेज़ करने से गलित कुष्ठ भी अच्छा होता है।

बच्चों को दूध न पचने पर—दूध में बायबिडंग डालकर पकाना चाहिए और ठण्डा करके पिलाना चाहिए। इससे बच्चों को सरलता से दूध हज़म होता है।

ज्वर में बहुत प्यास लगने पर—पानी में बायबिडंग डालकर देना चाहिए। इससे पानी नुक़सान नहीं करता।

नीरोग रहने के लिए—उपर्युक्त विधि से बायबिडंग के छिलके उतार कर उसके कपड़छन किये हुए चूर्ण में उतना ही मुलहठी का चूर्ण मिलाये और उसमें से चवन्नी-भर के लगभग अलग लेकर शहद में मिलाये और पैसे-भर मिश्री और एक तोला घी के साथ खाये। रोज़ खाने से दस्त साफ़ होते हैं, भूख अच्छी तरह लगती है और शरीर नीरोग रहता है।

अगर

अगर का वृक्ष, आसाम में, मलाबार में, चीन की सरहद के निकटवर्त्ती "नवका" शहर के "चतिया" टापू में, बंगाल के दक्षिण की ओर के उष्णकटिबन्ध के ऊपर के प्रदेश से, और सिलहट जिले के आसपास "जंतिया" पर्वत पर अधिक होता है। यह वृक्ष बहुत बड़ा होता और सर्वदा हरा रहता है। यह ऊबड़-खाबड़ होता है। इसमें चैत्र मास में फूल आते हैं। इसके बीज श्रावण में पकते हैं। इसकी लकड़ी नरम होती है। उसके छिद्रों में राल की तरह कोमल और सुगन्धित पदार्थ भरा रहता है। लोग उसे चाकू से कुतर कर रख लेते हैं। अगर को संस्कृत में स्वादुगरू, हिन्दी, बंगला, मराठी, कर्नाटकी और तामील में अगर, गुजराती में अगरू, तैलिङ्गी में अगरूचेट्टु, मलयलम में आकेल, फ़ारसी में कसबेनवा, अरबी में ऊदगरकी, ग्रीक में अगेलोकन, लैटिन में सक्वीलेरिया एगेलोका और अंग्रेजी में ईगलवुड कहते हैं। यह अगरबत्ती बनाने और शरीर पर मलने के काम में लाया जाता है। इसकी सुगन्ध से चित्त प्रसन्न होता है। बड़ा उपयोगी पदार्थ है।

प्राचीन ग्रन्थों में इसका बहुत वर्णन मिलता है। प्राचीन यहूदी लोग इसे "अलहोट," ग्रीक और रोमन "अगेलोकन" और प्राचीन अरब-निवासी "अघलुखी" कहते थे; परन्तु बाद में वे इसका नाम बदल कर "ऊदहिन्दी" कहने लगे। अगर की लकड़ी के सड़ जाने पर उसमें एक प्रकार की सुगन्ध उत्पन्न होती है। उस सुगन्ध को शीघ्र उत्पन्न करने के लिए लोग अगर की लकड़ी

गोली करके जमीन में गाड़ देते हैं। उसके सड़े हुए भाग का रंग तैलिया और काला होता है। शुद्ध अगर का रंग काला होता है। आर्य-वैद्यक ग्रन्थों में इसकी पाँच जातियों का वर्णन मिलता है। उन पाँचों के नाम—कृष्णागरू, काष्टागरू, दाहागरू, स्वाद्वगरू और मंगलागरू हैं। हकीम लोग इसकी चार जातियाँ बतलाते हैं—हिन्दी, समंदरी, कमरी और समंडली। ये नाम इसके उत्पत्ति-स्थान पर से पड़े हुए जान पड़ते हैं। उपर्युक्त चार जातियों में से पहली जाति का अगर काला, दूसरी का तैलिया, तीसरी का फीका और चौथी का सुगन्धित होता है। औषधि के काम में लाने योग्य अगर सिलहट की ओर से ही आता है। वह कड़वा, फीका, सुगन्धित और तैलिया रंग का होता है। औषधि के काम में अगर का चूर्ण कभी नहीं लेना चाहिए। कारण कि बेचनेवाले बादाम के तैल में सुगन्ध लाने के लिए इसे बादाम के बराबर पीसकर उसमें मिला देते और तैल निकाल कर बचे हुए चूरे में चन्दन और तगर की सुगन्ध देकर "अगर" के नाम से बेच देते हैं। यह औषधि में ठीक-ठीक लाभ नहीं पहुँचाता।

"इख्तियारत-इ-बदिआई" नामक ग्रन्थ के कर्ता ने अगर की उपर्युक्त सभी जातियों से भिन्न एक जाति का वर्णन किया है। उसकी कीमत सोने के बराबर होती है। अगर की दूसरी जातियों को आग पर रक्खे बिना सुगन्ध नहीं आती; परन्तु उसे थोड़ी देर हाथ में रखे रहने से ही हाथ में सुगन्ध आने लगती है। अगर की तगर नामक एक जाति हिन्दुस्थान में सर्वत्र होती है। सस्ता होने के कारण बहुत लोग उसी को अगर के नाम से बेचकर लोगों को ठग लेते हैं। बम्बई में तीन प्रकार

का अगर मिलता है। उसे गागुली, सिंगापुरी, सियामी अथवा मावरधी कहते हैं। इसके सिवा हमारे यहाँ जंजिबार से भी एक प्रकार का अगर आता है। बहुत-से लोग नकली अगर भी बेचते हैं। ऊपर लिखी हुई अगर की सब जातियों की लकड़ी के ऊपर काली धारियाँ होती हैं। सबसे श्रेष्ठ अगर की लकड़ी पर छेद होते हैं और वह पानी में डूब जाती है। उसका टुकड़ा चबाने में बड़ा नरम होता है। उसका स्वाद कड़वा होता है। उसे आग पर रख कर जलाने से सुगन्ध आती है और नकली अगर को जलाने से रबर जलाने की-सी दुर्गन्ध आती है।

अगर का वृक्ष—सुगन्धित, गरम, कड़वा, तीखा, स्निग्ध, मंगलकर, रुच्य और पित्तकर होता है। यह शरीर पर लेप और मर्दन करने के लिए बहुत उत्तम होता है। * अगर का तैल सुगन्ध के कामों में लाया जाता है। कोचीन और चीन में अगर की छाल के कागज बनाये जाते हैं। अगर का काढ़ा पीने से ज्वर की दशा में उत्पन्न हुई प्यास शान्त हो जाती है। यूरोप में संधिवात और आमवात पर भी इसका उपयोग किया जाता है।

कृष्णागरू—तीखा, कड़वा, उष्ण, लेप करने से शीतल, पीने से पित्तनाशक, पौष्टिक और लघु होता है। इसका चूर्ण कफ-

---

* अगर को चरक ने जुकाम और खाँसी का नाशक माना है। सुश्रुतसंहिता में इसे कफनाशक, कान्तिवर्द्धक और खुजली तथा कोढ़ का नाशक माना गया है। अगर की लकड़ी को पानी में उबाल कर पीने से ज्वर की तृषा शान्त हो जाती है। मृगी, उन्माद आदि रोगों में भी इसका उपयोग होता है। गरम प्रकृतिवाले के लिए यह हानिकारक होता है।

कारक होता और कर्णरोग, नेत्ररोग, दाह, त्रिदोष, त्वचारोग, कफ और वायु का नाश करता है।

दाहागरू—थोड़ा गरम, सुगंधित, तीखा, केशवर्द्धक, कान्ति-कर और केशशोधक होता है।

काष्टागरू—तीखा, गरम, लेप करने से रुक्ष और कफ-नाशक होता है; तथा मुखरोग, वमन और वायु का नाश करता है।

स्वाद्वगरू—फीका और गरम होता है; तथा नस्य करने से वायु का नाश करता है।

मंगलागरू—शीतल, सुगंधित, और योगवाहक होता है।

उपयोग—

त्वचारोग पर—अगर का लेप करना चाहिए।

दाह पर—अगर का चूर्ण शरीर पर मलना चाहिए।

ज्वर से पसीना आने पर—अगर, खस, चन्दन और नागकेसर का चूर्ण करके बेर की छाल के पानी में उबाल कर शरीर पर लेप करना चाहिए।

दाह पर—कृष्णागरू को घिसकर लेप करना चाहिए।

सुगंधित चूर्ण बनाने की विधि—अगर, कपूर, केसर, लोबान, खस, लोध, काली खस और नागरमोथे को सम भाग लेकर बारीक पीसे। इसे शरीर पर मलने से शरीर सुगन्धित हो जाता है।

वस्त्र को सुगंधित करने के लिए—अगर का पानी वस्त्र पर छिड़कना चाहिए।

अगरबत्ती बनाने की विधि—चार भाग काला अगर, दो भाग खस, चार भाग नागरमोथा, दो भाग तगर, दो भाग

आमीहल्दी, १८ भाग चन्दन, दो भाग फूलप्रियंगु, दो भाग गुलाबकली, दो भाग गूगल, चार भाग लोबान, १८ भाग शिलारस, एक भाग कस्तूरी और ९ भाग मैदा लकड़ी को एकत्र करे और कस्तूरी तथा शिलारस को छोड़ कर सबको कूट ले। पश्चात् कपड़े से छानकर उसमे कस्तूरी, शिलारस और थोड़ा गुड़ मिलाये और पानी का छींटा देकर पतला कर ले। पश्चात् बाँस की पतली-पतली सलाइयों पर लगाकर सुखा ले।

दूसरी विधि—आधा तोला मलाबारी चन्दन, पाव तोला काला अगर, नौ भाग सूखा देवदारु, एक तोला फूलप्रियंगु, चार तोला ब्राह्मी, पाँच तोला लोबान, नौ तोला शहद, दो तोला गूगल, चार तोला मैदालकड़ी, पाँच तोला शक्कर, ११ तोला अगर, आधा तोला कस्तूरी और डेढ़ तोला अंबर को मिलाकर उपर्युक्त विधि से अगरबत्ती तैयार कर ले। यह अगरबत्तियाँ बहुत सुगन्धित होती हैं।

कस्तूरी बहुत महँगी चीज है; इसलिए लोग नही मिलाते; किन्तु थोड़ी-सी मिला ली जाय, तो अगरबत्ती विशेष वायु स्वच्छ करनेवाली हो जाती है।

बाँस

बाँस वैसे तो भारतवर्ष मे सभी जगह थोड़ा-बहुत होता है; पर कोंकण मे बहुत होता है। इसके पत्ते लम्बे होते हैं। यह पचास-साठ हाथ ऊँचा होता है। यह इतना मजबूत होता है कि एकाएक तोप के गोले का भी इसपर असर नही हो सकता। संस्कृत और बंगला में इसे वंश या वेणु, हिन्दी में बाँस, गुजराती

में बाँस, मराठी में वेळु, बाँबू, माणगा और चिवा, कर्नाटकी में बोदीरु, गळा या एळे, तैलिङ्गी में कचकई, तामील में मुंगिल, मळयलम में मुंगिल, लैटिन में बाम्बुसावलगेरीस् और अंग्रेजी मे बांबू कहते हैं। लगभग साठ वर्ष में इसमें बीज आने लगते हैं। हर एक बाँस में चार-चार अंगुल की दूरी पर बीजों के झुण्ड लगते हैं। बीजों के पक जाने पर बाँस सूखने लगते हैं। एक बाँस के सूखने से बहुत बाँसों का नाश हो जाता है। बीस-पचीस वर्ष पश्चात् नये बाँस आ जाते हैं। इसके बीज गेहूँ के जैसे होते हैं। गरीब लोग उनकी रोटी, पूरी आदि कई चीजें बनाते हैं। बाँस की टोकरी, चटाई, सूप, पंखे आदि कई चीजें बनाई जाती हैं। चीन में बाँस की कुरसियाँ, कौच, पलंग आदि बहुत-सी चीजें बनाई जाती हैं। बाँस में से कपूर की तरह एक पदार्थ निकलता है, उसे संस्कृत मे वंशलोचन कहते हैं।

सूखा बाँस—खट्टा, फीका, कड़वा, शीतल, सारक, स्वादिष्ट, वस्तिशोधक, भेदक और छेदक होता है; और कफ, पित्त, रक्त-दोष, कोढ़, सूजन, व्रण, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, अर्श, और दाह का नाश करता है।

पोला बाँस—दीपन, रुचिकर, पाचन और हृद्य होता है; तथा अजीर्ण, शूल और गुल्म का नाश करता है।

गीला बाँस—तीखा, कड़वा, खट्टा, फीका, लघु, शीतल और रुचिकर होता है; तथा पित्त, रक्तदोष, दाह, मूत्रकृच्छ्र और त्रिदोष का नाश करता है।

बाँस के बीज—फीके, मधुर, रूक्ष, पौष्टिक, वीर्यवर्द्धक और बलकर होते हैं; तथा कफ, पित्त और प्रमेह का नाश करते हैं।

वंशलोचन—रुक्ष, फीका, मधुर, शीतल, रक्तशोधक, ग्राही, धातुवर्द्धक, वृष्य और बलकर होता है ; तथा कास, श्वास, क्षय, रक्तपित्त, अरुचि, कोढ़, ज्वर, पाण्डुरोग, दाह, तृषा, व्रण, मूत्रकृच्छ्र, वायु और पित्त का नाश करता है।

उपयोग—

मूत्राघात पर—चावल के पानी में बाँस की राख और शक्कर डालकर पीना चाहिए।

पारा खा लेने पर—बाँस के पत्तों के चार पैसे-भर रस में शक्कर डालकर पीना चाहिए।

रक्तजन्य दाह पर—बाँस की छाल के काढ़े को ठण्डा करके शहद के साथ पीना चाहिए।

बहुमूत्ररोग पर—बाँस के हरे और सूखे पत्तों का काढ़ा बनाकर सुबह-शाम पीना चाहिए। प्यास लगने पर भी इसी को पीना चाहिए।

बालक की खाँसी और श्वास पर—वंशलोचन का चूर्ण शहद के साथ देना या बाँस की गाँठ पानी में घिसकर पिलाना चाहिए।

सर्व प्रमेह पर—वंशलोचन, शीतलचीनी, नागकेसर और इलायची के दानों को समभाग लेकर कूटे और कपड़े से छानकर चन्दन के तैल में गोला करके सुपारी के बराबर गोलियाँ बनाये। पश्चात् रोज सुबह-शाम चार तोला ठण्डे पानी में आधा तोला शक्कर और एक गोली डालकर पीना चाहिए।

शरीर में गरमी बढ़ने पर—दूध और मिश्री के साथ चार रत्ती वंशलोचन देना चाहिए। एक सप्ताह में गरमी कम होती है।

सूखी खाँसी पर—चार रत्ती वंशलोचन को शहद मे मिलाकर उसमें उससे दुगुना घी डालकर चाटना चाहिए। इससे सूखी खाँसी दूर होती है।

शक्ति के लिए—दालचीनी, इलायची, छोटी पीपल, वंश-लोचन और मिश्री, इन सब चीजों को क्रमानुसार एक दूसरे से दुगने प्रमाण में लेकर इनका चूर्ण करे। इसे सितोपलादि चूर्ण कहा जाता है। यह चूर्ण क्षय, जीर्णज्वर, खाँसी आदि के लिए अचूक औषधि है।

पेशाब साफ़ न होने पर—वंशलोचन, शीतलचीनी (कंकोल) और इलायची का कपड़छन किया हुआ चूर्ण बराबर-बराबर लगभग तीन चुटकी भर लेकर दूध और मिश्री के साथ देना चाहिए।

हर्र

हर्र का वृक्ष कोंकण और गुजरात की ओर बहुत होता है। यह बहुत बड़ा होता है। इसके पत्ते घाय के पत्तों के जैसे होते हैं। इसकी लकड़ी इमारत आदि बनाने के काम मे आती है। हर्र कितनी उपयोगी होती है, यह इस वाक्य से मालूम हो जाता है—

"नास्ति यस्य गृहे माता,
तस्य माता हरीतकी।"

इसे संस्कृत में हरीतकी, हिन्दी में हर्र, गुजराती में हरड़े, बङ्गला मे हरीतकी, मराठी में हिरड़ा, कर्नाटकी मे अणिलेकायी,

तैलिङ्गी में करेक्काय, तामील में अंकेनं या कुडुमारा, मलयलम में कटुक्कामारं, फ़ारसी मे हलिले, अरबी में एहलीलज, लैटिन में टरमिनेलिया या केबुला और अंग्रेजी मे मायरोबेलन्स कहते हैं। वैद्यकशास्त्र में इसकी सात जातियाँ कही गई हैं—विजया, रोहिणी, पूतना, अमृता, अभया, जीवन्ती और चेतकी। जो तूँबी की तरह गोल होती है, उसे विजया ; साधारण गोल होती है, उसे रोहिणी ; जिसकी गुठली बड़ी और छाल पतली होती है, उसे पूतना ; जिसकी गुठली छोटी और छाल मोटी होती है, उसे अमृता ; जिसके ऊपर उभरी हुई पाँच रेखाएँ होती हैं, उसे अभया ; जिसका रग सुवर्ण की तरह पीला होता है, उसे जीवन्ती, और जिसके ऊपर तीन रेखाएँ होती हैं, उसे चेतकी कहते हैं। विजया सब रोगों के लिए उपयोगी होती है। रोहिणी व्रणरोपक होती है। पूतना लेप के लिए उत्तम होती है। अमृता रेचन के लिए उपयोगी होती है। अभया नेत्र के रोगों के लिए गुणकारी होती है। जीवन्ती सर्वरोग परिहारक होती है और चेतकी चूर्ण के लिए उपयोगी होती है। चेतकी की दो जातियाँ होती हैं—काली और सफेद। सफेद छः अंगुल लम्बी और काली एक अंगुल लम्बी होती है। किसी हर्र को खाने से, किसी को सूँघने से, किसी को स्पर्श करने से और किसी को केवल देखने ही से रेचन हो जाता है। मनुष्य, पशु, पक्षी आदि कोई भी प्राणी यदि चेतकी की छाया के नीचे सो जाय, तो तत्काल उसे रेचन होने लगता है। हर्र की सातों जातियों में विजया मुख्य है, कारण कि वह सुगमता से मिल सकती है। बहुत से लोग नकली हर्र बनाकर बेचते हैं। हर्र की पहचान यह है कि उसे खादी के गीले कपड़े में लपेट कर रख दे, जब वह गल जाये, तो चार फाँकें करे। पश्चात् उसे

पहले की तरह जोड़ कर सूखे कपड़े में लपेट दे। यदि नकली होगी, तो पुनः जुड़ जायेगी और असली होगी, तो कभी नहीं जुड़ेगी। जो हर्रं कच्ची ही सुखा ली जाती है, उसे छोटी हर्रं कहते हैं।

हर्रं—रुक्ष, उष्ण, अग्निदीपक, बुद्धिवर्द्धक, मधुर, रसायन, नेत्र के लिए हितावह, आयुष्यवर्द्धक और शरीर के तत्त्वों की शुद्धि करनेवाली होती है; तथा श्वास, कास, प्रमेह, अर्श, कोढ़, सूजन, कृमि, उदर, स्वरभंग, मलबद्धता, विषमज्वर, गुल्म, तृषा, आध्मान, वमन, हिचकी, खाज, हृद्रोग, पाण्डुरोग, शूल, प्लीहा, यकृत्, मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघात का नाश करती है। मधुर, फीका और तीखा रस होने के कारण यह पित्त का; तीखा, कड़वा और फीका रस होने के कारण कफ का तथा मधुर और खट्टा रस होने के कारण वायु का नाश करती है। हर्रं की मज्जा में मधुर रस, नोक में खट्टा रस, डंठल में तीखा रस, छाल में कड़वा रस और गुठली मे फीका रस होता है। हर्रं को चबा कर खाने से अग्नि प्रदीप्त होती, चूर्ण करके खाने से रेचन होता, पका कर खाने से मलस्तम्भ नहीं होता और सेक कर खाने से त्रिदोष का नाश होता है। * हर्रं को भोजन के साथ खाने से बुद्धि और

---

* डाक्टर डीमेक का मत है कि दिन में दो बार एक-एक ड्राम हर्रं को खाने से दस्त दूर हो जाते हैं। डाक्टर वोरिंग का कथन है कि छः छोटी हर्रों का काढ़ा बनाकर देने से पाँच-छ: बार दस्त होकर पेट का शूल और वमन नष्ट हो जाता तथा पेट साफ होता है। इस काढ़े में थोड़ी दालचीनी डाल देने से यह स्वादिष्ट और अधिक गुणकारी हो जाता है।

हर्रं का काढा दुखते हुए अर्श और स्त्रियों की गुह्येन्द्रिय से अधिक प्रवाह निकलने पर बहुत उपयोगी होता है।

बल बढ़ता तथा इन्द्रियों में तेज आता है। वात, पित्त और कफ का नाश होता तथा मलशुद्धि होती है। भोजन के पश्चात् हर्र खाने से वात, पित्त और कफ से उत्पन्न हुई पीड़ा नष्ट होती है। सेंधे नमक के साथ खाने से कफ का, शक्कर के साथ खाने से वायुरोग का और गुड़ के साथ खाने से हर्र सब रोगों का नाश करती है। इसे ग्रीष्म ऋतु में गुड़ के साथ, वर्षाऋतु में सेंधे नमक के साथ, शरद् ऋतु में शक्कर के साथ, हेमन्त ऋतु में सोंठ के साथ, शिशिर ऋतु में पीपल के साथ और वसन्त ऋतु में शहद के साथ खाना चाहिए। जो मनुष्य चलने से थक जाता हो, जिसे प्यास ज्यादा लगती हो, जो उपवास करता हो, हनुस्तंभी हो, जिसका गला बैठ गया हो, और जो दुर्बल, कृश तथा शोष-युक्त हो, उसे हर्र नहीं देनी चाहिए। गर्भिणी स्त्री को भी हर्र नहीं देनी चाहिए।

हर्र का गूदा—चक्षुष्य और गुरु होता है; तथा वायु और पित्त का नाश करता है।

त्रिफला (हर्र, बहेड़ा और आँवला)—दीपन, रुचिकर नेत्र के लिए हितावह, रसायन, वयःस्थापक, वृष्य, सारक, हृद्य और बलवर्द्धक होता है; तथा पित्त, कफ, त्रिदोष, कोढ़, प्रमेह, नेत्ररोग, रक्तदोष, मेद, स्वेद, ज्वर और विषमज्वर का नाश करता है।

उपयोग—

वातरक्त पर—छोटी हर्र के चूर्ण को गुड़ में मिलाकर उसकी गोली बनाये और सेवन करे।

श्वास और हिचकी पर—हर्रें और सोंठ को चटनी की तरह पीसकर गरम पानी के साथ पीना चाहिए।

आँव पर—हर्रें, सोंठ और गुड़ समभाग लेकर उसमें नीम का रस डाले और गोली बनाकर खिलाये; अथवा दो-तीन छोटी हर्रों को नौ पैसे-भर गाय के दूध में घिसकर पिलाना चाहिए।

कभी कोई रोग न होने के लिए—रात को सोते समय दो हर्रें का चूर्ण खाकर पाव-भर गरम दूध पी लेना चाहिए। इस औषधि को सप्ताह में एक बार पीने से भी लाभ होता है।

पित्त से शरीर क्षीण होने पर—दो पैसे भर हर्रें को कूट कर रात के समय गाय के मट्ठे में भिगो दे और प्रातःकाल इस मट्ठे को पिलाये। यह औषधि तीन-चार सप्ताह तक पिलानी चाहिए। यदि रेचन हो, तो घी-भात खिलाये।

अम्लपित्त पर—एक भाग हर्रें, एक भाग द्राक्ष और दो भाग शक्कर की एक-एक तोला की गोलियाँ बनाकर सुबह-शाम एक-एक गोली खाना चाहिए।

आँखें दुखने पर—हर्रें और फिटकिरी को पानी में घिस-कर अंजन करना चाहिए।

पांडुरोग पर—३ माशा हर्रें का चूर्ण, एक पैसे-भर शहद और दो पैसे-भर घी को मिलाकर पिलाना चाहिए; अथवा हर्रें को इक्कीस दिन तक गोमूत्र में रखकर एक-एक रोज देना चाहिए।

मूर्च्छा पर—छोटी हर्रें का काढ़ा घी के साथ देना चाहिए।

पित्तगुल्म पर—हर्रें और द्राक्ष का काढ़ा गुड़ के साथ पिलाना चाहिए।

श्लीपद रोग पर—हर्रे को एरण्ड के तैल में तलकर उसका चूर्ण गोमूत्र के साथ देना चाहिए।

कफ, रक्तपित्त, शूल, अतिसार पर—हर्रे का चूर्ण शहद के साथ देना चाहिए।

अजीर्ण पर—छोटी हर्रे और सोंठ को समभाग लेकर चूर्ण करे और गुड़ में उबाल कर पिलाये।

कोष्ठबद्धता अर्थात् दस्त साफ़ न होने पर—छोटी हर्रे, सोनामुखी, बड़ी सौंफ और सचल (एक प्रकार का खार) का चूर्ण गरम पानी के साथ पिलाना चाहिए।

बच्चों के रेचन के लिए—छोटी हर्रे को ठण्ढे पानी में घिसकर तीन माशा से एक तोला तक पानी में डालकर पिलाना चाहिए।

गरमी के फोड़े, व्रण आदि पर—त्रिफला को लोहे की कढ़ाई में जलाकर उसकी राख शहद मे मिलाकर लगाना चाहिए।

सब प्रकार के प्रमेह पर—त्रिफला का चूर्ण हल्दी और शक्कर के साथ देना चाहिए।

शनैर्मेह पर—त्रिफला और गिलोय का काढ़ा पिलाना चाहिए।

जुलाब के लिए—छोटी हर्रे, सोनामुखी और डण्ठल-रहित गुलाब की कली को समभाग लेकर उसका चूर्ण रात के समय थोड़े गरम पानी में भिगोकर तीन माशा के लगभग देना चाहिए। इससे प्रातःकाल जुलाब होकर शरीर की गरमी नष्ट हो जाती है।

अंडवृद्धि पर—प्रातःकाल के समय छोटी हर्रे का चूर्ण गो-

मूत्र या एरण्ड के तैल में मिलाकर देना चाहिए ; अथवा त्रिफला दूध के साथ देना चाहिए।

कास-श्वास पर—हर्रे और बहेड़े का चूर्ण शहद के साथ देना चाहिए।

शूल पर—हर्रे का चूर्ण घी और गुड़ के साथ देना चाहिए।

मेदोरोग पर—त्रिफला के काढ़े में शहद मिलाकर पिलाना चाहिए।

सर्व नेत्ररोग पर—त्रिफला के काढ़े से नेत्र धोना चाहिए या रात के समय त्रिफला के चूर्ण को शहद और घी के साथ खाये अथवा त्रिफला को घिसकर महीने में चार-पाँच बार अंजन करे। इससे दृष्टि निर्मल रहती है।

वृषण की सूजन पर—त्रिफला के काढ़े में गोमूत्र मिलाकर पिलाना चाहिए।

सन्धिगत सन्निपात पर—(शरीर में वायु की पीड़ा सूजन और शूल उत्पन्न होना तथा निद्रानाश के लक्षण दिखलाई देना) त्रिफला के काढ़े में शहद मिलाकर पिलाना चाहिए।

प्रमेहादि विकार पर—त्रिफला का चूर्ण खाने से प्रमेह, सूजन, विषमज्वर, कफ, पित्त और कोढ़ दूर होता है ; तथा अग्नि प्रदीप्त होती है। इस चूर्ण को घी और शहद के साथ खाने से नेत्र के सब रोग दूर होते हैं।

पसीना न आने के लिए—हर्रे को पानी में पीसकर शरीर पर मलना और स्नान करना चाहिए।

सब प्रकार के मस्तकशूल पर—त्रिफला, चिरायता, हल्दी,

नीम और गिलोय का काढ़ा बनाकर उसमें छठा अंश गुड़ डालकर पिलाना चाहिए।

विसर्प, श्वास, वमन और खाँसी में लहू गिरने पर—हर्र का चूर्ण, घी, तैल या शहद के साथ देना चाहिए।

शीतज्वर पर—हर्र और इन्द्रजव का एक तोला चूर्ण गुड़ के साथ खाना चाहिए।

त्रिदोष, आमातिसार, अनाह और विशूचिका पर—हर्र, सोंठ, नागरमोथा और गुड़ को समभाग लेकर उसकी गोली बनाकर खाना चाहिए।

आमवात और अंडवृद्धि पर—हर्र को एरण्ड के तैल के साथ खाना चाहिए।

सूजन, प्रमेह, नासूर और भगंदर पर—त्रिफला का काढ़ा भैंस के घी के साथ पिलाना चाहिए।

अंतर्विद्रधि पर—हर्र, सेंधा नमक और धाय के फूल का चूर्ण शहद और घी के साथ देना चाहिए।

बर्र आदि के दंश पर—बाँबी की मिट्टी और त्रिफला को गोमूत्र में घिसकर लेप करना चाहिए।

सदैव नीरोग रहने के लिए—अच्छी वज़नदार हर्र के कपड़छन किये हुए पैसे-भर चूर्ण को घी में मिलाकर रोज़ खाना चाहिए। इससे स्मरण-शक्ति विकसित होती, आयु बढ़ती और मनुष्य सदैव नीरोग रहता है; परन्तु मौसिम के अनुसार अनुपान बदल देना चाहिए।

जुलाब के लिए—छः उत्तम हर्र को कूटकर आधा सेर पानी में उसका अष्टमांश काढ़ा बनाये और छानकर पिये। इससे

चार अच्छे जुलाब लगते हैं और पेट में दर्द नहीं होता, गड़बड़ नहीं होती तथा मुँह में पानी नहीं छूटता।

मूलव्याधि पर—एक पैसे भर हर्रे को दूध और मिश्री के साथ देना चाहिए। थोड़े दिनों में निश्चय ही लाभ होगा।

देवदारु

देवदारु के वृक्ष हिमालय, ब्रह्मदेश, बङ्गाल और पिनांग में बहुत होते हैं। इसको संस्कृत, हिन्दी, कनाडी, तामिल और मलयलम मे देवदारु, मराठी, फारसी और गुजराती में देवदार, कर्नाटकी में देवद्वार, तैलिङ्गी मे देवदारचेट्ठु, अरबी मे शजरतुल-जील, शजरतुलबक् और लैटिन में सिट्रसडेवडारा कहते है। इस वृक्ष को यदि काफी जगह मिल जाय, तो यह बहुत ही बढ़ता है। तीस-चालीस वर्ष का होने पर इसमे फल आने लगते हैं। यह वृक्ष सौ-दो-सौ वर्ष तक रहता है। जैसे-जैसे यह वृक्ष पुराना होता जाता है, तैसे-तैसे यह अधिक मजबूत और उपयोगी होता जाता है। इसकी लकड़ी सागौन से बहुत हलकी होती है। इससे अनेक प्रकार की वस्तुएँ बनाई जाती हैं। राजाओं के लिए इसकी लकड़ी से सिंहासनादि बनाये जाते हैं। देवदारु की धूप भी बनाई जाती है। इसकी लकड़ी से टर्पिन-टाइन तैल निकाला जाता है। इसकी तीन जातियाँ होती है।

तैलिया देवदारु—पकने पर तीक्ष्ण, स्निग्ध, उष्ण, कटु और लघु होता है। कफ, वात, प्रमेह, अर्श, मलस्तम्भ, आमदोष,

ज्वर, आध्मान, श्वास, ऊर्ध्वरस, तन्द्रा (मूर्च्छा), रक्तदोष, सूजन, हिचकी और पीनस का नाश करता है।

काष्ठ देवदारु—उष्ण, कटु तथा रुक्ष होता है। कफ, वायु, भूतबाधा और लेप करने से मुख पर के व्यंग का नाश करता है।

* सरल देवदारु—तीक्ष्ण, कटु, मधुर, उष्ण, लघु, कोष्ट-शोधक तथा स्निग्ध होता है। त्वग्दोष, वायु, कर्णरोग, व्रण, कण्डु, कण्ठरोग, नेत्ररोग, ऊर्ध्वरस, सूजन, राक्षसपीड़ा, प्रस्वेद और जुओं का नाश करता है।

उपयोग—

उरुस्तम्भ पर—देवदारु को पीसकर गरम करके लेप करना चाहिए।

कफगलगंड पर—देवदारु और चित्रामूल को पानी में पीसकर लेप करना चाहिए।

कफज्वर पर—दो तोला देवदारु को अच्छी तरह कूटकर आधा सेर पानी में उसका अष्टमांश काढ़ा बनाये और उसमें चार रत्ती नमक डालकर पिलाये। इससे जुकाम और अजीर्ण का ज्वर भी अच्छा होता है। यह काढ़ा पसीना लानेवाला होता है, इसलिए पसीना लाने के लिए भी इसे देना चाहिए।

जोड़ों के दर्द पर—देवदारु का कपड़छन किया हुआ डेढ़ माशा चूर्ण रोज सुबह-शाम शहद के साथ देना चाहिए। परहेज के साथ यह औषधि लेने से दो दिन में जोड़ों का दर्द दूर होता है।

---

* म० शालिग्राम आदि निघण्टुकारों की सम्मति है कि सरल देवदारु के गोंद के ही चन्द्रस, सरलधूप, धूपविशेष, इशेश इत्यादि नाम हैं; काष्ठ देवदारु में तैल नहीं होता।

हिचकी पर—देवदारु का चूर्ण शहद के साथ बार-बार चाटना चाहिए।

गर्भ के न बढ़ने पर—तैलिया देवदारु को घिसकर स्त्री को पिलाना चाहिए। इससे पेट की वायु कम होकर गर्भ को बढ़ने के लिए जगह मिलती है।

काजू

यह वृक्ष अफ्रीका-खण्ड में और हिन्दुस्थान मे होता है। मलाबार, गोमांतक और कर्नाटक इत्यादि स्थानों मे यह वृक्ष बहुत होता है। इसको संस्कृत में काजूतक, अग्निकृत, हिन्दी और गुजराती में काजू कहते हैं। इसकी ऊँचाई सामान्य होती है। यह वृक्ष जंगल और पहाड़ों पर कई जगह होता है। इसकी दो जातियाँ होती हैं—काली और सफेद। इस वृक्ष से यात्रियों को बड़ा आराम होता है। वे इसकी छाया में आराम करते हैं और फल खाकर अपनी क्षुधा को शान्त करते हैं। काजू के फल कोमल होते हैं और उनके आगे बीज रहते हैं। इसकी छाल कड़ी होती है और अन्दर भिलावें की तरह चिकनी होती है। यदि वह शरीर पर लग जाए, तो छाला उठ आता है। छाल के अन्दर काजू होती है। यह स्वादिष्ट होती है; परन्तु अधिक खाने से विकृति उत्पन्न हो जाती है। काजू के पक्के फल खाने के उपयोग में आते हैं और सूखे बीजों को शक्कर के पाक में मिलाकर मिठाई बनाई जाती है। काजू के बीजों का दूध नाव के तले पर लगाया जाता है,

जिससे उस पर पानी का कोई प्रभाव नहीं होता। काजू के पके फल नलविकार-नाशक होते हैं।

काजू का वृक्ष—फीका, मधुर, उष्ण, लघु और धातुवर्द्धक होता है। वायु, कफ, गुल्म, उदर, ज्वर, कृमि, व्रण, अग्निमांद्य, कुष्ठ, श्वेतकुष्ठ, संग्रहणी, अर्श और आनाह का नाश करता है।

उपयोग—

पैर की कमजोरी पर—काजू के बीजों के दूध का लेप करना चाहिए।

बद को शीघ्र फोड़ने के लिए—काजू की कच्ची गरी और तीवर के फल को ठण्ढे पानी में एकत्र घिसकर लेप करना चाहिए।

नलविकार पर—प्रति दिन प्रातःकाल काजू के अंकुर-सहित डंठल काटकर, काली मिर्च और शक्कर के साथ तीन-चार दिन तक खाना चाहिए।

अरनी

अरनी की दो जातियाँ होती हैं। छोटी और बड़ी। बड़ी अरनी के पत्ते नोकदार और छोटी अरनी के पत्तों से छोटे होते हैं। छोटी अरनी के पत्तों में सुगंध आती है। लोग उसकी चटनी और शाक भी बनाते हैं। श्वासरोग वाले को इसका शाक अवश्य खाना चाहिए। बड़ी अरनी को संस्कृत में अग्निमंथ, हिन्दी में अरनी और अगेथू, बंगला में गनीर या आगगन्त, गुजराती में अरणी, मराठी में टाकली, कर्नाटकी में नरुवल, तैलिङ्गी में नेलि-

चेट्टु और लैटिन में क्रेरोडेन्ड्रूम फ्लोमोइडिस् कहते हैं। इसके फूल सुगन्धयुक्त होते हैं। इसकी दो जातियाँ और भी होती हैं— काली और सफेद। काली अरनी का तैल निकाला जाता है। छोटी अरनी को संस्कृत में तर्कारी और तेजोमंथ, हिन्दी मे अरनो गुजराती मे नरवेल या नानीअरणी, कर्नाटकी मे नरुवलपल्य, तैलिङ्गी में नेलिचेट्टु और लैटिन मे क्रेरोडेन्ड्रूम फ्लोमोइडिस् कहते हैं।

बड़ी अरनी का वृक्ष—तीखा, उष्ण, मधुर, कड़वा, फीका और अग्निदीपक होता है; तथा वायु, जुकाम, कफ, सूजन, अर्श, आमवात, मलावरोध, अग्निमांद्य, पाण्डुरोग, विषदोष और आँव का नाश करता है।

छोटी अरनी का वृक्ष—बड़ी अरनी के समान ही गुणकारी होता है; परन्तु विशेषकर वात-द्वारा उत्पन्न हुई सूजन का नाश करता है।

छोटी अरनी की जड़—उसी के समान गुणकारी होती है; परन्तु लेप करने, पट्टी बाँधने और सूजन का नाश करने के लिए विशेष उपयोगी होती है।

उपयोग—

सूजन पर—बड़ी अरनी के पत्तों को पीसकर पट्टी बाँधना चाहिए।

शीतज्वर पर—बड़ी अरनी की जड़ को मस्तक से बाँधना चाहिए।

स्तन में दूध लाने के लिए—छोटी अरनी का शाक बनाकर खाना चाहिए।

बाघ के काट खाने पर—बड़ी अरनी के पत्तों को नमक के साथ पीसकर बाँधना चाहिए।

त्रिदोष-गुल्म पर—बड़ी या छोटी अरनी के गरम काढ़े को गुड़ डालकर पिलाना चाहिए।

शीतपित्त पर—अरनी की जड़ का चूर्ण घी के साथ देना चाहिए।

पक्षाघात, संधिवायु और सूजन पर—रोज काली अरनी को जड़ के तैल का लेप करके सेकना चाहिए।

कृमि और बच्चों के पेट की पीड़ा पर—छोटी अरनी के पत्तों का रस लगभग चार तोला तक लेप करना चाहिए।

गूलर

गूलर का वृक्ष सर्वत्र प्रसिद्ध है। इसके फलों की आकृति अंजीर के जैसी होती है। इसे संस्कृत में उदुम्बर, हिन्दी में गूलर या उदुम्बर, गुजराती में उंबरो या उंबरड़ो, मराठी में उबर, कर्नाटकी और मलयलम में अत्ति, तैलिङ्गी में अत्तिमानं, तामोल में अक्किमार, फारसी में अंजीरे या यादम, अरबी में जमीज, लैटिन में फाइक्स ग्लोमिरेटा और अंग्रेजी में फिग ट्री कहते हैं। पके गूलर को खाया जाता है। कच्चे का शाक बनता है। इसकी छाया शीतल और सुखकारी होती है। इसकी लकड़ी बहुत चिकनी और मजबूत होती है। इसके तख्ते इतने मजबूत होते हैं कि एकाएक कुल्हाड़ी से भी नहीं कट सकते। जिस स्थान पर गूलर का वृक्ष उगता है, उसके दाहनी ओर अथवा निकट एकाध झरना,

कूआँ या जलाशय अवश्य होता है। गूलर के वृक्ष के निकट कूआँ खोदने से शीघ्र ही पानी निकल आता है। इसकी छाया में खुदे हुए कूएँ का पानी बहुत गुणकारी होता है।

* गूलर का वृक्ष—शीतल, गर्भस्थापक, व्रणरोपक, रूक्ष, मधुर, फीका, गुरु, अस्थिसंधानकर और वर्णकर होता है; तथा कफ, पित्त, अतिसार और योनिरोग का नाश करता है।

गूलर की छाल—शीतल, दुग्धप्रद, फीकी, गर्भ के लिए हितावह, और व्रणनाशक होती है।

कच्चे गूलर—स्तंभक, फीके और गुणकारी होते हैं; तथा तृषा, पित्त, कफ और रक्तविकार का नाश करते है।

साधारण गूलर—मीठे, शीतल और फीके होते हैं। यह पित्त, तृषा और मोह को उत्पन्न करनेवाले तथा वमन, रक्तस्राव और प्रदर का नाश करनेवाले होते हैं।

पके गूलर—फीके, मधुर, कृमिकर, जड़, रुचिकर, अति शीतल, और कफकर होते हैं; तथा रक्तदोष, पित्त, दाह, क्षुधा, तृषा, श्रम, प्रमेह, शोष और मूर्च्छा का नाश करते हैं।

पुराने गूलर—फीके, खट्टे, रुचिकर, दीपन, मांसवृद्धि-कर, रक्तदोषकर और जड़ होते हैं।

उपयोग—

वायु से अंग जकड़ जाने पर—गूलर का दूध लगाकर उस पर रुई चिपका देनी चाहिए।

---

* गूलर वृक्ष आमाशय के लिए हानिकारक और ज्वर को उत्पन्न करनेवाला होता है। इसके फलों में असंख्य कीड़े रहते हैं। लोग इन्हें खाते समय कीड़ों को उड़ा देते हैं, परन्तु बहुत से लोग उन्हें बिना देखे ही खा जाते हैं। यह ठीक नहीं।

रक्तपित्त पर—पके हुए गूलर, गुड़ या शहद के साथ खाना चाहिए। अथवा गूलर की जड़ को घिस कर शक्कर के साथ खाना चाहिए।

सिंगिया के जहर पर—गूलर की छाल के रस में घी मिलाकर गरम करके देना चाहिए।

सोमल के विष पर—गूलर की छाल या पत्तों का आधा सेर रस देना चाहिए। यह औषधि ढोरों को भी दी जा सकती है।

आँख दुखने पर—गूलर के दूध का आँखों पर लेप करना चाहिए।

फोड़े पर—गूलर का दूध लगाकर उस पर पतला काग़ज़ चिपकाना चाहिए।

आमातिसार पर—बताशे में गूलर के दूध की चार-पाँच बूँदें टपकाकर खिलाना चाहिए।

रक्तातिसार पर—गूलर की जड़ का पानी देना चाहिए।

गरमी पर—पके हुए और कीड़े-रहित गूलरों में पीसी हुई मिश्री डालकर प्रातःकाल खाना चाहिए।

बच्चों के शरीर से शीतला की गर्मी दूर करने के लिए—गूलर के रस में मिश्री डालकर पिलाना चाहिए।

गर्भिणी के अतिसार पर—गूलर के जड़ का पानी देना चाहिए।

भस्मकरोग (भूख अधिक लगना) पर—गूलर की छाल को स्त्री के दूध मे पीसकर देना चाहिए।

पित्तज्वर पर—गूलर की जड़ का रस शक्कर के साथ पिलाना चाहिए।

बिच्छू के विष पर—गूलर के अंकुरों को पीसकर दंश पर लगाना चाहिए।

विशूचिका पर—गूलर का रस देना चाहिए।

कर्णमूल पर—गूलर और कपास का दूध मिलाकर लगाना चाहिए।

कंठमाल पर—गूलर के पत्तों पर उठे हुए काँटों को मोठे दही मे पीसकर शक्कर के साथ नित्य एक बार देना चाहिए।

शीतला कम निकलने के लिए—गूलर के पत्तों पर उठे हुए काँटों को गाय के ताजे दूध में पीसकर उनका रस निकाले और उसमे थोड़ी शक्कर डालकर शक्ति के अनुसार पिये। यह औषधि शीतला का ज्वर आते ही पी लेना चाहिए।

गरमी के कारण जीभ पर छाले उठ आने पर—गूलर के पत्तों पर उठे हुए कांटे और मिश्री को पीसकर देना चाहिए।

नाक में से लहू गिरने पर—पके गूलर में शक्कर भरकर घी मे तले, पश्चात् उसमे काली मिर्च तथा इलायची के दानों का आधा-आधा माशा चूर्ण डालकर रोज़ प्रातःकाल सेवन करे, और बैंगन का रस मुख पर लगाए।

दाह पर—गूलर के दूध में शक्कर डालकर पिलाना चाहिए।

बच्चों के गाल पर सूजन आने पर—गूलर के दूध का गाढ़ा लेप करना चाहिए।

गाँठ पर—गूलर का दूध लगाना चाहिए।

बच्चों के आँव पर—गूलर के दूध की पाँच-छः बूँदें शक्कर के साथ देनी चाहिए।

प्यास लगने पर—गूलर की छाल अथवा कच्चे फल

पानी में घिसकर पिलाना चाहिए। ज्वर से या किसी अन्य कारण से लगनेवाली प्यास बन्द होती है।

भयंकर खाँसी पर—गूलर का दूध तालू पर चुपड़ना चाहिए।

उपदंश (गर्मी) पर—चार तोला गूलर की छाल का सेर भर पानी में अष्टमांश काढ़ा बनाकर उसमें मिश्री डालकर पिलाना चाहिए। इससे उपदंश की सब शिकायतें दूर होती हैं।

घाव भरने के लिए—गूलर की छाल से घाव धोने से घाव जल्दी ही भर जाता है।

हिंगोट

हिंगोट के वृक्ष दक्षिण की ओर के वन में जहाँ-तहाँ पाये जाते हैं। इसका वृक्ष बहुत ऊँचा होता है। इस पर काँटे भी होते हैं। इसे संस्कृत में इंगुदी, हिन्दी में हिंगोट या गोंदी, गुजराती में इङ्गोरिया, मराठी में हिंगणी या हिंगणबेट, बंगला में इङ्गोट, कर्नाटकी में इङ्गलगिड़, इङ्गला या हिंगुल, तैलिङ्गी में गरा, अरबी में हिलेलजे, लैटिन में बेलेनाइट्स या रोकसबर्धिआइ और अंग्रेजी में डेलिल कहते हैं। अकाल के समय गरीब लोग इसके फलों का गूदा और लकड़ी खाकर निर्वाह करते हैं।*

---

* सुश्रुत में हिंगोट के फल के गूदे को मेदकफनाशक, योनिदोषनाशक और गुल्मनाशक माना है। इसके रस से लोग कपड़े भी धोते हैं; परन्तु जिस प्रकार विदेशी तेजाब द्वारा कपड़े धोने से कपड़े गल जाते हैं, उसी प्रकार इसके द्वारा धोने से भी कपड़े जल्दी फट जाते हैं।

हिंगोट का वृक्ष—मदगंधी, तीखा, लघु, कड़वा, गरम और रसायन होता है; तथा कृमि, वायु, शूल, विष, कोढ़, व्रण, कफ, ग्रहपीड़ा और भूतबाधा का नाश करता है।

इसके फूल—मधुर, स्निग्ध, उष्ण और कड़वे होते हैं; तथा वायु और कफ का नाश करते हैं।

उपयोग—

नहारू पर—हिंगोट की जड़ की छाल और हींग को एकत्र कूटकर नहारू पर बाँधे। पट्टी को चौथे दिन खोलना चाहिए।

मुँहासों पर—हिंगोट के गूदे को ठण्डे पानी में घिसकर मुख पर लेप करना चाहिए।

स्तनरोग पर—हिंगोट की जड़ को घिसकर गरम करके लेप करे और धतूरे के पत्तों को सेक कर बाँधे। यह औषधि तीन दिन तक लगानी चाहिए।

आँखों से पानी बहने पर—हिंगोट के फल को पानी में घिसकर अंजन करना चाहिए।

शूल पर—हिंगोट की जड़ को पानी में घिसकर पिलाना चाहिए। अथवा हिंगोट के फल का गूदा देना चाहिए।

कुत्ते के विष पर—गुड़ खिलाकर ऊपर से हिंगोट की छाल का चूर्ण मट्ठे में डालकर पिलाना चाहिए।

कॉलरा पर—हिंगोट की छाल का चूर्ण दही के साथ देना चाहिए।

खाँसी पर—हिंगोट के गूदे की गोली बनाकर खाना चाहिए।

सिरहटा

यह एक जंगली वृक्ष है। इसके पत्ते कचनार के पत्तों की तरह और उससे कुछ मोटे होते हैं। इसमें लम्बी फलियाँ लगती हैं। इसकी लकड़ी जलाने के काम में अधिक व्यवहार नहीं की जाती। इसके पत्ते तमाखू की बीड़ी बनाने के काम में भी आते हैं। इस निरर्थक दुर्व्यसन से लोगों का बहुत ही नुकसान होता है; परन्तु इसका प्रचार भारत के कई भागों में बहुत बढ़ गया है। इसकी अन्तरछाल से बन्दूक की टोपी बनाई जाती है। इसकी छाल को गरम पानी में खौलाया जाता है, जिससे वह रेशेदार बन जाती है। इसकी अन्तरछाल से धागा भी बनाया जाता है, जो टिकाऊ और मज़बूत होता है। इसकी फलियाँ बालकों को घुट्टी में घिसकर दी जाती हैं। इस वृक्ष को दक्षिण-निवासी 'कंचन वृक्ष' नाम से भी पुकारते हैं। इसको संस्कृत में आमंतक, हिन्दी में सिरहटा, मराठी में आपटा, गुजराती में आशोत्री या आसुन्दरो, कनाड़ी में अस्मर, आरी, आसु, कोंकण में सिद्ध और लैटिन में मिलाइना आर्बोरिया कहते हैं।

सिरहटे का वृक्ष—फीका, खट्टा, शीतल तथा ग्राहक होता है; और वात, पित्त, कफ, मेह, दाह, तृषा, पिशाचबाधा, गण्डमाल, व्रण, विषमज्वर, कण्ठरोग, रक्तविकार, तथा अतिसार का नाश करता है। इसकी फलियाँ शीतल, ग्राहक, स्वादु, रुच, गुरु, दोषद्रावक, मलरोधक, आध्मानकर्ता और कफ तथा वायु का नाश करनेवाली होती हैं।

उपयोग—

वातगुल्म तथा शूल पर—सिरहटे के पत्तों के रस में काली मिर्च का चूर्ण और सात बूँद तिल का तैल डालकर पिलाये।

प्रमेह पर—सिरहटे के पत्तों को रात में पानी में भिगोकर रख दे और सुबह उसका चार पैसे भर रस निकाल कर उसमें दो पैसे भर मिश्री मिलाये और उसे पिलाये।

शोफोदर पर—सिरहटे के पत्ते, करेले के पत्ते और भाँगरे को समभाग लेकर और इनका रस निकालकर उसमें इन्द्रजव की जड़ के ऊपर का मूल घिसकर पिलाना चाहिए।

धातुक्षीणता पर—सिरहटे की नरम टहनियों का रस गाय के दूध में मिलाये और उसमें मिश्री डालकर सेवन करे।

ज्वर में सिरदर्द पर—सिरहटे के पत्तों को पीसकर कपाल पर लेप करना चाहिए।

दूसरे महीने में गर्भस्राव होने पर—सिरहटे की छाल, काले तिल, मजीठ और शतावरी का चूर्ण दूध के साथ देना चाहिए।

सूजन पर—सिरहटे के पत्तों का रस दूध में मिलाकर देना चाहिए।

अनन्नास

अनन्नास के वृक्ष के पत्ते केवड़े के पत्तों के जैसे होते हैं। यह वृक्ष अधिकतर खेतो या सड़कों के एक ओर उगता है। इस वृक्ष के मध्य भाग में फल लगते हैं। फलो को संस्कृत में अनन्नास

या कौतुकसंज्ञक, हिन्दी में अनन्नास, गुजराती और मराठी में अननस, कर्नाटकी में अनासु या इनासु, तामील और तैलिङ्गी में पारोंगताळेतु, पारेंगी पेळाकायि, मलयलम में अनानस, लैटिन में अननासा सेंढ़िवा और अंग्रेजी में पाइन एपल कहते हैं। इस वृक्ष पर काँटे होते हैं। इसकी डालियाँ काटकर बो देने से उग आती हैं। अनन्नास का रंग कुछ-कुछ पीला और लाल होता है। इसका मुरब्बा बनाया जाता है। यह फल बहुत स्वादिष्ट होता है। इसके बीच का भाग हानिकारक होता है, इसलिए खाते समय उसे निकाल देना चाहिए। यदि भूल से वह खाने में आ गया हो, तो तुरन्त प्याज, दही और शक्कर खाना चाहिए। उपवास के समय अनन्नास का आहार नहीं करना चाहिए। इससे यह विष के जैसा असर करता है। गर्भिणी स्त्री के लिए यह वर्ज्य है।

कच्चा अनन्नास—रुचिकर, हृद्य, गुरु, कफपित्तकर, ग्लानिनाशक और श्रमनाशक होता है।

पक्का अनन्नास—मीठा और पित्तनाशक होता है; तथा रसविकार और गरमी के विकार का नाश करता है।*

उपयोग—

अजीर्ण पर—अच्छे पके हुए अनन्नास की चीरें करके उस पर पिसी हुई काली मिर्च और सेंधा नमक भुरभुराकर खाना चाहिए।

कृमि पर—अनन्नास खाना चाहिए।

पेट में बाल चला जाने पर—पक्का हुआ अनन्नास खाना

* अनन्नास कण्ठनलिका के लिए हानिकारक होता है। शक्कर और बड़ी सौंफ के मुरब्बे के साथ यह कोई हानि नहीं करता।

चाहिए। इससे पेट में बाल चले जाने से उत्पन्न हुई पीड़ा नष्ट हो जाती है।

पेशाब अधिक आने पर—पके हुए अनन्नास को काटकर उसमें काली मिर्च का चूर्ण और शक्कर मिलाकर खाना चाहिए।

गूगल

गूगल के वृक्ष मारवाड़ और सिन्ध देश मे होते हैं। यह वृक्ष रेतीले और पहाड़ी स्थानों पर अधिक उत्पन्न होते हैं। इसके पत्ते छोटे-छोटे नीम के पत्तों की तरह होते हैं और उनके अग्र भाग मे नोक नहीं होती। इसके फूल लाल रंग के होते हैं। वे बड़े पतले, पाँच पंखुड़ीवाले और मंजरी के बीच में होते हैं। इसके फल छोटे बेर के समान और तीन तरफ़ से नुकीले होते हैं। ये उदरपीड़ा का नाश करते हैं। इसके वृक्ष के गोंद का नाम ही गूगल है। ये वृक्ष सिंगापुर के पानी से घिरे स्थान मे भी बहुत होते हैं। ग्रीष्म-ऋतु में गरमी के कारण इस वृक्ष से रस भी झरता है, उसको भी गूगल कहते हैं। धूप आदि के कामों में इसका बड़ा उपयोग होता है। इसकी धूप से वायु शुद्ध होती है और वायुस्थित रोगकारक जन्तुओं का नाश होता है। यह इसमे एक बड़ी विशेषता है। देव-मन्दिरों में हमेशा धूप जलाने के लिए कहा गया है, जिसका कारण यही होना चाहिए। गूगल को संस्कृत में गुग्गुल, हिन्दी में गूगल, गूगर, बङ्गला में गुग्गुल, तैलिगी में माहिषाक्षी, कनाड़ी में गुग्गुल, फ़ारसी में बोएजहूदान, अरबी में मुश्किलेअर्जक, लैटिन में बालसमोडेन्डन्-रॉक्सबुर्घीआई

और अंग्रेज़ी में इण्डियन डेलियम् कहते हैं। गूगल शुद्ध किये बिना व्यवहार में नहीं लाई जाती, तब भी कई शूल के रोगी कच्ची गूगल को खा जाते हैं। रोगियों को गूगल के धुएँ से बचाना चाहिए। यदि उनके मुँह से धुआँ लग जाता है, तो मुँह सूज जाता है और दशा भयङ्कर हो जाती है। इस प्रयोग में गूगल हिंगुल के धुएँ की तरह ही रसायन है, इसलिये इसका धुआँ मुँह से नहीं लगने दिया जाता, तब भी ज्वर के रोगी को साव-धानी से गले तक मोटे और मजबूत कपड़े उढ़ा कर गूगल की धूनी दी जाती है। इससे सारे शरीर से प्रस्वेद होकर ज्वर का नाश होता है। इस धूनी का प्रयोग रात्रि के नौ बजे से बारह बजे तक ही करना चाहिए।

गूगल—पाँच प्रकार की होती है—महिषाक्ष, महानिल, कुमुद, पद्म और हिरण्य। यह कड़वी, तीखी, रसायन, उष्ण, विशद, पित्तल, सारक, लघु, फीकी, पाचक, वृष्य, सूक्ष्म, स्वर्य, अग्निदीपक, मधुर, बल्य, तीक्ष्ण, स्निग्ध, सुगन्धित, पौष्टिक, कान्तिकर, भेदक और टूटी हुई हड्डी को जोड़नेवाली होती है। कफ, वायु, कास, कृमि, वातोदर, श्लेष्म, सूजन, अर्श, प्रमेह, मेदोरोग, वात, रक्त, रक्तदोष, ग्रन्थिरोग, गण्डमाल, व्रण, अजीर्ण, कण्डू, कुष्ठ, क्लै, आमवायु, तथा अश्मरी का नाश करती है। नई गूगल धातुवर्द्धक और वृष्य होती है तथा पुरानी अत्यन्त लेखन।

महिषाक्ष गूगल—महिषाक्ष गूगल को भैंसा गूगल भी कहते हैं। यह और महानिल हाथी के, कुमुद और पद्म घोड़े के तथा हिरण्य मनुष्य के उपयोग में आती है। कभी-कभी महिषाक्ष भी मनुष्य के उपयोग में आती है। यह गूगल मधुर, वातनाशक,

फीकी, पित्तनाशक, कफनाशक और कड़वी होती है। यह सब दोषों को नाश करती है।

उपयोग—

सिरदर्द पर—पानी में घिसकर गूगल को कपाल पर लेप करना चाहिए। इससे सिरदर्द का नाश होता है।

काँखविलाई पर—गूगल और इमली के बीजों को पानी में घिसकर लेप करना चाहिए।

दाढ़ दुखने पर—गूगल को पानी में घिसकर दाढ़ पर लगाना चाहिए।

सरदी से शरीर दुखने पर—गूगल और सोंठ को एक साथ घिसकर लेप करना और सेकना चाहिए।

कानखजूरे के काटने पर—गूगल की धूनी देनी चाहिए।

गुल्म और शूल पर—शुद्ध गूगल को गो-मूत्र के साथ देना चाहिए।

औषधि-क्रिया—

योगराज गूगल—बायबिडङ्ग, धनियाँ, हींग, गजपीपर, काली पाट, जीरा, अतीस. पीपल, पिपरामूल, सोंठ, चित्रकमूल, अजमोद, कपीला, भटकटैया की जड़, चवक, रेणुकबीज, मरोड़ फली, बच, इन्द्रजव, सफेद शिरस और कटु तथा सफेद सँहजन— इन सब औषधियों मे इनसे दुगुना त्रिफला और तिगुनी शुद्ध गूगल डालकर उसकी गोलियाँ बना ले। 'इन गोलियों को शहद के साथ खाना चाहिए। इससे संग्रहणी, वायु, वृद्धत्व, शुक्रावरोध, पाण्डुरोग, अग्निमांद्य, हृद्रोग, त्वग्रोग, शूल, प्रमेह, व्रण, मूलव्याधि, अरुचि, वातरक्त, खाँसी, अपस्मार तथा राजयक्ष्मा

का नाश होता है। इन गोलियों को अधिकतर रास्ना (रहसनी) के काढ़े के साथ दिया जाता है। उपर्युक्त क्रिया के अनुसार गोलियाँ बनाने से आमवात पर अत्यन्त ही लाभदायक प्रभाव पड़ता है। गोलियाँ बनाने की विधि 'बोपदेव शतक' के अनुसार कही गई है।

दूसरी योगराज गोलियाँ—सोंठ, पीपरामूल चवक, चित्रक, कालीमिर्च, अजमोद, जीरा, शाहजीरा, रेणुकबीज, इन्द्रजव, काली पाट, वायबिडंग, गजपीपर, सरसों, कुटकी, अतीस, भटकटैया की जड़, मरोड़फली, तमालपत्र, देवदारु, पीपर, कोष्ठ, रास्ना, नागर मोथा, सैंधा नमक, इलायची, गोखरू, त्रिफला, धनियाँ, जवाखार, तिल, सेकी हुई हींग, तज, खस और कोष्ठ—इन सब को सम भाग लेकर चूर्ण करे, तथा उसमें चूर्ण के बराबर ही शुद्ध गूगल मिलाकर घी में खूब घोंटे। सब चूर्ण के एक रस हो जाने पर उनका गोला बनाकर घी के बर्तन में रख ले। उसमें से रोज आधा तोला का सेवन किया करे। यह योगराज गूगल खास करके जरा और व्याधि का नाश करती है। इसके सेवन करने में मैथुन, भोजन और पान का पथ्य नहीं है। यह योगराज गूगल सम्पूर्ण वातरोग, आमवात, अपस्मार, वातरक्त, कुष्ठ, दुष्ट व्रण, अर्श-रोग, प्लीहा, गुल्म, उदर, आनाह, अग्निमांद्य, श्वास, कास, अरुचि, प्रमेह, नाभिशूल, कृमि, क्षय हृद्रोग, शुक्रदोष, उदावर्त और भगन्दर का नाश करती है। यह गूगल तीन माशा से लेकर प्रति सप्ताह थोड़ा-थोड़ा सात माशा तक बढ़ानी चाहिए। यह सर्व प्रकार के वातरोग पर रास्ना के काढ़े में, मेहरोग पर दारु हल्दी के काढ़े मे, वातरक्त पर गिलोय के काढ़े में, पाण्डुरोग पर गो-

मूत्र में, मेदवृद्धि पर शहद में, कुष्ठ पर नीम के काढ़े में, शूल पर मूली के काढ़े में, चूहे के विष पर पहाड़ी मूली के काढ़े में, उग्र नेत्ररोग पर त्रिफला के काढ़े में तथा सम्पूर्ण उदररोग पर विषखपरा के काढ़े में मिलाकर देना चाहिए।

किशोर गूगल—गिलोय २ सेर, गूगल १ सेर और त्रिफला १ सेर को १५ सेर पानी में डालकर काढ़ा करे। जब वह आठ सेर रह जाय, तो उसे छानकर पुनः उबाले। जब वह गाढ़ा हो जाय, तो उसमें पीपर, काली मिर्च, बायविडङ्ग, सोंठ और त्रिफला—इन सब औषधियों को दो-दो तोला लेकर इनका चूर्ण करके डाले तथा निशोथ और दन्तीमूल को एक-एक तोला डाले। चार तोला गिलोय पीसकर डाले। जब यह गाढ़ा हो जाय, तो तीन-तीन माशा की गोलियाँ बना ले। यह किशोर गूगल सूजन, व्रण, गुल्म, कुष्ठ, उदररोग, वातरक्त खाँसी, अग्निमांद्य, पाण्डु तथा प्रमेह का नाश करती है।

द्वात्रिंशक (बत्तीसा) गूगल—त्रिकटु, त्रिफला, नागर-मोथा, वायबिडङ्ग, चवक, चित्रक, तज, बड़ी इलायची, पीपरा-मूल, हाउबेर, देवदारु, चित्रक, पुष्कर मूल, कुलिंजन, अतीस, हल्दी, दारु हल्दी, अमलतास, जीरा, बड़ी सौंफ, धमासा, संचल, जवाखार, सुहागा, गजपीपर और सैंधा को सम भाग ले और इन सब औषधियों के बराबर गूगल लेकर क्रिया के अनुसार तैयार कर के बेर के बराबर गोलियाँ बना ले और शहद अथवा घी के साथ प्रातःकाल सेवन करे। इससे आम, उदावर्त अण्ड-वृद्धि तथा गुदा के कृमि का नाश होता है और महाज्वर से पीड़ित, भूतबाधावाले और आनाह, उन्माद, कुष्ठ, पार्श्वशूल, हृद्रोग,

गृध्रसी, हनुस्तम्भ, पक्षाघात, अपतानक, शोक, प्लीहा, पाण्डु और अजीर्ण रोगवाले मनुष्य के लिये यह हितकारी है। धन्वन्तरी-कृत यह महायोग सर्व रोगों का नाश करनेवाला है।

विश्वाद्य गूगल—शतावरी, एरण्डमूल, सोंठ, दारु हलदी, कोष्ठ, सैंधा, रास्ना और गिलोय, इन सबके चूर्ण में इससे दुगुना शुद्ध गूगल मिलाये और गोलियाँ बना ले। एक-एक गोली देने से और पथ्य का पालन करने से भ्रमवात का नाश होता है।

दूसरी विधि—सोंठ, पीपरामूल, वायबिडंग, देवदारु, सैंधा, रास्ना, चित्रक, अजवाइन, काली मिर्च, कोष्ठ तथा हर्रे को सम भाग लेकर उसमे उसस दुगुनी शुद्ध गूगल मिलाकर घी के साथ दे। इससे वायु, मृगी, गुल्म, शूल, कफ और गृध्रसी का नाश होता है।

रास्नादि गूगल—रास्ना, गिलोय का सत्त्व, एरण्डमूल, देवदारु और सोंठ समभाग तथा इन सबके बराबर शुद्ध गूगल लेकर सबको खरल करे और खाये। इससे वायु, शिरोरोग, नाड़ी-व्रण तथा भगन्दर का नाश होता है।

कांचनार गूगल—कांचन वृक्ष की छाल ४० तोला, हर्रे, बहेड़ा, आँवला आठ-आठ तोला, सोंठ, पीपर, काली मिर्च चार-चार तोला, बरना चार तोला, और इलायची, तज तथा तमाल-पत्र एक-एक तोला ले और खरल कर इनका चूर्ण करे। फिर इसके समभाग शुद्ध गूगल ले और उसको पीसकर चूर्ण में मिला दे तथा चार-चार माशा की गोलियाँ बनाकर प्रातःकाल सोंठ या हर्रे अथवा खैर की अन्तरछाल के काढ़े में गरम पानी के साथ एक-एक गोली दे। इससे भयङ्कर गण्डमाल, अजीर्ण, फुंसियाँ, व्रण, गुल्म तथा भगन्दर रोग दूर होते हैं।

त्रिफला गूगल—हर्रे, बहेड़ा, आँवला और पीपर को चार-चार तोला ले और उनका चूर्ण करे। फिर बीस तोला शुद्ध गूगल ले और उसको खूब पीसकर उसमें वह चूर्ण मिला दे और उसे पुनः खरलकर गोलियाँ बना ले और रोगी को उसके बल के अनुसार दे। इससे विद्रधि, नाड़ीव्रण, गण्डमाल, भगन्दर, सूजन, गुल्म, तथा मूलव्याधि का नाश होता है।

गोक्षुरादि गूगल—गोखरू ११२ तोला ले और उनको कुछ खरल कर ६ गुने पानी में मिला दे और उसको आग पर पकाये। जब पानी आधा रह जाय, तो उसमें २८ तोला शुद्ध गूगल अच्छी तरह खरल करके डाले। फिर जब वह खूब गाढ़ा हो जाय, तब तक उसे आग पर ही रहने दे। इसके पश्चात् उसमें सोंठ, काली मिर्च, पीपर, हर्रे, बहेड़ा, आँवला और नागरमोथा—इन सात औषधियों को चार-चार तोला लेकर, चूर्ण करके उस पाक में मिला दे और फिर गोलियाँ बना ले। इससे प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, प्रदर, मूत्राघात, वातरक्त, वातरोग, धातुविकार और पथरीरोग का नाश होता है।

लाक्षादि गूगल—लाख, सन्धिनी, ऐन (रक्तार्जुन), असगन्ध, नागरबेल और शुद्ध गूगल का चूर्ण करे। यह खुली और टूटी हड्डी को जोड़ता और शरीर को वज्र के समान बनाता है।

आभादि गूगल—बबूल के बीज एक भाग, त्रिफला तीन भाग और त्रिकटु तीन भाग ले और उसमें उसके बराबर ही शुद्ध गूगल डालकर टूटी हुई हड्डी को जोड़ने के लिये व्यवहार में लाये। घी तथा शहद के साथ इसे खाना चाहिए।

विडंगादि गूगल—वायबिडंग, हर्रे, बहेड़ा, आँवला, सोंठ,

काली मिर्च तथा पीपर के समभाग गूगल लेकर घी में खरल करके गोलियाँ बनाकर खाये। पथ्य का पालन करे। इससे दुष्ट व्रण, नाड़ीव्रण, अजीर्ण, मेह और कुष्ठरोग का नाश होता है।

गुग्गुलादि लेप—गूगल, त्रिफला, सोंठ, काली मिर्च और पीपर को समभाग ले और पीसकर लेप करे। इससे दुष्ट नाड़ी-व्रण और भगन्दर का नाश होता है।

अमृतादि गूगल—गिलोय, कड़वे परवलों के मूल, सोंठ, काली मिर्च, पीपर, त्रिफला और बायबिडङ्ग में समभाग गूगल डालकर एक-एक तोला की गोलियाँ बना ले। प्रति दिन एक-एक गोली का सेवन करे। इससे व्रण, वातरक्त, गुल्म, उदररोग, पाण्डु और सूजन का नाश होता है।

पथ्या गूगल—हर्रे १००, बहेड़ा २००, आँवले ४०० और शुद्ध गूगल ६४ तोला को १०२४ तोला पानी में रात्रि मे भिगो दे और प्रातःकाल उसका काढ़ा करे। जब वह आधा रह जाय तो उसको छानकर पुनः लोहे के बर्तन मे डालकर उसका काढ़ा करे। जब काढ़ा बन जाय तो उसे आग से उतार ले और उसमें बाय-बिडङ्ग, दाँतीमूल, त्रिफला, गिलोय, पीपर, नवसादर, सोंठ तथा काली मिर्च का दो-दो तोला चूर्ण डाले। इतना करने पर यह गूगल तैयार होती है। यथेष्ट भोजन और आचरण करनेवाले मनुष्य को भी इस गूगल का सेवन करना चाहिए। इससे प्रत्येक रोग का नाश होता है। गृध्रसी, प्लीहा, उग्र जठर, पंगुता, पाण्डुत्व, कण्डू, कृमि और वातरक्त को यह शर्तिया नष्ट करती है। इस गूगल का सेवन करने से मनुष्य अप्रतिम सामर्थ्यवान, बल में हाथी के समान और वेग में घोड़े की तरह हो जाता है। यह पथ्या

गूगल आयुष्य, चक्षुर्बल और पुष्टिप्रदान करती है तथा यह विष और उपदंशनाशक होती है।

गूगल में अपथ्य—खट्टा, तीखा, अधिक भोजन, मैथुन, श्रम, धूप, मद्य और क्रोध।

जोड़ों के दर्द पर—तीन माशा शुद्ध की हुई गूगल एक तोला घी और तीन माशा शहद के साथ देना चाहिए। शरीर में दर्द होने पर भी यही औषधि देनी चाहिए।

मूलव्याधि (अर्श) पर—तीन माशा शुद्ध गूगल गरम पानी के साथ देना चाहिए। यह औषधि दिन मे दो बार अर्थात् सुबह-शाम देनी चाहिए। इससे दस्त साफ होकर मूलव्याधि नष्ट होती है। पेट फूलने पर भी यही औषधि देनी चाहिए।

सूजन पर—चार तोला कुलथी (कुलित्थ) को कूटकर आधा सेर पानी में उसका अष्टमांश काढ़ा बनाये और छानकर उसमें एक माशा शुद्ध गूगल डालकर पिलाये।

आमवात यानी शरीर फूलकर अत्यन्त दर्द करे और चलने-फिरने में असमर्थता होने पर—अँगूठे के बराबर गिलोय के टुकड़े और एक छोटे सोंठ के टुकड़े को कूटकर आधा सेर पानी में उनका अष्टमांश काढ़ा बनाये और छानकर उसमें एक माशा गूगल डालकर सुबह-शाम पिलाये। एक सप्ताह में शरीर का दर्द दूर होकर शरीर हलका हो जाता है।

गंडमाला, और गलग्रंथि पर—एक तोला गोरखमुंडी का आधा सेर पानी में अष्टमांश काढ़ा बनाकर छान ले। फिर उसमें एक माशा गूगल डालकर रोज पिलाना चाहिए। लगातार तीन महीने तक पीने से गंडमाला अच्छी हो जाती है। ऐसा अनुभव है।

घाव भरने के लिए—त्रिफला के काढ़े में शुद्ध की हुई एक माशा गूगल को शहद में मिलाकर और उसमें पैसे भर घी डालकर चाटना चाहिए। इससे घाव जल्दी ही भर जाता है।

मेद पर—एक छटाँक गोमूत्र में एक माशा गूगल डालकर रोज सुबह एक बार पीने से इक्कीस दिन में मेद में कमी होती है और अशक्ति जरा भी नहीं आती।

हिचकी पर—गूगल को पानी मे घिसकर गरम करे और छाती के दो अंगुल नोचे पूरे पेट पर गाढ़ा लेप करे। हिचकी तुरन्त बन्द होती है।

फोड़े, फुंसी या सूजन आदि किसी भी कारण से शरीर पर गाँठ हो जाने पर—गूगल को पानी में घिसकर गरम करके लेप करना चाहिए। इससे सब प्रकार की गाँठें बैठ जाती या फूट जाती हैं।

हड्डी टूट जाने पर—गूगल को पानी में गाढ़ी-गाढ़ी पीसे और टूटी हुई हड्डी को अपने स्थान पर फिट करके उसका लेप करे। ऊपर से लकड़ी की पट्टी बाँधे रखना चाहिए। इसे जल्दी न खोलना चाहिए। इससे टूटी हुई हड्डी जुड़ जाती है।

गूगल को शुद्ध करने की विधि—हर्र, बहेड़े और आँवले चार-चार तोला लेकर अस्सी तोला पानी में उनका काढ़ा बनाये। आधा रहने पर छान ले और उसमें बीस तोला गूगल डालकर पकाये। जब काढ़े में गूगल पिघल जाय, तब उसे हिलाये, नहीं तो जलने की गन्ध आने लगेगी। यही शुद्ध गूगल कहलाती है। दवाइयों में इसका व्यवहार करना चाहिए।

खजूर

खजूर का वृक्ष बहुत ऊँचा होता है। इसे संस्कृत में खर्जूर, हिन्दी मे खजूर, पिण्डखजूर या छुहारा, गुजराती में खजूरी, बँगला में खोहारा, मराठी में खजूर या खारिक, कर्नाटकी में खर्जूर या उत्तत्ती, तैलिङ्गी में खजूर पुपुण्ड, फारसी में खुमतिर या खुर्माखुश्क, अरबी में तमररुतब, लैटिन में फिनिक्स मोंटेना और अंग्रेज़ी में डेट पाम कहते हैं। इससे पिंडखजूर उत्पन्न नहीं होती। इसमें पिंडखजूर के जैसे फल आते हैं; परन्तु लोगों को पकाने की विधि याद न होने के कारण या यहाँ की वायु खराब होने के कारण वे नहीं पकते। अरब और ईरान मे यह बहुत होता है। जिन फलों को अधकच्चा सुखा लिया जाता है, उन्हे छुहारा कहते हैं। अरबनिवासी इन्हीं को खाकर बहुत दिन व्यतीत कर देते हैं। खजूर के फल पाचक और पौष्टिक होते हैं। इनकी गुठलियों का तैल निकाला जाता है। वह जलाने और औषधियों में डालने के काम में आता है। खजूर के पत्तों से पंखे, झाडू आदि कई चीजें बनाई जाती है। इसकी लकड़ी जलाने के काम मे आती है। गरमी के दिनों में लोग इसके फलों का शरबत बनाकर पीते हैं *।

खजूर का वृक्ष—वृष्य, स्वादिष्ट, शीतल और गुरु होता है; तथा अग्निमांद्य, कृमि, धातुवृद्धि, तृप्ति, और पुष्टि करता है,

* इसकी और छुहारे की गुठलियाँ तृषा को रोकनेवाली होती हैं। प्रसूता स्त्री को प्यास लगने पर पानी के बदले बार-बार यहीं गुठलियाँ देना चाहिए। यह प्यास को शीघ्र रोक देती है।

हृद्य, बलकर, दुर्जर और स्निग्ध होता है; तथा रक्तपित्त, दाह, श्वास, कफ, श्रम, क्षतक्षय, विष, तृष्णा, शोष और अम्लपित्त का नाश करता है।

सुलेमानी छुहारे—भ्रान्ति, श्रम, मूर्च्छा, रक्तपित्त और दाह का नाश करते हैं।

उपयोग—

रेचन के लिए—रात के समय खजूर के फलों को पानी में गलाकर प्रातःकाल मसले और छानकर पिये।

मूलव्याधि पर—छुहारे की गुठलियों को बारीक पीसकर धूनी देना चाहिए।

खाज पर—छुहारे की गुठलियों को जलाकर उसकी राख में कपूर और घी मिलाकर लेप करना चाहिए।

मस्तक दुखने पर—छुहारे की गुठली को घिसकर लेप करना चाहिए।

घोड़े को सर्दी होने पर—छुहारे की गुठली का चूर्ण आटे में मिलाकर देना चाहिए।

आमवात पर—पाव भर खजूर के फलों को गलाकर उनका पानी पिलाना चाहिए।

जीर्णज्वर पर—छुहारे, सोंठ, अंगूर, शक्कर और घी को दूध में उबालकर पिलाना चाहिए।

दाह पर—नौ पैसे भर खजूर के फलों को पानी में मसल-कर देना चाहिए।

धनुर्वात और रक्तपित्त पर—खजूर के फलों को चटनी की तरह पीसकर एरण्ड के तैल के साथ पिलाना चाहिए।

शराब के नशे पर—खजूर के फलों को पानी में गलाकर मसले और छानकर पिलाये।

प्रदर पर—छुहारे की गुठलियों को कूटकर घी में तले और गोपीचन्दन के साथ खिलाये।

रक्तपित्त पर—खजूर के फल शहद के साथ देना चाहिए।

बच्चों की शक्ति बढ़ाने के लिए—खजूर के फल छः माशा से तीन तोला तक लेकर स्वच्छ पानी से धोये और कपड़े से पोंछकर उसकी गुठली निकाल दे। पश्चात् उसे थोड़े से दूध में बहुत समय तक गलाकर मसले और छानकर दिन मे तीन बार पिलाये। यह औषधि एक महीने से अधिक अवस्थावाले बच्चों को पिलाने योग्य है।

पित्त शमन करने और धातुपुष्टि के लिए—छुहारे की गुठलियाँ निकालकर थोड़ा कूटे और उसमें बादाम, बिहीदाने, पिश्ते, चिरौंजी और शक्कर आदि मसाला डालकर वह मिश्रण तपे हुए यानी पतले घी मे भिगो दे। आठ दिन के पश्चात् प्रतिदिन सुबह दो तोला खाये।

शीतज्वर पर—छुहारे के बीज और काकजंघा के मूल को ठण्डे पानी में चन्दन की तरह गाढ़ा-गाढ़ा घिसकर एक पान (नागरबेल) पर चार रत्ती के बराबर चुपड़े और उस पान को सुपारी, लौंग, इलायची, कत्था आदि लगाकर बनाये; ज्वर आने के पहले एक-एक घड़ी के अन्तर पर एक-एक बीड़ा खाना चाहिए। इस प्रकार तीन दिन तक करने से ठण्ढ से आनेवाला बुखार दूर होता है।

चेतना प्राप्त होने के लिए—मक्खन और छुहारे खाते जाना चाहिए।

ठण्ढी हवा चलने अथवा लड़कों को सरदी का विकार होने पर—अच्छे छुहारों को गीले कपड़े से स्वच्छ करके उनकी गुठली निकाल दे और दूध में चन्दन की तरह घिसकर लड़कों को खिलाये ; अथवा उसीमें और दूध डालकर पतला करके पिलाये। यह औषधि छोटे बालकों को नहीं देनी चाहिए। बड़े लड़कों को देनी चाहिए। छोटों के लिए यह हानिकारक है।

स्त्रियों के पेट में दर्द होकर मासिक ऋतु साफ न आने पर—रोज नियमित रूप से अच्छे छुहारों का महीन चूर्ण करके एक तोला घी के साथ सुबह-शाम दो बार देना चाहिए। तीन महीने तक यह प्रयोग जारी रखना चाहिए। आर्त्तव-सम्बन्धी सब विकार दूर होकर शरीर नीरोग होता है।

छुहारों का अचार—छुहारों की गुठलियाँ निकाल कर उसके महीन-महीन टुकड़े करे और उसीके बराबर अदरक लेकर उसके भी महीन-महीन टुकड़े करके दोनों को मर्तबान में भर दे। फिर उसमें नीबू के बीज निकाल कर उसका रस निचोड़े। अदरक और छुहारे के टुकड़े नीबू के रस मे डूब जाने चाहिए। बाद में सोंठ, काली मिर्च, छोटी पीपल, जीरा और सौंफ को कूटकर कपड़छन करे और छुहारे के अष्टमांश के बराबर लेकर उसमें डाले। उसमें नीबू के रस का अष्टमांश नमक डालना चाहिए। बाद में भुनी हुई हींग डालकर अच्छी तरह हिलाकर मर्तबान का मुँह कपड़े से अच्छी तरह बाँध देना चाहिए। तैयार हो जाने पर रोज सुबह पैसे भर अचार खाना चाहिए। इससे भूख अच्छी तरह लगती और रुचि उत्पन्न होती है।

शिरस

शिरस का वृक्ष इमली की तरह बड़ा होता है। पत्ते भी इमली की तरह पर कुछ बड़े होते हैं। इसमें फल नहीं लगते, फलियाँ लगती हैं, जो लगभग दो-दो अंगुल चौड़ी और एक-एक बालिश्त लम्बी होती हैं। इन्ही फलियों में बीज रहता है। इसके फूल पीले होते हैं। यह वृक्ष भारत के प्रायः सभी प्रान्तों में होता है। इसे संस्कृत में शिरीष, मराठी में शिरशी या शिरस, हिन्दी मे शिरस, फिफना या शिरीषा, बङ्गला में शिरीष, कनाड़ी में शिरीषमारा या बागेमारा, तैलिङ्गी में शिरिषमु या गिरिषमु, तामील में बागेमारं, मलयलम में नेन्नेनि, फ़ारसी में दरख्तेज़करिया, अरबी मे सुल्तानुल् असजार या हवेसुल्तानुलसजार और लैटिन में अलबीज़िया लर्बेक या मिसोसा सिरसा कहते हैं।

शिरस का वृक्ष—मधुर, कड़वा, शीतल, फीका, तीखा, वर्णकर तथा लघु होता है; और विसर्प, सूजन, खाँसी, विष, व्रण, त्वग्दोष, खुजली, कुष्ठ, वायु, रक्तदोष तथा श्वास का नाश करता है।

उपयोग—

सर्पदंश पर—शिरस के फूलों के रस में काली मिर्च को मिलाये, सात दिन तक उसको खरल करे और सात भावनाएँ देकर सेवन तथा अंजन करे। इससे सर्प-विष दूर होता है।

मेंढक के विष पर—शिरस के बीज थूहर के दूध में पीसे और उसका लेप करे।

सब विषों पर—शिरस के पंचांग को गोमूत्र में पीसकर लेप करे।

प्रदर पर—शिरस की छाल का रस समभाग गाय के घी में मिलाकर पिलाये।

विसर्प, विषदोष, विस्फोटक, सूजन और दुष्ट व्रण पर—शिरस, मुलहठी, तगर, इलायची, जटामासी, हल्दी, दारु हल्दी, कोष्ठ और बाला को समभाग लेकर उनका चूर्ण करे और पंचमांश घी में उसको खरल करके पानी मे उबालकर रोग-स्थल पर लेप करे।

गरमी के चकत्तों पर—शिरस की छाल, रसांजन और हर्र का चूर्ण करे और कपड़े से छानकर शहद में खरल करके लेप करे।

सन्निपात ज्वर में तन्द्रा पर—शिरस के बीज, पीपर, काली मिर्च और सेंधा को गोमूत्र में घिसकर अंजन करे; अथवा शिरस के बीज और काली मिर्च को समभाग लेकर बकरी के मूत्र में घिसे और उसका अंजन करे।

चौथिया ज्वर पर—शिरस के फूल, हल्दी और दारु-हल्दी को एकत्र पीसे और उसकी चटनी घी के साथ दे। इससे चौथिया ज्वर का नाश होता है।

विसर्प पर—शिरस की छाल का चूर्ण सौ बार धोये हुए घी में मिलाकर लेप करना चाहिए।

सूर्यावर्त शिरोरोग पर—शिरस के मूल की अथवा फलों की पोटली सूँघना चाहिए।

लसोड़ा

लसोड़े का वृक्ष बहुत बड़ा होता है। इसके पत्ते बहुत चिकने होते हैं। हमने देखा है, दक्षिण, गुजरात और राजपूताना में लोग पान की जगह भी उनका व्यवहार कर लेते हैं। पान की तरह ही

वह रचता भी है। इसकी तीन-चार जातियाँ हैं; पर मुख्य दो हैं। जिन्हें लभेड़ा और लसोड़ा कहते हैं। छोटे और बड़े लसोड़े के नाम से भी यह मशहूर हैं। इसीलिये संस्कृत में बड़े को श्लेष्मातक और छोटे को लघुश्लेष्मातक कहते हैं। हिन्दी में इसे प्रान्त-भेद के अनुसार छोटी और बड़ी गोंदी, निसोरा, बहुवार आदि नामों से भी पुकारते हैं। मराठी में गोंधणी, भोंकर, शेळवट, कनाड़ी में दोड्डचल्लु, बोकेगेड, माणाडीकेचल्ले-मारा, स्रणचल्लु, तैलिङ्गी में पोद्दानाकेरू, तामिल मे कोरियानारुविळि, फ़ारसी में सिफ़िस्तान, अरबी में सेफ़िस्तान, दबक, अंग्रेजी में नेरोलिव्ह सेपिस्टन, लैटिन में कार्डियाऐंग्स्टिफोलिया या कार्डियामिक्सा और गुजराती मे गुन्दी या मोटी गुन्दी कहते हैं।

इसकी लकड़ी बड़ी चिकनी और मजबूत होती है। इमारती काम के लिये इसके तख्ते बनते हैं और बन्दूक के कुन्दे भी बनाये जाते हैं। और भी कई उपयोगी वस्तुएँ बनाई जाती हैं।

इसके फल सुपारी के बराबर होते हैं। कच्चा रहने पर उनका शाक और अचार भी बनाया जाता है। पकने पर उन्हें खाते हैं। वे बड़े मीठे लगते हैं। उनके अन्दर गोंद की तरह चिकना और मीठा लस होता है, जो बड़ा पुष्टिकारक कहा जाता है। बड़ी जाति के वृक्ष का फल कुछ बड़ा और पकने पर पके हुए आँवलों के-से रंग का हो जाता है। छोटी जाति के वृक्ष का फल कुछ छोटा, अधिक मीठा और कुछ सुर्खी लिये हुए होता है। बड़े वृक्ष से गोंद भी निकलता है।

लसोड़े का वृक्ष—तीखा, शीतल, मधुर, पाचक, केश्य,

स्निग्ध और कफ़कारक होता है तथा कृमि, शूल, आमदोष रक्तविकार, व्रण, विस्फोटक, पित्त तथा सम्पूर्ण दोषों का नाश करता है।

लसोड़े का फल—मधुर, शीत, कटु, वातुल, फीका, पित्तशामक, मलस्तम्भक और रुचिकर होता है तथा रक्तदोष और कफ़ का नाश करता है।

पका फल—मधुर, स्निग्ध, शीतल, कफ़कर, व्रिंघण, विष्टम्भकारक, रुक्ष तथा गुरु होता है; और वायु, पित्त तथा रक्त-दोष का नाश करता है।

उपयोग—

अतिसार पर—लसोड़े की छाल को पानी में घिसकर पिलाना चाहिए।

कॉलरा पर—लसोड़े की छाल को चने के क्षार में घिसकर पिलाना चाहिए।

दाँतों के दर्द पर—लसोड़े की छाल का काढ़ा बनाकर उसके कुल्ले करना चाहिए।

पुष्टई के लिए—लसोड़े के फलों को सुखाकर उनका चूर्ण कर ले और शक्कर की चाशनी मिलाकर उसके लड्डू बना ले। इनके सेवन से शरीर पुष्ट होता है और कमर मजबूत हो जाती है।

बकाइन

यह वृक्ष बड़ा होता है। इसके पत्ते कड़वे नीम की तरह ही परन्तु कुछ बड़े होते हैं। बकाइन की लकड़ी इमारती कामों में अत्यन्त ही उपयोगी होती है। यह छायादार होता है। इसके

फल भी कड़वे नीम के फल की तरह ही होते हैं। इसकी लकड़ी में कीड़े नहीं लगते। इस वृक्ष की छाया बड़ी उत्तम होती है। छाया के लिये ही इसको कई जगह रास्तों में दाईं-बाईं ओर बोया जाता है। 'खानदेश' में यह वृक्ष बहुत होता है। इसे 'कड़वा नीम' भी कहा जाता है। इसको संस्कृत में महानिम्ब, हिन्दी में बकाइन, गुजराती में बकामलीमड़ी, मराठी में वकाणलींब, बङ्गला मे घोड़ा नीम, कनाड़ी में महाबेवु, अरबेवु, तैलिङ्गी में पेदावेपा, तामील में मलाइवेंबु, फ़ारसी में अजाद दरख्त, अरबी में बान और लैटिन में नेलिया एजेडेरक कहते हैं।

बकाइन का वृक्ष—शीतल, कसैला, तीक्ष्ण, कड़वा, फीका, ग्राहक, वृष्य तथा दाह, कफ, व्रण, विषमज्वर, पित्त, कृमि, हृदय-व्यथा, वमन, प्रमेह, विषूचिका, गुल्म, शीतपित्त, कण्ठरोग, अर्श, श्वास, चूहे के विष और सब तरह के कुष्ठ का नाश करता है।

उपयोग—

कुत्ते के विष पर—बकाइन के मूल का रस निकालकर पिलाये।

गृध्रसी वायु पर—बकाइन की अन्तरछाल को अथवा मूल को पानी में घोंटकर पिलाये।

पित्त से आँखों के दुखने पर—बकाइन के फलों को पीस-कर लुगदी बनाये और उसे आँखों पर बाँधे।

भैंस की सूजन पर—बकाइन के अथवा बाँस के पत्तों को पीसकर पिलाना चाहिए।

प्रमेह पर—बकाइन के फलों को चावल के धोवन में पीस-

कर और उसमें घी डालकर पिलाना चाहिए। इससे तुरन्त ही प्रमेह का नाश होता है।

ऐन

ऐन के वृक्ष बहुत बड़े होते हैं। इस वृक्ष की लकड़ी बड़ी मजबूत होती है। इमारतों और नाव इत्यादि के बनाने में वह काम आती है। ऐन के पत्ते लम्बे होते हैं। इस वृक्ष की दो जातियाँ होती हैं—सफेद और काली। सफेद ऐन रंग में भी सफेद होता है। इसकी नरम छाल रँगने के काम में आती है। इसको संस्कृत में रक्तार्जुन, हिन्दी में ऐन, गुजराती में साजड़, कनाड़ी में केंपु-पत्ति, तैलिङ्गी मे इर्शमद्दी और लैटिन में टरमिनेलिया ग्लेब्रा कहते हैं।

उपयोग—

चोट पर—सफेद ऐन की छाल की चटनी करके चोट पर बाँधना चाहिए।

फोड़ा फोड़ने के लिए—ऐन की छाल और काली तुलसी का रस निकाले और उसमें चावल का आटा सानकर फोड़े पर लगाये।

पक्षाघात पर—ऐन की राख को बाँधना चाहिए। इससे वह भाग उष्ण हो जाता है और उसका जड़त्व दूर होता है।

कफ पर—ऐन की राख को शहद में मिलाकर खाना चाहिए।

काँकड़

काँकड़ का वृक्ष बड़ा होता है। पत्ते कुछ मोटे और फल कुछ लम्बे होते हैं। इसके पत्ते नीम के पत्तों की तरह होते हैं। काँकड़ का फल आँवले की तरह दीख पड़ता है; परन्तु उसमें आँवले की तरह बीज नहीं होता। उसमें दो-तीन छोटे-छोटे बीज होते हैं। ये फल ज्येष्ठ मास में आते हैं। इस वृक्ष की दो जातियाँ हैं—छोटी और बड़ी। इनको संस्कृत में कर्कटक, हिन्दी में गंगेरू या काँकड़, गुजराती में काँकड़, करपटा, मराठी में कुकड़, काँकड़, कनाड़ी में वालिगे और लैटिन में गेरुगापिन्नाटा कहते हैं। इसके फल रुचिकर और पित्तशामक होते हैं। इनका अचार अच्छा बनता है। ये फल पुराने होने पर उपयोग मे नहीं आते।

बड़े काँकड़ के फल—फीके, अग्निदीपक, खट्टे, शीतल, लघु और उष्ण होते हैं; तथा नेत्रहितकर, रक्तपित्त, कफ तथा रक्तदोषनाशक होते हैं। पकने पर यह फल शीतल, रुचिकारक और जड़ होते हैं।

छोटे काँकड़ के फल—ग्राहक, खट्टे, पित्तज, अग्निदीपक, उष्ण तथा लघु होते हैं; और पकने पर मधुर, स्निग्ध, फीके, वात-नाशक तथा कफपित्तकारक होते हैं।

उपयोग—

घाव पर—काँकड़ के वृक्ष की छाल को पीसकर घाव पर बाँधे।

आँख की फूली पर—काँकड़ के वृक्ष की एक हाथ लम्बो

पतली टहनी को मुँह में रखकर जोर से श्वास को छोड़ना चाहिए और इस क्रिया से जो रस बाहर निकले, उसे तीन दिन तक आँख में डालना चाहिए।

प्रमेह पर—काँकड़ की पत्तियों का रस जीरे और मिश्री के साथ देना चाहिए।

हींग

हींग के वृक्ष खुरासान, हिरात और बल्ख प्रान्त में उत्पन्न होते हैं। इस वृक्ष के पत्तों से कन्द पर चोट करके जो दूध निकाला जाता है, उसे ही हींग कहते हैं। उपर्युक्त स्थानों से हींग पंजाब और बम्बई वगैरः स्थानों में लाई जाती है। हमारे देश में इसकी बड़ी ही खपत होती है। हींग अनेक रोगों की नाशक होती है। संस्कृत वैद्यक-ग्रन्थों का मत है कि हींग को व्यवहार में लाने के पहले सेंक लेना चाहिए। इसको संस्कृत और बङ्गला में हिंगु, हिन्दी, गुजराती और मराठी में हींग, कनाड़ी में हिंगलु, इङ्गीन, तैलिङ्गी में इंगुवा, तामिल में पोरूंगार्यं, मलयलम में पोरूकायं, फ़ारसी में दरख्ते अंगुज़ खालीस, अरबी में हिलती, हिलतीत, हिलतीस, लैटिन में फेरूलानार्थेक्स और अंग्रेजी में आस्सोफोटिडा कहते हैं।

हींग का वृक्ष—तीक्ष्ण, उष्ण, हृद्य, पित्तल, सारक, रक्तदूषक, कड़वा, पाचक, रुचिकर, अग्निदीपक तथा स्निग्ध होता है; और मलस्तम्भ, आनाह, आध्मान, शूल, गुल्म, अजीर्ण, उदर, श्वास, खाँसी, कृमि, कफ़, वायु तथा हृद्रोग का नाश करता है।

उपयोग—

अजीर्ण और वायुगोले पर—हींग की चने के बराबर गोली को मुँह में रखकर उसका रस चूसना चाहिए।

जानवरों के घावों में कीड़े पड़ जाने पर—घाव में हींग को भरना चाहिए।

अपस्मार पर—एक-एक तोला घी, सैंधा और हींग को बारह तोला गोमूत्र में डालकर उबाले और जब गोमूत्र जल जाये, तो उस घी को सिद्ध समझे तथा रोगी को उसकी प्रकृति के अनुकूल ही पिलाये।

हिचकी पर—जिस अङ्गारे से धुआँ न निकलता हो, उस पर उर्द और हींग का चूर्ण करके डाले और उसका धुआँ मुँह में भरे।

अफीम के नशे पर—हींग को पानी अथवा छाछ में मिलाकर पिलाना चाहिए।

पेटदर्द पर—तीन-तीन माशा हींग, कोष्ठ और बायविडङ्ग को लेकर दो तोला गरम पानी में डालकर पिलाये।

चौथिया ज्वर पर—जिस समय बुखार आये, उस समय हींग को पुराने घी मे मिलाकर नाक में टपकाये।

अजीर्णादिक पर—(हिंगाष्टक चूर्ण) सोंठ, काली मिर्च, पीपर, अजवाइन, सैंधा, शाहजीरा, जीरा और सेंकी हुई हींग को समभाग लेकर उनका चूर्ण करे तथा भोजन के समय चौगुने घी में मिलाकर उसे दाल-भात के साथ खाये। इससे अजीर्ण, अग्निमांद्य, कॉलरा, पाण्डु, आम तथा गुल्म का नाश होता है।

प्रसूता के शूल और चक्कर आने पर—हींग को सेंककर और घी में मिलाकर खिलाये।

बिच्छू के विष पर—हींग को आँक के दूध में पीसकर बिच्छू के काटे हुए स्थान पर लेप करना चाहिए।

व्रण के कीड़ों को दूर करने के लिए—हींग और कड़वे नीम के पत्तों को पीसे और घाव पर लेप करे।

कॉलरा पर—सेंकी हुई हींग, कपूर और आम की गुठली का गूदा समभाग लेकर और पुदीने के रस में एकत्र खरल करके गोलियाँ बनाकर सुखा ले। एक-एक घण्टे बाद एक-एक गोली खाये। अथवा एक भाग अफीम, आधा भाग हींग और एक भाग लाल मिर्च के कपड़छन किये हुए चूर्ण को पुदीने के रस में मिलाकर एक-एक रत्ती मात्रा की गोलियाँ बनानी चाहिये और पाखाना शुरू होने पर प्रत्येक समय एक-एक गोली एक-एक घड़ी पर देनी चाहिए। एक वर्ष से लेकर पाँच वर्ष तक के बालक को आधी गोली देनी चाहिए।

आधाशीशी पर—हीग को पानी में मिलाकर नाक मे टपकाये।

बहरेपन पर—हींग, और सोंठ को राई में मिलाकर उसका काढ़ा करके कान में डालना चाहिए।

नहारू पर—चार माशा हींग के र्ण को पाव भर दही में डालकर तीन दिन तक खाना चाहिए।

मूत्रकृच्छ्रादि, मूत्ररोग और शुक्ररोग पर—सेंकी हुई हींग और बड़ी इलायची का एक रत्ती चूर्ण दूध अथवा घी में डालकर खिलाना चाहिए।

सरदी से कम सुनाई पड़ने पर—उत्तम हींग को पीसे और रुई पर उसे डालकर कान पर लगाये।

परिणामशूल पर—हींग, सैंधा और जीरे का चूर्ण शहद और घी में मिलाकर देना चाहिए।

दाँतों के दर्द और दाँतों में कीड़े पड़ जाने पर—सेंकी हुई हींग को दाढ़ के नीचे रखे।

बछनाग के विष पर—चार रत्ती हींग गाय के घी में डालकर खिलाना चाहिए।

कायफल

कायफल का वृक्ष कोंकण में बहुत होता है। हिमालय की तरफ भी यह होता है और बहुत बढ़ता है। इसके पत्ते लम्बे होते हैं। वे पत्तलें बनाने के उपयोग में आते हैं। इसके फल बेल (बिल्व) की तरह गोल होते हैं। इसकी दो जातियाँ हैं—काली और सफेद। इसकी छाल की रस्सियाँ मज़बूत होती हैं। औषधियों के लिये लाल कायफल का वृक्ष बड़ा उपयोगी होता है। इसकी छाल को कायफल कहते हैं। औषधियों में अधिकतर यही व्यवहार मे लाई जाती है। यह यद्यपि वृक्ष की छाल होती है, तथापि इसे कायफल ही कहते हैं। इसकी मात्रा एक माशा से दो माशा तक होती है। इसको संस्कृत में कटफल, हिन्दी में कायफल, बङ्गला मे कटफल, कायेछाल, गुजराती में कायफल, मराठी में कुंभा, कायफल, कनाड़ी में किरुशिवनी, इप्पेमारा, वुछालद, गद्दाद, मलयलम में पिर्ल, आलं, तैलिङ्गी में वहल, फ़ारसी में दारशीशयान, अरबी में वदुलबर्क, लैटिन में मिरिका सापीडा (छाल), मियोस्टिका मलेबेरिका (फल), कारे आर्वोर्या (वृक्ष) कहते हैं।

कायफल का वृक्ष—तीक्ष्ण, उष्ण, फीका और ग्राहक होता है ; तथा वात, पित्त, ज्वर, दाह, कफ, रक्तातिसार, योनिदोष, विष और कृमि का नाश करता है।

उपयोग—

खाँसी पर—कायफल के वृक्ष की छाल का रस शहद में मिलाकर सात दिन तक पिलाये।

लू लगने पर—कायफल की छाल के रस में शक्कर मिलाकर पिलाये।

श्वास पर—कायफल के वृक्ष की छाल के रस में राई को पीसकर पिलाना चाहिए।

धातुप्रमेह पर—कायफल के वृक्ष की छाल का और नारियल का रस एकत्र करके सात दिन तक पिलाये।

अंग जल जाने पर—शरीर के जले हुए भाग पर लाल कायफल के वृक्ष की छाल के रस का लेप करना चाहिए।

मृगी पर—कायफल को घिसकर पिलाना चाहिए।

अतिसार पर—कायफल के वृक्ष की छाल का काढ़ा करके पिलाये।

मस्तकशूल पर—कायफल के चूर्ण को सुँघाना चाहिए।

व्रणशुद्धि के लिए—कायफल के वृक्ष की छाल का काढ़ा करे और उससे व्रण (घाव) धोये।

दन्तरोग पर—कायफल के वृक्ष की छाल का काढ़ा करके उससे कुल्ले करना चाहिए। इससे दन्तशूल का नाश होता है और दाँत मजबूत होते हैं।

नारंगी

नारंगी के वृक्ष प्रायः सब देशों मे होते हैं। इसकी पाँच-छः जातियाँ होती हैं। मोजांबीक द्वीप से जो नारंगी यहाँ आती है, वह बड़ी स्वादिष्ट और पौष्टिक होती है। खानदेश, धूलिया और पूना में भी नारंगी होती हैं; पर वे उतनी उपयोगी नहीं कही जातीं। इस वृक्ष के फूल से बड़ी मधुर सुगन्ध आती है। नारंगी का रस और छाल भी बहुत उपयोगी है। नारंगी को संस्कृत, तामिल और कनाड़ी में नारंग, हिन्दी और गुजराती में नारंगी, नारंगी, मलयलम में मधुरनारकं, तैलिङ्गी मे नारंगमु, फ़ारसी और अरबी में नारंज, लैटिन में साइटस ओरेन्टियम् और अंग्रेजी में ऑरेञ्ज कहते हैं।

नारङ्गी—कफ, पित्त और आमकारक तथा दुर्जर, सारक, वातहारक, अति उष्ण, मधुर और अति खट्टी होती है। ज्यादा खट्टी हो, तो हृद्य, बलप्रद, विशद, गुरु, रुचिकर, सारक, उष्ण तथा स्वादु होती है; और आम, कृमि, वायु, श्रम तथा शूल का नाश करती है। कृमि और शीतज्वर पर नारंगी की छाल से औषधि बनाकर दी जाती है। इसकी छाल से गंध लेकर तैल बनाया जाता है। कई मनुष्य गुलाब के इत्र से नारंगी का तैल अधिक अच्छा मानते हैं। नारंगी देखने मे सुन्दर, खाने में मीठी, गन्ध में मधुर और स्पर्श करने से शीतल प्रतीत होती है।

माजूफल

माजूफल का वृक्ष बड़ा होता है। इसके फल साधारण सुपारी के समान और इससे छोटे भी होते हैं। इसको संस्कृत में माया-फल, हिन्दी में माजूफल, गुजराती में मायफल, मराठी में तुरटे, मायफल, कर्नाटकी में मापालपालकायि, फारसी में माजुस, अरबी में आपस, समरतुल, तुरफा, लैटिन में कारकस्, इन् फेक्टोरिया और अंग्रेजी में गालनट् कहते हैं।

माजूफल का वृक्ष—तीक्ष्ण, उष्ण, शिथिलता को दूर करने-वाला तथा वातनाशक होता है।

उपयोग—

नासिकारोग पर—माजूफल का चूर्ण सूँघना चाहिए।

बालकों के संग्रहणी रोग पर—गाय के दूध में अथवा घी में माजूफल को घिसकर चटाना चाहिए।

बालकों के अतिसार और संग्रहणी पर—माजूफल और सोंठ घी में अथवा दूध में घिसकर चटाना चाहिए।

दाँत हिलने पर—माजूफल, फिटकिरी और सफेद कत्था एक-एक तोला लेकर उनका चूर्ण करे और कपड़छन करके रोज दाँतों से मले और लार निकलने दे। इस प्रकार दिन में दो बार करे। यह दवा तीन-चार दिन तक बराबर करते रहने से अवश्य ही बड़ा असर करती है।

बालकों के जीर्णज्वर पर—दो छोटे माजूफल रात्रि को ठण्ढे जल में गलाने के लिए रख दे और दूसरे दिन प्रातःकाल उनको तीन तोला गाय के दूध में घिसकर सात दिन तक पिलाये।

आमांश पर—माजूफल को गाय के मक्खन से निकले हुए पानी में घिसकर चाटे।

लार गिरने पर—माजूफल के काढ़े में फिटकिरी और कत्थे का चूर्ण डालकर कुल्ला करना चाहिए।

आलूबुखारा

आलूबुखारे का वृक्ष लगभग दस हाथ ऊँचा होता है। इसके फल को आलूबुख़ारा कहते हैं। यह पर्शिया, ग्रीस और अरब की ओर बहुत होता है। हमारे देश में भी आलूबुखारा अब होने लगा है। इसे संस्कृत और कर्नाटकी में आरुक, हिन्दी और मराठी में आलूबुख़ारा, गुजराती में आलू, फ़ारसी में आलुस्या, अरबी में इज्जासु, लैटिन में प्रुनस बोखेरियनसिस और अंग्रेज़ी में चेरिप्लम कहते हैं। आलूबुख़ारे का रंग ऊपर से मुनक्का के जैसा और भीतर से पीला होता है। पत्ते वग़ैरह के भेद के अनुसार आलूबुख़ारे की चार जातियाँ होती हैं। अधिकतर यह बुख़ारा की ओर से यहाँ आता है, इसलिये इसे आलूबुख़ारा कहते हैं। इसके बीज बादाम के बीज की तरह ही परन्तु कुछ छोटे होते हैं। यह फल आकार में दीर्घ वर्तुलाकार होकर एक ओर फूला हुआ होता है। अच्छी तरह पकने पर यह फल खट्टा, मीठा, रुचिकर और शरीर को हितकर होता है; परन्तु इन फलों के अधिक खाने से वायु और संग्रहणी हो जाते हैं।

आलूबुखारा—ग्राहक, फीका, हृद्य, शीत, जड़, मल-

स्तंभक, ग्राही, भेदक, उष्ण और कफपित्तनाशक, पाचक, खट्टा, मधुर, मुखप्रिय तथा मुख को स्वच्छ करनेवाला होता है ; और गुल्म, मेह, अर्श और रक्तवात का नाश करता है। पकने पर यह मधुर, जड़, पित्तकर, उष्ण, रुचिकर, धातुवर्द्धक और प्रिय होता है। मेह, ज्वर तथा वायु का नाश करता है।

उपयोग—

मलबद्धता पर—आलूबुखारे को पानी में घिसकर पीने से पेट साफ़ हो जाता है।

मुख सूखने पर—आलूबुखारे को मुख में रखना चाहिए।

सागवान

सागवान का वृक्ष बड़ा होता है। इसकी उत्पत्ति मलाबार, ब्रह्मदेश और गुजरात में बहुत होती है। यह वृक्ष पचास-साठ हाथ तक ऊँचा बढ़ता है और इसकी परिधि भी मोटी होती है। सागवान ज्यादा पुराना होने के पहले अधिक उपयोगी नहीं होता। पुराने वृक्ष की लकड़ी शीसम की लकड़ी के समान ही उपयोगी होती है। इसके पत्ते बड़े होते हैं और मसलने से उनसे खून की तरह लाल रंग निकलता है। सागवान की लकड़ी सब लकड़ियों से मजबूत होती है। यह पानी में सड़ती नहीं है और कड़वी होने के कारण इसे कीड़े भी ख़राब नहीं कर सकते। इमारती और साधारण कामों में जितनी इसकी खपत है, उतनी किसी की भी नहीं है। इसको संस्कृत में शाक, हिन्दी मे सागवान,

बङ्गला में शेगुन, गुजराती में साग, मराठी में साग, साया, कनाड़ी में तेग, त्यागमत्ति, तैलिङ्गी में तेकु, तामिल में टेक कुमारं, फारसी में फिलगोरस, अरबी में फिलजोश, लैटिन में टेक्टोना ग्रांडिस् और अंग्रेजी में इण्डियन टीक ट्री कहते हैं।

सागवान का वृक्ष—शीतल, फीका, गर्भसंधान तथा स्थैर्यकर होता है। रक्तपित्त, अर्श, वायु, पित्त, अतिसार और कुष्ठ का नाश करता है।

फल—फीके, कड़वे, विशद, लघु, रुक्ष तथा वातकोपन होते हैं। प्रमेह, कफ और पित्त का नाश करते हैं।

छाल—मधुर, रुक्ष तथा फीकी होती है और कफ का नाश करती है।

उपयोग—

मूत्राघात और पथरी पर—सागवान का आधा बीज ठण्डे पानी में घिसकर पिलाये और नाभि पर लेप करे।

सर्पदंश पर—सागवान के मूल को घिसकर पिलाना चाहिए।

शरीर के लाल चकत्तों पर—सागवान के सूखे पत्ते और कम्बल के किसी टुकड़े को जला ले और उनकी राख को तैल में खरल करके लेप करे। अथवा सागवान के हरे पत्तों का रस निकाल कर उसे पकाये और जब वह लपसी की तरह गाढ़ा हो जाय, तो उसका लेप करे।

आगन्तुक गर्मी पर—सागवान के बीज शक्ति के अनुसार और रोग का बल देखकर ही एक से तीन तक चन्दन के साथ ठण्डे पानी में घिसे और उसमें जीरे का चूर्ण तथा शक्कर मिलाकर चटाये।

धातुस्थान की उष्णता और मूत्रकृच्छ्र पर—पाव भर दूध में समभाग पानी मिलाकर उसमें सागवान के बीजों का डेढ़ माशा चूर्ण डाले और उसे सात दिन तक पिलाये।

श्लीपद और मेदोरोग पर—सागवान की छाल का काढ़ा करे और उसमें गोमूत्र डालकर पिलाये।

शीतपित्त पर—सागवान के हरे पत्तों के उबाले हुए जल से स्नान करना चाहिए।

मूत्रकृच्छ्र पर—चावल के धोये हुए पानी में सागवान के एक या दो बीज घिसे और उसमें शक्कर डालकर पिलाये।

सब प्रकार की सूजन पर—सागवान की लकड़ी को चन्दन की तरह घिसकर गरम करके सूजन पर लेप करना चाहिए।

सिरदर्द पर—सागवान की लकड़ी को घिसकर लेप करना चाहिए। यह नुस्खा पहाड़ी मजदूरों का है। उनके मतानुसार इससे अवश्य लाभ होता है।

अन्न हजम न होने, भोजन के बाद खट्टी डकारें आने और खाये हुए अन्न के कुछ रजकण श्वासनलिका में चले जाने पर—एक तोला सागवान की लकड़ी घिसकर पिलाना चाहिए। इससे कृमि भी निकल जाते हैं।

पेशाब रुकने पर—सागवान के बीज घिसकर पिलाना चाहिए।

बाल बढ़ाने के लिए—सागवान के बीजों को कूटकर गरम पानी में भिगो दे और स्नान करते समय उस पानी से बाल मले। इससे बाल अवश्य बढ़ते हैं।

खुजली पर—स्नान करते समय सागवान के बीज घिस कर शरीर पर लगाने चाहिए।

अमलतास

अमलतास का वृक्ष खासा ऊँचा होता है। इसके पत्ते लाल चन्दन की तरह छोटे परन्तु आमने-सामने होते हैं। इसके फूल खखसा के फूलों की तरह और पीले होते हैं। इनमें पाँच-पाँच पंखुड़ियाँ होती हैं और हर एक डाली पर ये फूल अनेक होते हैं। अमलतास के वृक्ष पर एक-एक हाथ लम्बी फलियाँ लगती हैं। इनके अन्दर का गूदा काला और चिकना होता है। यह कई औषधियों के उपयोग में आता है। यदि गूदे को निकालना हो, तो फलियों को कुछ गरम कर लेना चाहिए। इससे वह ज्यादा निकलता है। अमलतास के फूलों का शाक बनाया जाता है। अमलतास दो जाति का होता है—एक छोटा और दूसरा बड़ा। इसको संस्कृत में आरग्वध, हिन्दी में अमलतास, धन बहेड़ा, गुजराती में गरमालो, मराठी में बाहावा, कनाड़ी में हेग्गाके, तैलिङ्गी में रेलकाया, मलयलम् में कट्टुकोना, अरबी में ख्यारेशंबर, फारसी में ख्यारेचंबर, लैटिन मे केश्याकिसचुला और अंग्रेजी में पुडिंगपाइपट्री कहते हैं।

*अमलतास का वृक्ष—अति मधुर, शीतल, मृदु, रेचक,

---

* मखजन अल-अदविया में लिखता है—"हल्का दस्त लाने के लिए अमलतास की गरी को थोड़े बादाम के तैल के साथ मिलाकर खिलाना चाहिए। इससे छाती के दर्द का भी नाश होता है। कोढ़ी की गरमी बहुत कम हो जाती है। असर

तीखा, भेदक और गुरु होता है ; तथा शूल, ज्वर, कुष्ठ, कण्डु, मेह, कफ, वायु, उदावर्त, हृद्रोग, कृमि, व्रण, कफोदर, गुल्म और मूत्रकृच्छ्र का नाश करता है।

पत्ते—रेचक और कफ तथा प्रमेह का नाश करते हैं।

फूल—स्वादु, ठण्डे, कड़वे, फीके तथा ग्राहक होते हैं।

फलियाँ—पकने पर तीखी, मधुर, बलकर, रेचक, तथा कोष्ठशुद्धिकारक होती हैं ; और कफ, पित्त, ज्वर तथा मलदोष का नाश करती हैं।

छाल—पकने पर मधुर, स्निग्ध, अग्निवर्द्धक तथा रेचक होती है और पित्त तथा वायु का नाश करती है।

छोटा अमलतास—सारक, कड़वा, तीखा और उष्ण होता है; तथा कफ, शूल, उदरकृमि, मेह, व्रण और गुल्म का नाश करता है।

उपयोग—

कुष्ठ, दाद, खुजली और विचर्चिका के चकत्तों पर—

बहुत हलका होने के कारण अमलतास सगर्भा स्त्री और बालकों के लिए भी हितकारी होता है। बढ़े हुए पित्त को दूर करने के लिए इमली के साथ मिलाकर इसे खाना चाहिए। हड्डियों के जोड़ के दर्द पर अमलतास का लेप करना चाहिए। पाँच से सात बीज तक पीसकर देने से कै होती है। अमलतास के फल के ऊपर की छाल, केसर और शक्कर को गुलाबजल में पीसकर देने से स्त्रियों को तुरन्त प्रसव हो जाता है। छाल और पत्तों को तेल में पीसकर फोड़ों पर लेप करने से बहुत फ़ायदा होता है। चरक अमलतास को कण्डूनाशक कहते हैं। सुश्रुत कफवातशामक लिखते हैं और यूनानी हकीम अमलतास के फूल और पत्तों में दस्त लाने का गुण बतलाते हैं। अमलतास की मात्रा साढ़े तीन माशा से सवा तोला तक है।

अमलतास के पत्तों को पीसे और उसमें लपसी मिलाकर लेप करे। अथवा अमलतास के अंकुरों के रस का लेप करे।

चकत्तों पर—अमलतास के नरम पत्तों को पीसकर लेप करना चाहिए।

खुजली दूर करने के लिए—अमलतास के पत्तों को छाछ में पीसकर लेप करना चाहिए और कुछ देर बाद स्नान कर लेना चाहिए।

पीले प्रमेह पर—अमलतास की फलियों के अन्दर के गूदे के आठवें भाग का काढ़ा करके पिलाये।

कफरोग पर—अमलतास के गूदे में गुड़ मिलाकर और सुपारी के बराबर गोलियाँ बनाकर गरम पानी के साथ देना चाहिए।

रक्तपित्त पर—अमलतास और आँवले का काढ़ा करे और शहद तथा शक्कर मिलाकर उसे पिलाये। इससे दस्त होकर रक्तपित्त बन्द होता है।

गण्डमाल पर—अमलतास के मूल को चावल के धोये हुए पानी में पीसकर उसका लेप करना चाहिए।

भिलावें की सूजन पर—अमलतास के पत्तों के रस का लेप करना चाहिए।

सूक्ष्म रेचन के लिए—सोनामुखी, बाल हर्र, और अमलतास के गूदे का काढ़ा करके पिलाये।

दस्त साफ होने के लिए—एक तोला अमलतास की फलियों का गूदा और आधा तोला हर्र (रँगाई के काम में आने वाली) की छाल का आधा सेर पानी में अष्टमांश काढ़ा बनाकर उसमें शक्कर डालकर देना चाहिए।

मूलव्याधि (अर्श) पर—एक तोला अमलतास की फलियों का गूदा, छः माशा हर्रदल और एक तोला मुनक्का (काली द्राक्ष) का आधा सेर पानी में अष्टमांश काढ़ा बनाकर नित्य सवेरे देना चाहिए। चार दिन में अर्श नरम पड़ जाता है। रक्त-पित्त यानी नस्कोरे फूटकर खून बहने, पेशाब साफ़ न होने और ज्वर में भी यह काढ़ा दिया जाता है। अवश्य लाभ होता है। इससे दस्त साफ़ होकर भूख भी लगती है।

सूजन पर—अमलतास के पत्तों को सेंककर बाँधने से सूजन उतरती है।

कमरख

यह वृक्ष कोंकण प्रान्त में बहुत होता है। इसके वृक्ष बड़े होते है। इसके पत्ते पतले और छाया अत्यन्त घनी होती है। यह वृक्ष हमेशा हरा रहता है और इसमें फल आते रहते हैं। इसको संस्कृत में कर्मार, हिन्दी में कमरख, बङ्गला में कामरंग, गुजराती मे मुद्गर या कमरख और मराठी तथा कनाड़ी में कर्मर कहते हैं।

कमरख का मुरब्बा और अचार अच्छा बनता है। चटनी भी बनती है। ये खटमिट्ठे होते हैं। इनमें काली मिर्च, जीरा और शक्कर लगाकर खाने से विशेष स्वाद आ जाता है। कुछ लोग पके हुए कमरख को वैसे ही खा जाते हैं। कच्चे का रंग हरा और पकने पर इसका रंग पीला हो जाता है। इसके चारों ओर धाराएँ होती हैं। यह फल पकने पर बड़ा सुन्दर दीख पड़ता है। कमरख कफ़ का नाश करता है।

कच्चे कमरख—खट्टे, उष्ण, वातनाशक और पित्तकारक होते हैं।

पके हुए कमरख—मधुर, खट्टे, बलकर, पुष्टिकारक तथा रुचिकारक होते हैं।

मुचकन्द

यह वृक्ष बड़ा होता है। इसके पत्ते टेसू के पत्तों की तरह बड़े होते हैं। इस वृक्ष का फूल एक बालिश्त लम्बा होता है। इसका रंग पीला होता है। फूल की सुगन्ध साधारण होती है। फूल मे चार पंखुड़ियाँ होती हैं। इसकी लकड़ी इमारती कामों के उपयोग में नही आती। इसको संस्कृत, हिन्दी, गुजराती, मराठी और कनाड़ी मे मुचकन्द तथा लैटिन में टटेरी स्परमन् और सुबरीफोलीयम् कहते हैं।

मुचकन्द का वृक्ष—तीखा, कड़वा, उष्ण होता है; और कफ, खाँसी, कण्ठदोष, त्वग्दोष, सूजन, व्रण, मस्तकपीड़ा, त्रिदोष-रक्तपित्त, पित्तविकार तथा खुजली का नाश करता है।

उपयोग—

वायु-सम्बन्धी मस्तकपीड़ा पर—मुचकन्द के फूल और अरण्ड के मूल को काँजी में पीसकर लेप करना चाहिए।

आधाशीशी पर—मुचकन्द के फूल को पीसकर मस्तक पर लेप करना चाहिए।

कुचला

सह्याद्रि पर्वत के आस-पास ये वृक्ष बहुत होते हैं। इस वृक्ष के फल, पत्ते और प्रायः सभी भाग विष-युक्त होते हैं। इसके पत्तों पर रखकर कोई पदार्थ खाने से विकार उत्पन्न हो जाता है। इसके फल को 'जहरी कुचला' भी कहते हैं। कुछ मनुष्य सोचते होंगे कि यह विष से भरा हुआ वृक्ष निरर्थक ही है; परन्तु यह बात नहीं है। ईश्वर ने इसके अन्दर इतने गुण उत्पन्न किये हैं कि यह मनुष्य के लिए अत्यन्त ही लाभदायक है। इसको संस्कृत में विषमुष्टि कारस्कार, हिन्दी और मराठी में कुचला, गुजराती में झेरकोचलुं, कनाड़ी मे कागरकानामारा, कांजोबार, हेगुष्टी, तामील मे एट्टेमारं काकोड़ी, तैलिङ्गी में मुसीठी, मुष्टोचेट्टु, मलयलम् में कन्नीराम्, लैटिन में ट्रिचनोसनकस झोमिका और अंग्रेजी में व्होमिटनट् कहते हैं।

कुचले के फल इन्द्रवरणा के आकार के, नरम, गोलाकार और नारंगी रंग के होते हैं। ये बड़े ही सुन्दर दीख पड़ते हैं। इनका संस्कृत मे अर्थयुक्त नाम 'रम्यफल' है। फल की छाल पतली होती है, जिसे अलग करने पर अन्दर सफेद और पीले रंग का गर्भ दीख पड़ता है। गर्भ के अन्दर दो से लेकर पाँच तक बीजे होते हैं, जो कि दोनों तरफ़ चपटे और एक से दो इंच व्यास तक के होते हैं। इनको कुचला कहते है। ये अत्यन्त ही विषैले होते हैं और इनमें किसी भी तरह की गन्ध नहो होती। इसके वृक्ष के अधिक उपयोगी भाग छाल और बीज होते हैं।

अच्छे कुचले के बीज अतिशय कड़वे होते हैं। इसमें यह

कड़वापन एक क्षार गुणवाले स्ट्रिकनीन नाम के सत्त्व के कारण है। स्ट्रिकनीन सत्त्व का प्रभाव ज्ञानतन्तुओं पर और मज्जा पर इतनी जल्दी पड़ता है, कि उससे हाथ-पैर के स्नायुओं का स्तम्भन हो जाता है तथा धनुर्वात की तरह शरीर पर उसका परिणाम होता है।

स्ट्रिकिनिया नामक विषैले सत्त्व का प्रवेश शरीर में रक्त-द्वारा होकर मस्तक के तन्तु में और वंशगत मज्जातन्तु में तीव्र चेतना उत्पन्न करता है, इसलिए पहले संज्ञाशक्ति के स्नायु को धक्के लगकर उसका स्तम्भन होता है। इसके पश्चात् हृदय की गति का स्तम्भन होकर उसका चलना बन्द हो जाता है, जिसका परिणाम मृत्यु होती है।

कुचले का सत्त्व (स्ट्रिकिनिया) शराब अथवा दही के साथ खाने से मनुष्य की मृत्यु हो जाती है। यह इसके विष की भयङ्करता का एक छोटे-से-छोटा उदाहरण है। स्ट्रिकिनिया कम-से-कम आधा ग्रेन भी खाने से बीस मिनट के अन्दर-ही-अन्दर मनुष्य की मृत्यु होते हुए सुना गया है। परन्तु 'शेसके' नामक एक जर्मन डॉक्टर ने जर्मनी में एक रुग्णालय में पाँच रत्ती स्ट्रिकिनिया खाने पर भी मनुष्य के जिन्दा रहने का हाल डॉक्टर वुड को सुनाया था। उपर्युक्त कथन में यह तर्क हो सकता है, कि उस रोगी ने इस प्रकार के फल खाये होंगे, कि जिनके योग से विष का प्रभाव रक्त पर न पड़ा हो।

यदि कुचले का विष किसी को चढ़ा हुआ हो, तो उसका लक्षण अधिकांश में धनुर्वात की तरह होता है। इसका कार्य पीठ की रीढ़ पर होता है। कुचले के खाने पर उसका विष जल्दी-से-

जल्दी कुछ मिनटों में और देर से एक-दो घण्टे में चढ़ने लगता है। इसके खाने से दाँत खिंच-से जाते हैं, हाथ, पैर और सारा शरीर अकड़ जाता है। धनुर्वात और कुचले के जहर में यह अन्तर होता है कि धनुर्वात में पहले अस्पष्ट लक्षण दीख पड़ते हैं और धीरे-धीरे वे बढ़ते जाते हैं। कुचले के जहर में वे लक्षण पहले से ही दीख पड़ने लगते हैं और शीघ्र ही बढ़ते जाते हैं। धनुर्वात में पहले जबड़े और दाँत खिंच-से जाते हैं और शरीर के भिन्न-भिन्न स्नायु अकड़ जाते हैं। कुचले के जहर में पहले नाड़ी परतन्त्र हो जाती (खिंच जाती) है और इसके पश्चात् दाँत वगैरह की क्रिया होती है। धनुर्वात में बाह्यायाम धीरे-धीरे पीछे की तरफ से होता है और कुचले के जहर में वह पहले से ही होने लगता है। धनुर्वात में शरीर खिंचकर सिकुड़-सा जाता है ; परन्तु तब भी शरीर अकड़ा हुआ ही रहता है। और कुचले का जहर शरीर को ठहर-ठहरकर खींचता है तथा जिस समय शरीर खिंचता न हो, उस समय रोगी की दशा अच्छी मालूम होती है। धनुर्वात का रोगी एक-दो अथवा तीन से भी ज्यादा दिन तक जिन्दा रह सकता है ; परन्तु कुचले के जहर से रोगी दो-चार घण्टों में ही समाप्त हो जाता है। साधारणत: कुचले खाने के बाद पाँच मिनट से लेकर आधे घण्टे के अन्दर ही जहर के लक्षण दीख पड़ने लगते हैं। कभी-कभी दस-बीस मिनट के अन्दर ही मृत्यु भी हो जाती है। अधिक-से-अधिक छ: घण्टे तक मनुष्य बच सकता है। डेढ़ माशा कुचले का चूर्ण अथवा आधे गेहूँ भर स्ट्रिकिनिया देने से मनुष्य मर जाता है। कुचले के बीज को छाल-सहित निगल जाने से विष नहीं चढ़ता

और वे उसी हालत में मल-द्वार से बाहर निकल जाते हैं। कारण, कि उनके ऊपर की छाल बड़ी कठोर होती है।

आर्य्य वैद्यक, आंग्ल वैद्यक और होमियोपैथिक इत्यादि पद्धति के अनुसार कुचला एक अमूल्य औषधि है। ज्वर, अजीर्ण, श्वास, खाँसी, वायु, क्षय और शिरोरोग पर भिन्न-भिन्न योजनाओं के अनुसार यह गुणकारी होता है। धातु की दुर्बलता पर तो यह एक अपूर्व औषधि है। कुचले के पत्ते, सोंठ और साँबर के सींग का लेप तैयार करके लेपन करने से संधिवात, और पक्षाघात दूर होते हैं तथा चूहे का ज़हर उतर जाता है। कई हकीम केवल कुचले के पत्तों को पीसकर पक्षाघात पर लेप करते हैं। इससे बर्रे का ज़हर भी उतर जाता है।

कुचले की शुद्धि—(१) बीजों को इस प्रकार घी में तलना चाहिए, कि वे जलने न पायें। इसके बाद उनके ऊपर की छाल और उनके बीच की जीभ को निकाल देना चाहिए। अथवा बीजों को गोमूत्र में उबाल कर उनकी छाल और जीभ निकाल देना चाहिए। इससे कुचला शुद्ध हो जाता है। एक विधि यह भी है—कुचले को सात दिन तक गोमूत्र में गलने दे। प्रतिदिन सुबह-शाम गोमूत्र को बदलना चाहिए। इस प्रकार जब वे नरम हो जायँ, तो उनकी छाल निकाल कर शुद्ध कर लेना चाहिए। यह निकाली हुई कुचले की छाल मुँहासों पर घिस कर लगाने से रामबाण का काम करती है।

(२) शुद्ध किये हुए बिना छाल के कुचलों को सोलह गुने दूध में खौलाये और उसका मावा (खोवा) करे। इसके बाद उसमें से कुचले को निकाल ले और क्योंकि यह मावा ज़हरीला

होता है, इसलिए उसे जमीन के अन्दर गाड़ दे। यदि किसी का अफीम का व्यसन छुड़ाना हो, तो जितनी वह अफीम खाता हो, उससे दुगुना इस मावे को खिलाना चाहिए। धीरे-धीरे इसकी मात्रा कम करते जाना चाहिए। इससे अफीम का व्यसन छूट जाता है।

(३) उपर्युक्त रीति से दूध में खौलाये हुए कुचले की जीभ को निकाल दे और उसके पतले-पतले टुकड़े कर के गाय के घी में सेंक कर उसका चूर्ण कर के रख ले। यह चूर्ण वमन, शूल, शीत और अफरे का नाश करता है। इसकी मात्रा एक रत्ती से लेकर चार रत्ती तक मानी जाती है।

(४) पाव भर कुचलों को गोबर मिले हुए पानी में डाल कर तीन महीने तक गलाये। गोबर को सूखने न देकर रोज आवश्यकतानुसार उसमें पानी डालते रहना चाहिए। ऐसा करते-करते जब वे बिलकुल मुलायम हो जायें, तो उनकी छाल और जीभ को निकाल दे। इन शुद्ध कुचलों के साथ एक तोला सुपारी, पौन तोला काली मिर्च तथा आठ इमली के बीजों को पीसकर गोलियाँ बना ले। इन गोलियों को घी में, शहद में अथवा पानी मे पीसकर बनाना चाहिए। इससे भी अफीम का नशा छुड़ाया जा सकता है।

कुचले का वृक्ष—मदकर, फीका, ग्राहक, तीखा, कड़वा, लघु तथा गरम होता है; और कुष्ठ, रक्तविकार, कण्डु, कफ, वात-रोग, व्रण, अर्श तथा ज्वर का नाश करता है।

कच्चे फल—ग्राहक, फीके, वातकर, लघु और शीतल होते हैं।

पके फल—वृष्य, गुरु तथा पकने के समय मधुर होते हैं; और वायु, प्रमेह, पित्त तथा रक्तविकार का नाश करते हैं।

उपयोग—

बिच्छू के विष पर—कुचले के बीज को कुछ बूँद पानी में घिसना चाहिए। जब अन्दर की सफ़ेदी नज़र आने लगे, तब उसे काटे हुए स्थान पर चिपका देना चाहिए। वह सब विष चूस लेगा।

कुत्ते के विष पर—कुचले के बीजों को घी में सेंके और प्रतिदिन थोड़ी-थोड़ी मात्रा बढ़ाकर सेवन करे। अथवा कुचले के बीज एक रत्ती हमेशा खाये।

शरीर में नहारू के टूट जाने पर—कुचले के बीज को घिस कर लेप करना चाहिए।

नये फोड़े पर—कुचले के बीज और समुद्र फल को घिस कर लगाना चाहिए।

शोफोदर पर—कुचले के वृक्ष की फलियों को चीरकर उनका काढ़ा बनाकर दे।

चूहों को कम करने के लिए—कुचले के बीजों का चूर्ण करके आटे में मिलाये और उस आटे को जिस जगह चूहे अधिक आते हों, वहाँ रख दे। यह आटा अत्यन्त ही विषैला हो जाता है। इससे चूहों का नाश होता है।

अजीर्ण, शूल, मन्दाग्नि और शीतज्वर पर—कुचले के बीज को टूटने न देकर घी में तल ले। इससे वे शुद्ध हो जाते हैं। इसके बाद उनका चूर्ण करके दो रत्ती शहद के साथ देना चाहिए।

नहारू पर—कुचले के बीज अथवा सोमल और कुचले के बीज को पानी में घिस कर तीन दिन तक लेप करना चाहिए।

शीतज्वर, आम, शूल और संग्रहणी पर—तीन भाग

शुद्ध कुचले और एक भाग लौंग को अदरक के रस में खरल कर के चने के बराबर गोलियाँ बना ले और उनको शहद के साथ दे।

शूल पर—कुचले के बीज का पाताल-यन्त्र से तैल निकाल कर उसे पान पर लेप करके खाना चाहिए।

इन्द्रजव

इन्द्रजव का वृक्ष एक जंगली वृक्ष है। यह सात-आठ हाथ से ज्यादा ऊँचा नहीं होता। इसके पत्ते बादाम के पत्तों की तरह लम्बे होते हैं। कोंकण में इन पत्तों से बहुत काम लिया जाता है। इसके फूलों का शाक बनाया जाता है। इसमें फलियाँ लगती हैं, जो पतली और लम्बी होती हैं। इन फलियों का भी शाक और अचार बनाया जाता है। फलियों से जव की आकृति के लम्बे बीज निकलते हैं। उनको ही इन्द्रजव कहते हैं। इनके वृक्ष को संस्कृत में कुटज, हिन्दी में कूड़ा, कुरैया, इन्द्रजव, गुजराती में इन्द्रजव, मराठी में इन्द्रजव, कुड़ा, कनाड़ी में कोटशिगे, कोडमुरक, तैलिङ्गी मे कोडि-शचेट्टु, कुटजमु, अंकेलु, चंगलकुष्ट, तामील में वेप्पाले, मलयलम् में वेनपाला, अरबी में तिराज, लैटिन में राइटियाएन्टिडिसन्टेरिका और अंग्रेजी में ओवल् लीव्ड रोजबे कहते हैं। बीजों को हिन्दी मे इन्द्रजव, गुजराती में इन्द्रजव, मराठी में इन्द्रजव, कुडाचेबी, कनाडी में कोड सिगेयबीज, कोड मुरकनबीज, तैलिङ्गी में कुडिसे-पालु, फारसी में जवानकुञ्चिश्क, अरबी में लेसानुल अकासीर और लैटिन में होलरहेनाऐंटिडिसेंटेरिका कहते हैं। ये बीज कड़वे और सिरदर्द तथा साधारण प्रकृतिवाले मनुष्यों के लिए

अहितकर होते हैं। इसका उतार धनिया और प्रतिनिधि जायफल होता है। इसके फूल भी कड़वे होते है। इनका एक पाक भी बनाया जाता है। इन्द्रजव के वृक्ष की दो जातियाँ होती हैं— काली और सफेद। काले इन्द्रजव के वृक्ष सफेद की बजाय बड़े होते हैं। इसके पत्ते सफेद इन्द्रजव की तरह ही और जरा काले रंग के होते हैं। इसकी फलियाँ सफेद की फलियों की बजाय दुगुनी लम्बी होती हैं। काला इन्द्रजव सफेद की बजाय अधिक उष्ण और गुण में कम होता है।

सफेद इन्द्रजव का वृक्ष—कड़वा, तीखा, उष्ण, अग्नि-दीपक, पाचक, फीका, रुक्ष तथा ग्राहक होता है; और रक्तदोष, कुष्ठ, अतिसार, पित्तार्श, कफ, तृषा, कृमि, ज्वर, आम तथा दाह का नाश करता है।

काला इन्द्रजव का वृक्ष—अर्शरोग, त्वग्दोष और पित्त का नाश करता है। बाकी गुण सफेद इन्द्रजव की तरह ही इसमें भी हैं।

उपयोग—

कृमि पर—इन्द्रजव के मूल को पानी मे घिसकर अथवा उसमें बायबिडङ्ग का चूर्ण डालकर पिलाये।

अतिसार पर—इन्द्रजव की छाल का रस निकाल कर पिलाये। अथवा छाल का पुटपाक क्रिया से रस निकाल कर शहद के साथ पिलाये।

पथरी पर—इन्द्रजव और नौसादर का चूर्ण दूध अथवा चावल के धोये हुए पानी में डालकर पीना चाहिए।

फुन्सियों पर—इन्द्रजव की छाल और सेंधे नमक को गो-मूत्र में पीसकर लेप करना चाहिए।

पाण्डुरोग और सब विषों पर—काले इन्द्रजव के अंकुरों का रस निकाले और चार-चार पैसे भर तीन दिन तक रोज दे।

नल फूलने पर—इन्द्रजव को सेंक कर एक पैसे भर उसका चूर्ण, एक पैसे भर शहद और एक पैसे भर घी को एकत्र कर सात दिन तक पिलाना चाहिए।

जीर्णज्वर पर—इन्द्रजव के वृक्ष की छाल और गिलोय का काढ़ा पिलाये अथवा रात को छाल को पानी में गला दे और सुबह उस पानी को छान कर पिलाये।

कान से पीब बहने पर—इन्द्रजव के वृक्ष की छाल का चूर्ण कपड़छन करके कान में डालना और इसके पश्चात् मखमली (संस्कृत-विरजनी) के पत्तों का रस चुआना चाहिए।

मूत्रकृच्छ्र पर—इन्द्रजव की छाल गाय के दूध में पीसकर पिलाना चाहिए। इससे कठिन मूत्रकृच्छ्र का भी नाश हो जाता है।

परिणामशूल पर—इन्द्रजव का चूर्ण गरम पानी के साथ देना चाहिए।

बालकों के दस्त पर—छाछ से निकले हुए पानी में इन्द्र-जव के मूल को घिसे और उसमें थोड़ी हींग डालकर पिलाये।

बालकों के कॉलरा पर—इन्द्रजव के मूल और एरण्ड के मूल को छाछ के पानी में घिसकर और उसमें थोड़ी हींग डालकर पिलाना चाहिए।

वातशूल पर—इन्द्रजव का काढ़ा करे और उसमें संचल तथा सेंकी हुई हींग डालकर पिलाये।

सब तरह के अतिसार, संग्रहणी, पांडु और जीर्णज्वर पर—इन्द्रजव के मूल को पीसकर उसका रस निकाले। रस को

पाण्डुरोग और सब विषों पर—काले इन्द्रजव के अंकुरों का रस निकाले और चार-चार पैसे भर तीन दिन तक रोज दे।

नल फूलने पर—इन्द्रजव को सेंक कर एक पैसे भर उसका चूर्ण, एक पैसे भर शहद और एक पैसे भर घी को एकत्र कर सात दिन तक पिलाना चाहिए।

जीर्णज्वर पर—इन्द्रजव के वृक्ष की छाल और गिलोय का काढ़ा पिलाये अथवा रात को छाल को पानी में गला दे और सुबह उस पानी को छान कर पिलाये।

कान से पीब बहने पर—इन्द्रजव के वृक्ष की छाल का चूर्ण कपड़छन करके कान में डालना और इसके पश्चात् मखमली (संस्कृत-विरजनी) के पत्तों का रस चुआना चाहिए।

मूत्रकृच्छ्र पर—इन्द्रजव की छाल गाय के दूध में पीसकर पिलाना चाहिए। इससे कठिन मूत्रकृच्छ्र का भी नाश हो जाता है।

परिणामशूल पर—इन्द्रजव का चूर्ण गरम पानी के साथ देना चाहिए।

बालकों के दस्त पर—छाछ से निकले हुए पानी में इन्द्र-जव के मूल को घिसे और उसमें थोड़ी हींग डालकर पिलाये।

बालकों के कॉलरा पर—इन्द्रजव के मूल और एरण्ड के मूल को छाछ के पानी मे घिसकर और उसमें थोड़ी हींग डालकर पिलाना चाहिए।

वातशूल पर—इन्द्रजव का काढ़ा करे और उसमें संचल तथा सेंकी हुई हींग डालकर पिलाये।

सब तरह के अतिसार, संग्रहणी, पांडु और जीर्णज्वर पर—इन्द्रजव के मूल को पीसकर उसका रस निकाले। रस को

आग पर पकाये। जब वह कुछ खौलने लगे, तो उसमें सोंठ, काली मिर्च, पीपर, जायफल, जावित्री, माजूफल, लौंग, बाय-विडङ्ग, मरोड़फली, छोटे बेल (बिल्व), बहेड़े की गरी और नागकेशर के चूर्ण का आवश्यकतानुसार मिश्रण करके चने के बराबर गोलियाँ बना ले। अतिसार और संग्रहणी पर इन गोलियों को छाछ के पानी में थोड़ा हींग का चूर्ण डालकर खटमिट्ठे दही के साथ अथवा घी डाले हुए सोंठ के काढ़े के साथ दे। छोटे बालकों के लिए भी ये गोलियाँ लाभदायक हैं। पाण्डुरोग पर इन गोलियों को केवल गोमूत्र में घिस कर पिलाना चाहिये।

वातज्वर पर—एक तोला इन्द्रजव के मूल की छाल को लेकर महीन पीसना चाहिए और उसे पाँच तोला पानी मे डालकर तथा कपड़े से छानकर पिलाना चाहिये।

शोफोदर पर—इन्द्रजव के मूल को गरम पानी में घिसकर चौदह अथवा इक्कीस दिन तक प्रतिदिन दो बार पिलाना चाहिए।

सब तरह के अतिसार पर—इन्द्रजव के वृक्ष की छाल के काढ़े को अष्टमांश करके उसमें अतीस का चूर्ण डालकर पिलाये। अथवा इन्द्रजव के मूल की छाल और अतीस का चूर्ण शहद के साथ दे।

पथरी पर—इन्द्रजव की छाल को दही में पीसकर पिलाना चाहिए।

कुटजाष्टकावलेह—इन्द्रजव के मूलों की हरी छाल पाँच सेर लेकर उसका सोलह सेर पानी में काढ़ा करे। जब आठवाँ भाग बच रहे तो उसे वस्त्र से छानकर पुनः उबाले। जब वह गाढ़ा हो जाय, तो उसमें अतीस, लज्जावती (या छुई-मुई), छोटा बेल (बिल्व), नागरमोथा, धाय के फूल और मोचरस का

चार-चार तोला चूर्ण डालकर अवलेह बनाये और इसके पश्चात् पानी, गाय का दूध, बकरी का दूध अथवा चावल की लपसी के अनुपान से सेवन कराने से संग्रहणी, अतिसार, रक्तप्रदर, रक्तपित्त और मूलव्याधि का रक्त इत्यादि दूर होते हैं।

वातगुल्म, वायु, क्षय, कण्डू और ज्वर पर—इन्द्रजव के मूल की छाल का पुटपाक रीति से रस निकालकर देना चाहिए।

ज्वरातिसार (ऐसा ज्वर जिसमें दस्त बहुत आते हों) पर—एक तोला इन्द्रजव का आधा सेर पानी में अष्टमांश काढ़ा बनाकर उसमें शहद डालकर पिलाना चाहिए। इससे सब प्रकार का ज्वर दूर होता है।

वायु के शूल (पेट के दर्द) पर—तीन माशा इन्द्रजव को सेंककर उसमें एक माशा संचल मिलाकर दो-दो घण्टे के अन्तर पर देना चाहिए।

कागज़ी नीबू

नीबू, नारङ्गी, चकोतरे, सन्तरे, मोसम्बी, बिजौरा और जङ्गली नीबू इत्यादि नीबू की ही जातियाँ हैं। नीबू के वृक्ष बीज अथवा कलम से उगते हैं। ये दस-बारह फ़ीट तक बढ़ते हैं। नीबू बगीचे में और जङ्गल में भी उत्पन्न होते हैं। सब प्रकार के नीबू के वृक्षों के पत्ते अंडाकार परन्तु जाति-भेद के अनुसार छोटे-बड़े होते हैं; सब तरह के नीबू के वृक्षों के फूल सफेद और सुगन्ध-युक्त होते हैं। कच्चे नीबू का रंग हरा और पके का पीलापन लिये हुए होता है। हम जिस नीबू का वर्णन कर रहे हैं उसको

संस्कृत में निम्बूक, हिन्दी में कागज़ी नीबू, बङ्गला में पातिलेबु, गुजराती में लीबू, मराठी में निंबोणी, कनाड़ी में निंबे, लिंबु-हण्णु, तामील में एलुमिच्चे, तैलिङ्गी में निम पंडु, मलयलम् में चेरन नाटकं, फारसी में लिमुनेतुश, अरबी में लिमुनेहा मीज, लैटिन मे लेमन एसीडम् और अंग्रेजी में लेमन् कहते हैं। इस वृक्ष में तीसरे या चौथे वर्ष फल आने लगता है। नीबू का उपयोग बहुत से कामों में होता है। नीबू के रस में बहुत सी रसायन औषधियाँ तैयार होती हैं। नीबू रुचिकर और पाचक होता है, इसलिये कई लोग इसे दाल-भात तथा शाक में निचोड़ कर खाते हैं। इससे स्वाद बढ़ जाता है।

कागजी नीबू—खट्टा, उष्ण, पाचक, दीपक, लघु, नेत्रों को हितकर, अतिरुचिकर और तीक्ष्ण होता है; तथा कफ, वायु, खाँसी, वमन, कण्ठरोग, पित्त, शूल, त्रिदोष, क्षय, मलस्तम्भ, बद्धगुदोदर, विशूचिका, गुल्म, आमवात और कृमि का नाश करता है। पकने पर यह बहुत ही गुणकारी हो जाता है।

उपयोग—

अजीर्ण पर—भोजन के पहले नीबू, अदरक और सैंधे नमक का सेवन करना चाहिए। इससे अजीर्ण दूर होकर अग्नि प्रदीप्त होती है तथा वायु, कफ, मलबद्धता और आमवात का नाश होता है।

विशूचिका (हैज़ा) से बचने के लिए—दो नीबू के रस का प्रति दिन भोजन अथवा नमक के साथ सेवन करना चाहिए। इससे विशूचिका (कॉलरा) का कोई डर नहीं रहता।

पाचक नीबू—नीबू और नमक को किसी मिट्टी के बर्तन-

में खूब उलट-पुलट कर रख दे। उसका मुँह ढक दे और उनका अच्छी तरह अचार होने दे। इसके पश्चात् उसमें से रोज कुछ नीबू खाये। इससे अजीर्ण विकार आदि दूर होकर अग्नि प्रदीप्त होती है और मुँह का स्वाद बढ़ता है।

आँखों के दुखने पर—लोहे के तवे पर अफीम और दन्ती को नीबू के रस में खरल करे और आँखों के ऊपर लेप करे। अथवा लौह-कीट और दन्ती को एकत्र कर नीबू पर भुरभुरा कर हल्दी से रँगे पीले कपड़े में उसे बाँधे और आँखों पर उसे बार-बार लगाये। इससे सब प्रकार के नेत्ररोग भी दूर होते हैं।

पित्तशमन के लिए—नीबू के रस और नमक का सेवन करना चाहिए।

कै होने पर—नीबू को चीरकर उसमें मिश्री डालकर चूसना चाहिए।

प्यास पर—नीबू के रस में दो चुटकी भर शक्कर डालकर पिलाना चाहिए।

पेटदर्द पर—एक पूरे नीबू के रस में थोड़ी शक्कर डालकर देना चाहिए।

कृमि पर—दिन में दो-तीन बार थोड़ा-थोड़ा नीबू का रस पीना चाहिए। चार दिन में कृमि नष्ट होते हैं।

पित्त गिरने पर—नीबू का शरबत पीना चाहिए।

जोड़ों के दर्द, मेद बढ़कर-श्वास चढ़ने और पित्त गिर-कर खाँसी चलने पर—आधा तोला नीबू के रस में तीन माशा शक्कर डालकर देना चाहिए।

दाँतों से बहुत खून गिरने और पेट में जलन होने पर—नीबू के रस में शक्कर डालकर रोज सुबह-शाम पीना चाहिए।

हिचकी पर—सूखे नीबू को जलाकर उसकी थोड़ी राख को शहद में मिलाकर चाटना चाहिए। वल्टी के लिए भी यह प्रयोग लाभदायक है।

दस्त साफ न होने और दिन-प्रतिदिन भूख कम होते जाने पर—छः माशा नीबू का रस, पाँच तोला पानी और एक तोला शक्कर मिलाकर रोज रात को भोजन के बाद सोते समय पीना चाहिये। यह शरबत पाँच-सात दिन तक पीने से रोज दस्त साफ होते हैं और भूख लगती है।

स्थूलता—मेद—को कम करने के लिए—रोज भोजन के बाद एक तोला नीबू का रस गरम पानी डालकर पीना चाहिए। बयालीस दिन तक पीने से बहुत लाभ होता है। यह प्रयोग वैद्य की सलाह लेकर करना चाहिए।

शरीर में खुजली होने पर—एक तोला गरी के तैल में छः माशा नीबू का रस डालकर शरीर पर मलना चाहिए और गरम पानी से स्नान करना चाहिए।

पेशाब होने के लिए—नीबू के बीजों को थोड़ा कूटकर नाभि में भर दे और ऊपर से मट्ठे की या ठण्डे पानी की धार छोड़े। तुरन्त पेशाब होता है। दस वर्ष के अन्दर की आयु वाले बालकों पर यह प्रयोग अच्छी तरह लागू होता है।

कोह

कोह एक जंगली वृक्ष है। ऐन की तरह ही यह होता है, बल्कि उसी की यह सफेद जाति है। ऐन के पत्तों की तरह ही इसके पत्ते होते हैं। ये पत्ते लगभग पाँच अंगुल चौड़े और एक बालिश्त लम्बे होते हैं। कोह में सफेद फूल आते हैं। इसकी छाल भी ऊपर से सफेद होती है। यह छाल अन्दर लाल होती है। इसको संस्कृत में अर्जुन, हिन्दी में कौहा, कोह, बङ्गला में अर्जुन गाछ, गुजराती में धोलो साजड़, अरजुन साजड़, मराठी में अर्जुन, सफ्फड़ा, पांढरा, आइन, तैलिङ्गी में मद्दीचेट्टु, तामील में मारूडं, मलयलम मे मारूत और लैटिन में स्टरक्युलिया, युरेन्स, टर्मिनेलिया और टोमेन्टोसा कहते हैं। कोह का वृक्ष बहुत ही बड़ा होता है। यह वृक्ष कोंकण में अधिक और साधारणतः सभी जगही उत्पन्न होता है। इसकी लकड़ी इमारती कामों में आती है। औषधियों में इसकी अन्तरछाल का उपयोग होता है।

कोह का वृक्ष—फीका, मधुर, शीतल, कान्तिकारक, बलकर, लघु और व्रणशोधक होता है; और अस्थिभंग, सन्धिभंग, कफ, पित्त, श्रम, तृषा, दाह, प्रमेह, वायु, हृद्रोग, पाण्डुरोग, विषबाधा, क्षतक्षय, मेदवृद्धि, रक्तदोष, श्वास, क्षत और भस्मक का नाश करता है।

उपयोग—

घाव भरने के लिए—कोह की छाल के काढ़े से घाव को धोना चाहिए। इससे वह भर जाता है और उसमें कीड़े वगैरह

नहीं पड़ सकते। अथवा कोह की छाल का चूर्ण घाव में भरे। इससे आग से जला हुआ घाव भी भर जाता है।

अस्थिभंग पर—कोह के चूर्ण को दूध में पिलाना और छाल को कूट कर ऊपर बाँधना चाहिए। अथवा घी का लेप करके उस पर चूर्ण डाले और उसके ऊपर पट्टी बाँध दे।

पित्त के हृद्रोग पर—कोह की छाल का काढ़ा करके उसमें गाय का दूध डाले और खीर की तरह गाढ़ा हो जाने पर उसमें शक्कर डालकर पिलाये। इससे रोग का नाश होकर शक्ति आती है।

क्षय, कास और पित्तरोग पर—कोह की छाल के चूर्ण को अडूसा के रस की इक्कीस भावनाएँ देकर शहद, घी और शक्कर के साथ खाना चाहिए।

हृद्रोग, रक्तपित्त और जीर्णज्वर पर—कोह की छाल के चूर्ण को घी, दूध, शहद अथवा गुड़ के पानी के साथ देना चाहिए। इसके सेवन से उपर्युक्त रोग दूर होते हैं और बहुत दिन तक मनुष्य सुखी रहता है।

हृद्रोग पर—(१) कोह के चूर्ण और गेहूँ के रवे को समभाग लेकर गाय या बकरी के दूध मे उबाले और उबालते समय ही निश्चित गाय का घी डाले और शहद तथा शक्कर के साथ इसे दे।

हृद्रोग पर—(२) कोह की अन्तरछाल के चूर्ण में उससे चौगुना घी और घी से चौगुना कोह के पत्तों का रस डालकर जब तक घी उसमे रहे, तब तक धीमी आग पर उसे पकाये।

इसके पश्चात् उसका सेवन करे। मस्तकशूल पर भी यह घी उपयोगी होता है।

मूत्रावरोध के कारण उदावर्त पर—कोह की अन्तरछाल का काढ़ा करके देना चाहिये।

कृमि पर—कोह के फूल, बायबिडङ्ग, खस, भिलावाँ, राल, चन्दन, धूप सरल, कोष्ठ और पिठानी (दाला) का चूर्ण एकत्र करके उसकी एक बार धूनी लेने से कृमि का नाश होता है।

रक्तातिसार पर—कोह की छाल को दूध में पीस कर पिलाना चाहिए।

वातरोग पर—कोह की छाल के चूर्ण को शहद और मक्खन में मिला कर अथवा कोह की छाल, मजीठ और अडूसा के चूर्ण को शहद में मिलाकर उसका लेप करना चाहिए।

मुहासों पर—कोह की छाल को दूध में पीसकर मुहासों पर लेप करना चाहिए।

भिलावें की सूजन पर—कोह की छाल और पत्तों को पीसकर उसको भिलावाँ लगे हुए स्थान पर लेप करना चाहिए।

हृदय की कमज़ोरी पर—आधा तोला कोह की छाल के चूर्ण में पावभर दूध डालकर उसमें नौ टंक पानी मिलाये और मन्दाग्नि पर पकाये। जब सब पानी जल जाय और केवल दूध ही शेष रह जाय, तब उसमें एक तोला मिश्री डालकर रोज सुबह पिलाये। इससे हृदय की अशक्ति दूर होती है। जीर्णज्वर, रक्त (नाक और मुँह से खून गिरना) और रक्तातिसार (खून के दस्त होना) के लिए भी यह काढ़ा बहुत उपयोगी है।

धाय

धाय के वृक्ष दस-बारह फीट तक बढ़ते हैं। इसके फूल लौंग की तरह और लाल रंग के होते हैं। पत्ते गन्ने की तरह और उससे कुछ हरे होते हैं। फूलों का उपयोग औषधि और रँगने में होता है। धाय के वृक्ष कोंकण में और प्रायः सब जगह होते है। इसको संस्कृत में धातकी, हिन्दी में धाय, धावई, गुजराती में धावड़ी, मराठी मे धायटी, कनाड़ी में फातकी, तैलिङ्गी में धातुकी, लैटिन मे वुडफोर्डिया, फ्लोरीबंडा और अँगरेजी में ग्रीसली आटोमेन्टोजा कहते हैं।

धाय का वृक्ष—तीक्ष्ण, शीतल, फीका, मादक, कड़वा, लघु, और गर्भ-स्थापक होता है तथा रक्त-प्रवाहिका, पित्त, तृषा, विसर्प, व्रण, कृमि, अतिसार और रक्त-दोष का नाश करता है।*

फूल—स्वादु तथा रुक्ष होते हैं और रक्त-पित्त, अतिसार, विष तथ दन्त-रोग का नाश करते हैं।

उपयोग—

फोड़ों पर—धाय के फूल के चूर्ण का जवासा के तेल में खरल करके लेप करना चाहिए। इससे आग से जले हुए घाव, विसर्प, कीटव्रण, लताव्रण और पुराने दुष्ट तथा नाड़ीव्रण दूर होते हैं।

गर्भिणी के अतिसार पर—धाय के फूल, मोचरस और इन्द्रजव को समभाग लेकर चूर्ण करे और दो माशा पानी के साथ उसे दे।

---

* इसको श्रीदत्तराम चौबे ने क्षुप जाति का और म० शालिग्रामजी ने वृक्ष माना है। इसके फूल और छाल की मात्रा दो माशा है।

बालक की दन्तपीड़ा पर—दाँत निकलने के समय धाय के फूल, पीपर, आँवले के रस में शहद डालकर दाँत निकलने के स्थान पर लेप करना चाहिए।

प्रदर पर—धाय के फूलों के काढ़े को तीन दिन तक पिलाना चाहिए अथवा धाय के पत्तों के रस को शक्कर डाल कर शक्ति के अनुसार चार तोले तक पिलाना चाहिए।

वात-पित्त ज्वर-पर—धाय के पत्तों और सोंठ के काढ़े को शक्कर डाल कर दे।

स्त्रियों के रक्त प्रदर पर—धाय के फूलों का कपड़छन किया हुआ एक तोला चूर्ण, एक तोला मिश्री और नौटंक दूध के साथ दिन में दो बार देना चाहिए। अवश्य लाभ होगा। थोड़े-थोड़े दिनों में याली महीने से बहुत पूर्व ही रजोदर्शन होने पर भी यही औषधि देनी चाहिए। थोड़े दिनों में ही रजोदर्शन नियमित रूप से महीने महीने होने लगेगा।

गर्भिणी स्त्रियों के अतिसार पर—एक तोला धाय के फूलों का चूर्ण चावल की धोवन के साथ, शहद और मिश्री मिलाकर देना चाहिए।

अतिसार और रक्तातिसार पर—एक तोला धाय के फूल और छः माशा खस को साधारण कूटकर आधा सेर पानी में अष्टमांश काढ़ा बनाये। फिर उसमें दो माशा शहद और पैसे भर मिश्री मिलाकर सुबह-शाम देने से गर्भिणी स्त्रियों के, छोटे बच्चों के और अशक्त मनुष्यों के दस्त, खासकर खून के दस्त बन्द होते हैं।

अतीस

अतीस के वृक्ष हिमालय के आस-पास के प्रदेशों और पहाड़ों पर होते हैं। इन वृक्षों के मूल अथवा कन्द को खोदकर निकाल लिया जाता है, उसी को अतीस कहते हैं। कन्द का रंग भूरा और स्वाद कुछ कसैला होता है *। इसकी छाल कपड़े रँगने के काम में आती है। इसकी तीन जातियाँ हैं—काली, सफेद और पीली। औषधियों मे सफेद का ही उपयोग होता है। अतीस बहुत ही कड़वा होता है। बालकों के ज्वर पर यह एक उत्तम औषधि है। छोटे बालकों की दवाइयों में इसका उपयोग बहुत होता है। बालकों की घुटी (बालघुटी) में अतीस एक मुख्य औषधि होती है। अतीस को संस्कृत में अतिविषा, हिन्दी में अतीस, गुजराती में अतिविष, वखमो, मराठी मे अतिविष बंगला में आतइच, कर्नाटकी में अतिविषा, अतिवीज, तैलिङ्गी में अतिवासा और लैटिन में एकोनाइटम हिट रोफाइलम कहते हैं।

अतीस का वृक्ष—कुछ उष्ण, तीक्ष्ण, अग्निदीपक, और ग्राही होता तथा त्रिदोष, कफ-पित्त-ज्वर, आमातिसार, कास, विष, यकृत्, वमन, तृषा, कृमि, अर्श, खाँसी, पित्तोदर, अतिसार और सर्व व्याधियो का नाश करता है।

---

* इसकी मात्रा आधा माशा है। कन्द ओज को दृढ करनेवाला, आहार-पाचक, अतिसार और कफ नाशक, वायु का क्षय करनेवाला और जलोदर तथा अर्शं पर उपयोगी होता है। पेट में दर्द होने पर कन्द के एक छोटे-से टुकड़े का रस निगले। यह अद्भुत औषधि है।

उपयोग—

बालकों के बुखार, श्वास, खाँसी और वमन पर—अतीस का चूर्ण शहद में मिलाकर स्थिति के अनुसार बालकों को देना चाहिए।

छोटे बालकों के ज्वर और वमन पर—अतीस और नागरमोथे के चूर्ण को शहद में मिलाकर देना चाहिए।

पित्तातिसार पर—अतीस, कुटकी की छाल और इन्द्र-जव के चूर्ण को शहद में मिलाकर चटाए।

श्वास और खाँसी पर—तीन या चार माशा अतीस के चूर्ण को शहद में मिलाकर रात में तीन-चार बार चाटने से श्वास और खाँसी का नाश होता है।

तृषा पर—अतीस और घुड़बच का काढ़ा देना चाहिए।

बालकों के आमातिसार पर—सोंठ, नागरमोथा और अतीस का काढ़ा देना चाहिए।

बालकों के सब प्रकार के अतिसार पर—अतीस का चूर्ण गुड़ अथवा शहद में मिलाकर देना चाहिए।

सुवा रोग पर—अतीस को शहद के साथ सेवन करे।

संग्रहणी पर—अतीस, सोंठ और गिलोय का काढ़ा करके दे।

पारी से आनेवाले ज्वर पर—अतीस का कपड़छन किया हुआ चूर्ण दस-दस रत्ती दिन में चार बार पानी के साथ देना चाहिए।

बच्चों के सब तरह के अतिसार पर—अतीस, नागर-

मोथा और काकड़ासिंगी का कपड़छन किया हुआ चूर्ण बराबर-बराबर लेकर दिन में तीन बार शहद में मिलाकर देना चाहिए। बच्चों की उम्र के अनुसार यह चूर्ण प्रत्येक बार एक रत्ती से लेकर पाँच रत्ती तक देना चाहिए। बच्चों के ज्वर और खाँसी के लिए भी यह उत्तम प्रयोग है।

अनन्त

अनन्त-वृक्ष बहुत ऊँचा बढ़ता है। इसके वृक्ष अधिकतर कोंकण-प्रान्त मे पाये जाते हैं। इसके पत्ते लम्बे और कुछ मोटे होते हैं। अनन्त का वृक्ष अत्यन्त सुन्दर दीख पड़ता है। इस वृक्ष में श्रावण-मास में फूल आते हैं। वे गुच्छेदार और तगर के फूलों की तरह होते हैं। ये फूल भी अत्यन्त सुहावने होते हैं। इनसे मधुर सुगन्ध आती है। इसके वृक्ष को हिन्दी में अनन्त, पिंडितगर, गुजराती में अनन्त, मराठी में पिंडिगर, कोंकण में अनन्त, तैलिङ्गी में तगरपादिकामु और लैटिन में गार्डेनिया फ्लोरिडेंडा कहते हैं। यह वृक्ष तगर की जाति का ही है। इसकी दो जातियाँ होती हैं—सफेद और काली।

उपयोग—

सर्प के विष पर—अनन्त की जड़ और अरीठों को पानी में घिस कर पिलाना चाहिए।

प्रसूता स्त्रियों के मस्तक-शूल पर—अनन्त की जड़ और भारंगमूल को गरम पानी में घिसकर लेप करने से तुरन्त लाभ होता है।

मस्तक-शूल पर—अनन्त की जड़ को घिसकर लेप करने से मस्तक-शूल तुरन्त शान्त होता है।

नन्दवायु पर (अनन्त वात पर)—जिन स्त्रियों को महीने पूरे होने से पहले ही प्रसूति होती है, उन्हें कभी-कभी नन्दवायु रोग हो जाता है। जिसके कारण उनका मस्तक जड़ हो जाता है, घूमता है, दिया जलाने पर दिखलाई नहीं देता, आँखों के आगे अँधेरा हो जाता है, दाँत चिपक जाते हैं और वह सिर धुनने लगती हैं। ये लक्षण दीखने पर अनन्त के पेड़ का उत्तर दिशा की ओर का मूल निकाल कर ठण्ढे पानी में चन्दन की तरह घिसकर सारे मस्तक पर लेप करे और तालू पर मले; साथ ही मूल का एक टुकड़ा जूड़े में कसकर बाँध दे और शक्ति के अनुसार ठण्ढे पानी में मूल घिसकर पिलाए। पथ्य—कुलथी (कुलित्थ) को उबालकर उसका पानी पीने को दे। लाभ मालूम होने पर घी और भात खिलाए।

अगस्ता

अगस्ता-वृक्ष बड़ा होता है। बगीचों और खनी हुई जगहों में यह उत्पन्न होता है। इसकी दो जातियाँ होती हैं। एक का फूल सफेद होता है और दूसरे का लाल। अगस्ते के पत्ते इमली के पत्तों की तरह होते हैं। इस वृक्ष पर लगभग एक हाथ लम्बी और बोड़ा की मोटी फलियों की तरह फलियाँ लगती हैं। इनका शाक बनाया जाता है। फूल भी शाक और बड़ियाँ बनाने के काम में आते हैं। पत्तों का भी शाक बनाया जाता है।

अगस्ता सात-आठ साल से ज्यादा दिनों नहीं रहता। इसको संस्कृत में अगस्त्य, हिन्दी में अगस्ता, हथिया, बङ्गला में वक, गुजराती में अगस्थियो, मराठी में अगस्ता, अगस्था, कनाड़ी में अगसेयमरनु चोगची, तामील में अक्कं, अगंति, तैलिङ्गी में अविसि, अवीसे, मलयलम् में अगठो और लैटिन में ऑगटि ग्लांडिफलोरा कहते हैं।

अगस्ता का वृक्ष—रुक्ष, शीतल, मधुर, वातल और त्रिदोष-नाशक होता है। वैवर्ण्य, कफ, श्रम, खाँसी, फुन्सियाँ, पिशाच-बाधा, पित्त तथा चौथिया बुखार का नाश करता है।

फूल—किंचित् ठण्डे, फीके, कड़वे, पकने पर तीखे और वातकारक होते हैं। कफ, पित्त, खाँसी, चौथिया बुखार और रत्तौंधी का नाश करते हैं।

फलियाँ—खार, बुद्धिप्रद, रुचिकारक, लघु, पकने पर मधुर, कड़वी और स्मृतिप्रद होती हैं। त्रिदोष, शूल, कफ पाण्डुरोग, विष, शोष और गुल्म का नाश करती हैं। इनका शाक रूच और पित्तकारक होता है।

पत्ते—तीक्ष्ण, कड़वे, जड़, मधुर, किंचित् उष्ण और स्वच्छ होते हैं। कृमि, कफ, कण्डू, विष तथा रक्त-पित्त का नाश करते हैं।

उपयोग—

शीत, मस्तक-शूल और चौथिया ज्वर पर—अगस्ते के पत्तों के रस की बूँदे नाक में डालना चाहिए।

आधाशीशी पर—जिस ओर के कपाल में दर्द होता हो, उसके दूसरी तरफ़ की नाक में अगस्ते के फूलों अथवा पत्तों

के रस को टपकाना चाहिए। इससे कफ निकलकर आधा शीशी का नाश होता है।

चित्त विभ्रम पर—अगस्ते के पत्तों के रस में सोंठ, पीपर और गुड़ को मिलाकर उसका नस्य लेना चाहिए।

कफ-विकार पर—लाल अगस्ते की जड़ अथवा छाल का रस निकाल कर शक्ति के अनुसार एक तोला से दो तोला तक उसका सेवन करे। यह औषधि यदि बालकों को देनी हो, तो केवल पत्ते का पाँच बूँद रस निकाल कर शहद के साथ पिलाए। यदि दवा का असर अधिक हो, तो मिश्री को पानी में घोल कर पिलाए।

शरीर के वात से जकड़ जाने पर—लाल अगस्ते के मूल पर की छाल को प्रतिदिन चार चनों की मात्रा तक पान के साथ खाए।

सूजन पर—लाल अगस्ते और धतूरे की जड़ को साथ-साथ गरम पानी में घिसकर उसका लेप करना चाहिए। इससे तुरन्त ही सब तरह की सूजन का नाश होता है।

अपस्मार पर—अगस्ते के पत्तों के रस में गोमूत्र और काली मिर्च का चूर्ण डालकर पिलाए।

बच्चों के पेट के विकार पर—अगस्ते के पत्तों का रस बच्चे की शक्ति के अनुसार पाव चमचे से लेकर आधे चमचे तक देना चाहिए। इससे दो-चार बार दस्त होकर पेट का विकार दूर होता है।

जुकाम के कारण नाक रुँधने और सिर में दर्द होने पर—अगस्ते के पत्तों का दो बूँद रस नाक में टपकाना चाहिए।

बड़हल

बड़हल का वृक्ष बड़ा होता है। कर्नाटक और गोमान्तक प्रान्तो में यह वृक्ष अधिकतर उत्पन्न होता है। दूसरे स्थानों में भी बड़हल होता है; पर इसका पौधा वहाँ अच्छी तरह नहीं जमता। इसके पत्ते कुटकी के पत्तों की तरह और उनसे कुछ बड़े होते है। इस वृत्त को संस्कृत में लकुच, हिन्दी में वड़हल, बड़हर, बङ्गला में मादर, गुजराती और मराठी में ओंट, कनाड़ी में आंजण, और लैटिन मे अर्टो कारपस लकुच कहते हैं।

इस वृक्ष के फल कार्तिक मास में आने लगते हैं। फलों को पकने पर टुकड़े करके सुखा भी लिया जाता है। इन सूखे हुए फलों का इमली अथवा आम की खटाई की जगह भी उपयोग होता है। पथ्य के लिये बड़हल की छाल उपयोगी होती है। कारण, कि वह पित्तशामक होती है। छाल आम की खटाई से भी अधिक पथ्यकारक होती है। आम की खटाई रक्तशोषक होती है; परन्तु यह छाल रक्त की वृद्धि करनेवाली होती है। बड़हल की लकड़ी इमारती कामों के उपयोग में नहीं आती। पके हुए बड़हलों का रायता और अचार बड़ा स्वादिष्ट और मधुर होता है। पके बड़हल के रस में कालीमिर्च का चूर्ण, जीरा और शक्कर डालकर पीने से वह शीतल, पित्त-शामक, पथ्यकर, रुचिदायक, दीपक और पाचक हो जाता है। प्रसूता स्त्रियो के लिए बड़हल का रस पथ्यकर होता है।

जायफल

जायफल का वृक्ष बड़ा होता है। उद्भिजशास्त्री इसकी ८० जातियाँ मानते हैं। पर भारतवर्ष और मलयद्वीप में इसकी तीस जातियाँ पाई जाती हैं। इसका मूल उत्पत्ति स्थान एशिया खण्ड के पूर्व में मलाका द्वीप और बाँड़ा देश है। परन्तु सुमात्रा, सिंहलद्वीप, जावा, पिनांग और पैसिफिक तथा हिन्द महासागर के द्वीपों में भी जायफल विशेष उत्पन्न होता है। भारतवर्ष के कई धनवान् मनुष्य इस वृक्ष को अपने बगीचों में लगवाते हैं; पर उन पर जायफल अधिक नहीं लगते। बाँढा और मलाका द्वीप सन् १७९६ से २८०२ तक ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधिकार में थे। उस समय रॉक्सबर्ग साहब ने कई एक जायफल के वृत्तों को वहाँ से मँगवाकर हवड़ा के सरकारी बगीचों मे लगवाया था। उन वृक्षों पर वहाँ के जल-वायु का इतना अच्छा प्रभाव पड़ा, कि सन् १८०९ तक उस स्थान पर उनकी संख्या ६६०० हो गई और जायफल और जावित्री भी अच्छी तरह उत्पन्न होने लगे। जायफल के वृक्ष बहुधा दो तरह के होते हैं—नर और मादा। मादा जाति के जायफल के फूल छोटी-छोटी मंजरियों पर आते हैं और पत्ते भाले के आकार के चौड़े और सुन्दर होते हैं। इस जाति के जायफल के पत्ते बड़े होते हैं और उनको अँगरेजी में मिरिस्टिका मेक्रोफिला कहते हैं। इन पत्तों को मसलने से कुछ सुगन्ध आती है। ये पत्ते तीन से लेकर छः इञ्च तक लम्बे और डेढ़ इञ्च तक चौड़े होते हैं। जायफल के पत्ते एकान्तर से लगते हैं। उन पर छोटे-छोटे सफेद रंग के गोलाकार फूल आते हैं। उनमें पुष्प-कोश नहीं होता।

जायफल के वृक्ष को संस्कृत में जातीफल, हिन्दी, बँगला, गुजराती, मराठी और कनाड़ी में जायफल, तैलिङ्गी में जाजीकाया, तामिल में जोड़ी काया, मलयलम में जातीकामारें, फ़ारसी में जोज़ेबुवा, अरबी में जोज़उत्ती, जोज़ अलतीव, लैटिन में मिरिस्टिकास्टिकम, ऑफीसोनेलीस—मोस्केटो और अँगरेजी मे नेटमेग कहते हैं। जायफल का वृक्ष बहुत ही सुहावना होता है। इसके फल पक जाने पर साधारण अमरूद के बराबर हो जाते हैं। इसके बीज को जायफल कहते हैं। फल के पक जाने पर उसकी छाल फट जाती और अन्दर उसके बीज के आस-पास लिपटी हुई पीली—जर्द—छाल दिखाई देने लगती है। उसी लिपटी हुई छाल को जावित्री कहते हैं। जिस प्रकार नारियल को नरेटी ढके रहती है, उसी प्रकार जावित्री भी जायफल के आस-पास लिपटी रहती है। जावित्री को संस्कृत में जायपत्री, हिन्दी में जावित्री, गुजराती में जावंत्री, मराठी, बँगला और कर्नाटकी में जायपत्री, तैलिङ्गी में जाजीपत्री, फारसी में बजवार या जावित्री, अरबी में बिसवासा, लैटिन में मिरिस्टिका फ्रेग्रन्स और अँगरेजी में मेस कहते हैं। जावित्री का तेल भी निकाला जाता है। जो जायफल चिकना और वजनदार हो उसे सब से उत्तम समझना चाहिए। अच्छे जायफल हमारे यहाँ बहुत कम आते हैं। गरमी मे अजीर्ण से दस्त लग जाने पर आधा तोला जायफल का चूर्ण घी या मक्खन के साथ देना चाहिए। जायफल का पौन तोला चूर्ण खाने से मनुष्य बेहोश हो जाता है। कॉलरा के समय जायफल का काढ़ा पीने से तृषा शान्त होती है। बच्चों को माता का दूध छुड़ाते समय अनेक प्रकार के विकार हो जाते हैं, उस

पर भी यह काढ़ा लाभ करता है। जावित्री उत्तेजक होती है। जायफल और जावित्री पान के साथ खाई जाती है। जायफल का तेल भी निकलता है यह किंचित मादक, उष्ण, वीर्य-वृद्धिकर और वात-नाशक होता है। यह घी में रखने से बहुत वर्षों तक ज्यों-का-त्यों रह सकता है।

जायफल—फीका, तीखा, वृष्य, दीपन, गीला होने पर कड़वा, लघु, ग्राही, हृद्य, उष्ण, और स्वर के लिए हितकारी होता है। तथा कंठरोग, कफ, वायु, प्रमेह वातातिसार, मल और दुर्गन्ध का शामक और कालापन, कृमि, खाँसी, कै, श्वास, पीनस, हृद्रोग और शोष का नाश करता है।

जावित्री—तीखी, कड़वी, मुख को स्वच्छ करनेवाली, वर्णकारक, लघु, कान्तिवर्द्धक, रुचिकर और उष्ण होती है। तथा अंग की जड़ता, कफ, रक्त-दोष, श्वास, खाँसी, कै, तृषा, विष, वायु और कृमि का नाश करती है।

उपयोग—

मस्तक दुखने पर—जायफल को घिस कर लेप करना चाहिए।

निद्रा आने पर—जायफल खाना चाहिए। अथवा जायफल को घी में घिस कर आँखों पर चुपड़ना चाहिए।

बालकों को सरदी से दस्त लग जाने पर—गाय के घी में जायफल और सोंठ घिस कर चटाना चाहिए।

जुकाम पर—जायफल को दूध में घिस कर गरम कर के नाक और मस्तक पर लेप करना चाहिए। अथवा गाय के दूध में अफीम मिला कर उसमें जायफल को घिस कर लेप करना चाहिए।

हिचकी और वमन पर—जायफल को चावल की माँड़ में घिस कर पिलाना चाहिए।

कालरा पर—तीन माशा जावित्री को दूध में पीसकर पिये।

मुँहासे पर—जायफल को दूध में घिस कर लेप करे।

पेट बढ़ जाने और दस्त न आने पर—नीबू के रस में जायफल घिस कर पिलाना चाहिए।

अजीर्ण पर—जायफल दूध मे घिस कर देना चाहिए।

अतिसार पर—जायफल, छुहारे और अफीम सम भाग में लेकर नागर वेल के पत्ते के रस मे पीसे और चने के समान गोलियाँ बना कर मट्ठे के साथ खाए।

आमातिसार और अतिसार पर—जावित्री का पाँच माशा चूर्ण गाय के दही में उबाल कर सात दिन तक देना चाहिए।

अतिसार और हैजे पर—जायफल को गरम तवे पर सेंककर समान भाग गुड़ में मिलाकर एक माशा वजन की गोलियाँ बनाये और दस-दस मिनिट के बाद एक-एक गोली दे। जब तक कि फ़ायदा न हो, गोली देना जारी रखना चाहिए।

अतिसार और आँव पर—एक माशा जायफल को घी में घिसकर उसमें दो बूँद शहद और दो चुटकी मिश्री डालकर दिन में तीन बार देना चाहिए। एक सप्ताह में लाभ होता है।

बच्चों के दस्त और आँव पर—दो रत्ती जायफल घी में घिसकर उसमें शहद और शक्कर डालकर देना चाहिए। जायफल ज्यादा नहीं देना चाहिए; कारण कि यह मादक (नशीला) होता है।

सिर-दर्द पर—एक माशा के लगभग जायफल दूध में घिसकर उसमें एक इलायची का चूर्ण मिलाकर सिर पर गाढ़ा लेप करना चाहिए।

महँदी

महँदी का वृक्ष लगभग दस-बारह हाथ तक ऊँचा बढ़ जाता है। इसे संस्कृत में मेंदिका, और यवनेष्टा, हिन्दी में महँदी, गुजराती और बंगला में मेंदी, तैलिङ्गी में गोरंटम्, फारसी में हिना, काबुली में मदरंगी, अरबी मे हिन्ना, अकान या काफलयुन, लैटिन में लाजोनिया अल्वा और अङ्गरेजी में हेना कहते हैं। इसके पत्ते छोटे होते हैं। स्त्रियाँ इन्हें पीसकर हाथों और पैरों में लगाती हैं। महँदी ठण्ढी और गुणकारी होती है। इसके फूलों का इत्र भी बनाया जाता है। उसे हिना कहते हैं। इसके फूलों और फलों के गुच्छों को मराठी मे "इसबंध" कहते हैं। ये बच्चों की नजर बाँधने के काम में आते हैं।

महँदी—वमनकारी होती है; तथा दाह, कोढ़ और कफ का नाश करती है।

महँदी के बीज—शोषक और ग्राही होते हैं तथा ग्रह-दोष, भूत-बाधा और ज्वर का नाश करते हैं।

उपयोग—

धूप में नंगे पैर चलने से उत्पन्न हुई जलन पर—महँदी के ताजे पत्तों को महीन पीसे और उसमें नीबू का रस डालकर पैर के तलवों पर लगाए।

सब प्रकार के उष्ण प्रमेह पर—महँदी के पत्तों को पीसे और छान कर उसका पाव भर रस निकाल कर उसमें दो तोला शक्कर मिलाये, पश्चात् दिन में दो बार पिये। यह औषध लगभग सात दिन तक देनी चाहिए। अथवा महँदी का रस गाय के दूध के साथ पिलाये।

गरमी से उठी हुई गाँठ पर—महँदी के पत्तों को महीन पीसे और उसकी टिकिया-सी बनाकर गाँठ पर लगाये।

सरद-गरम पर—महँदी के पत्तों के चार तोला रस में चार तोला शुद्ध दूध डाल कर पिलाना चाहिए। यदि गरमी का जोर ज्यादा हो, तो शक्कर और जीरे के साथ पिलाना चाहिए।

रक्तातिसार पर—महँदी के बीजों को महीन पीस कर घी में डाल कर रख दे। पश्चात् सुपारी के समान गोली बना कर रोज सुबह शाम खानी चाहिए।

प्रमेह पर—पाव भर महँदी के पत्तों के रस में पाव भर दूध मिला कर पिलाना चाहिए।

पेट में जलन होने पर—एक तोला महँदी के पत्तों का रस, चार तोला गाय का दूध और आधा तोला मिश्री मिलाकर पीने से पेट मे होने वाली सब तरह की जलन दूर होती है।

शरीर में गरमी बेहद बढ़ जाने और उसके कारण हड्डियों, हाथ-पैरों और मस्तक में समान रूप से जलन होने पर—महँदी के पत्तों के दो तोला ताजे रस (यह प्रमाण सोलह वर्ष से ऊपर के और सशक्त मनुष्य के लिए है।) में तीन माशा जीरे का कपड़छन किया हुआ चूर्ण मिलाकर पिलाना

चाहिए। इसे रोज़ सुबह-शाम पिलाने से सब प्रकार की गरमी—पुरानी से पुरानी गर्मी भी—दूर होती है।

गर्मी लगने यानी लगातार पसीने की बूँदें टपकने और दाह (जलन) होकर पेशाब होने पर—चार तोला महँदी के पत्तों का रस, चार तोला दूध और एक तोला मिश्री मिलाकर पीना चाहिए।

छोटे बच्चों के पेशाब में धातु जाने पर—एक तोला महँदी के पत्तों का रस, चार तोला दूध, और आधा तोला मिश्री मिलाकर पिलाना चाहिए।

प्रमेह और तन्तुमेह पर—पाँच तोला महँदी के पत्तों का रस, पावभर दूध और दो तोला मिश्री मिलाकर रोज़ सुबह-शाम लगातार सात दिन तक देना चाहिए।

रक्तातिसार (खून के दस्त) पर—दो तोला महँदी के पत्तों का रस, एक तोला घी, तीन माशा जीरे का चूर्ण और आधा तोला मिश्री मिलाकर पीना चाहिए। इससे खून के दस्त बन्द हो जाते हैं।

स्त्रियों को ऋतु साफ़ न आने पर—पाँच तोला महँदी के पत्तों का रस पावभर दूध के साथ ऋतु के समय से पहले चार दिन तक पिलाना चाहिए। इससे ऋतु साफ़ होकर पेट का दर्द आदि दूर होता है।

कफ पर—दो तोला महँदी का रस, एक तोला हल्दी और आधा तोला गुड़ को मिलाकर चाटने से कफ पतला होकर निकल जाता है।

दाह-युक्त पित्त-ज्वर पर—ढाई तोला महँदी की छाल और एक तोला मिश्री को कलई के बर्तन में डालकर आधा सेर पानी मे मंदाग्नि पर उसका काढ़ा बनाये। अष्टमांश रहने पर छानकर पिलाये। ज्वर दूर होता है और जलन मिटती है। जिस ज्वर में नाक से छाती से और पाखाने की राह से खून गिरता हो, उसमे भी यही काढ़ा देना चाहिए। बहुत लाभ होता है।

पाण्डु रोग पर—दो तोला महँदी के पेड़ की छाल, एक तोला कुटकी, एक तोला काली द्राक्ष और छः माशा हर्रदल डालकर काढ़ा बनाये और रोज सुबह-शाम उस काढ़े को पुनः खौलाकर पिलाये। पाँच दिनों मे पाण्डुरोग में कमी मालूम होने लगती है।

जले हुए पर—महँदी के काढ़े की पट्टी रखना चाहिए।

सिर-दर्द पर—चार तोला महँदी के फूलों को कूट-कर उसमें आधा सेर पानी डालकर कलई के बर्त्तन में काढ़ा बनाये। उस काढ़े में समान भाग दूध और आधा तोला शक्कर डालकर पिलाना चाहिए।

शरीर से गरमी दूर करने और शक्ति के लिए—महँदी के बीजों को कूटकर घी मे भिगो दे। तीन दिन बाद उसमें से डेढ़ माशा बीज लेकर आधा तोला मिश्री के साथ सुबह के समय खाना चाहिए।

पुराने सिर-दर्द पर—महँदी के पत्तों को महीन पीसकर सिर पर लेप करना चाहिए।

वातरक्त और पैर आदि के सब तरह के दाह पर—महँदी के पत्तों को पीसकर लेप करना चाहिए।

शीतला में आँखें ख़राब होने से बचाने के लिए—महँदी के पत्तों का पैर के तलुवों पर रोज़ लेप करना चाहिए।

आध्मान, बदहज़मी, अम्लपित्त आदि विकारों के कारण हाथ-पैर के नाखून काले पड़ने और टेढ़े होकर निकने पर—महँदी के पत्तों को महीन पीसकर नखों पर लेप करना चाहिए।

बाल बढ़ाने के लिए—स्नान के समय महँदी का उबटन बालों में मलने से बाल बढ़ते और अच्छे रहते हैं।

कान और नाक आदि से बहने वाले और बदबू फैलाने वाले ज़ख़्म पर—हिना (महँदी का इत्र) का फाहा रखने से जख्म भर जाता और उसकी दुर्गन्ध दूर होता है। कत्था, शंखजीरा आदि घाव को भरने वाली चीजें हिना में मिलाकर तैयार किये हुए मरहम को लगाने से सब प्रकार के घाव जल्दी भर जाते हैं।

कुष्ठ और गलित कुष्ठ पर—चार तोला महँदी के पंचांग (पत्ते, फूल, फल, छाल और मूल) में आधा सेर पानी डालकर अष्टमांश काढ़ा बनाये और रोज़ एक बार सुबह पिलाये। नमक बिल्कुल छोड़ देना चाहिए और ऊपरी व्रण पर महँदी का ही मरहम लगाना चाहिए। इस प्रकार साल भर तक करने से कुष्ठ दूर होता है।

महँदी का तैल बनाने की विधि—महँदी का तैल ठण्ढक के लिए प्रसिद्ध है। इसे बनाने की विधि आँवले के जैसी ही है। चार सेर महँदी के पत्तों का रस निकालकर आग पर चढ़ाये। जब खौलने लगे, तब उसमें एक सेर शुद्ध तिल का तेल

और चार सेर दूध डालकर मन्दाग्नि पर पकाये। उसमें खस, आवची, नागरमोथा, जटामासी, जायफल इत्यादि औषधियाँ कूटकर पावभर के लगभग डाल देनी चाहिए। बाद में खौलते हुए तैल में कपड़े का एक टुकड़ा डालकर देखना चाहिए। यदि तड़-तड़ न हो, तो तैल को तैयार हुआ समझना चाहिए। तैयार हो जाने पर छानकर रख लेना चाहिए। यह तैल सिर में मलने से दीमाग़ हमेशा शान्त और ठण्ढा रहता है।

अडूसा

अडूसे के वृक्ष ज्यादा बड़े नहीं होते। आठ-दस फ़ीट तक ये बढ़ते हैं। ये वृत्त प्रायः हर जगह उत्पन्न होते हैं। अडूसे के पत्ते लम्बे और अमरूद के पत्ते की तरह होते हैं। अडूसे के वृक्ष दो तरह के होते हैं—काले और सफेद। काले वृत्त का रंग काला और सफेद का रंग सफेद होता है। काले अडूसे के पत्ते कुटकी के पत्ते की तरह और मृदु होते हैं। इन पत्तों पर सफेद अथवा किसी भी तरह के रंग के दाग़ नहीं होते। काले अडूसे के वृक्ष सफेद की बजाय अत्यन्त ही उष्ण और कफ़ नाशक होते हैं। सफेद अडूसे के पत्तों का रंग हरा होता है और उनपर सफेद धब्बे होते हैं। अडूसे के फूल सफेद होते हैं। इसकी लकड़ी कोमल और हलकी होती है इसलिए उसके कोयले का चूर्ण बारूद बनाने के उपयोग में लाया जाता है।*

---

* अडूसा कफजनित असंख्य रोगों का नाशक होता है। इसीसे संस्कृत में इसे सिंहास्य कहा गया है। पूर्वाचार्यों ने इस वृक्ष का वर्णन करते हुए लिखा है कि—

अडूसे को संस्कृत में अटरूष; हिन्दी में अडूसा, वासा, विसोटा, बङ्गला में बाकस, वासक; गुजराती में अरडूसी, मराठी में लडूलसा; कनाड़ी में आड़सोगे; तैलिङ्गी में आडासारं, आडापाकु, तामील में आडाडोडाइ, मलयलम् में अटालोटकं और आघाटोड वासीका कहते हैं।

अडूसे का वृक्ष—शीतवीर्य, हृद्य, लघु, तीक्ष्ण, कटु और स्वर्य होता है। खाँसी, पाण्डुरोग, शैत्यपित्त, विष, ज्वर, कफ, श्वास, प्रमेह, क्षय, तृषा, अरुचि, कुष्ठ और वमन का नाश करता है।

उपयोग—

श्वास, खाँसी, रक्तपित्त और कफ-क्षय पर—अडूसे के फूलों-सहित पत्तों का रस निकालकर कुछ दिन शहद के साथ उसका सेवन करने से श्वास, खाँसी और कफ क्षय दूर होते हैं।

पांडुरोग, कफ, पित्त-ज्वर और रक्त-पित्त पर—अडूसे के फूलों सहित पत्तों का रस निकाले और उसे शहद और शक्कर के साथ दे।

"वासायां विद्यमानामासायां जीवितस्य च।
रक्त पित्ती क्षयी कासी किमर्थं वसीदति ॥"

अर्थात्—जीवन अवशेष और अडूसे के विद्यमान रहते हुए रक्त-पित्त, क्षय और खाँसी के रोगी किसलिये दुःख पा रहे हैं? इसकी मात्रा छः माशा है। राज-निघण्टु में लिखा है, कि 'अडूसे की छाल कड़वी होती है। छाल और पत्ते दीपक, रोचक (रुचि उत्पन्न करनेवाले) और आमनाशक होते हैं। इन गुणों के कारण इनको संग्रहणी और कफ पर भी दिया जाता है। छाल के क्वाथ का पाँच से सात तोला तक सेवन करने से अजीर्ण का नाश होता है।'

रक्त-पित्त पर—हर्रे को अडूसे के रस की सात भावनाएँ दे और उसका सेवन करे अथवा शहद और अडूसा के रस को समभाग लेकर उसका सेवन करे।

श्वास पर—अडूसे के रस में गाय का मक्खन मिलाकर त्रिफले का चूर्ण डालना और फिर उसका सेवन करना चाहिए।

खुजली पर—अडूसे के नरम पत्ते और आँबी हल्दी को गो-मूत्र में पीसे और उसका लेप करे अथवा अडूसा के पत्तों को पानी में उबाले और उस पानी से स्नान करे।

पित्त-जनित प्रदर पर—अडूसे के रस मे शहद मिलाकर उसका सेवन करना चाहिए।

श्वेत प्रदर पर—अडूसे की जड़ के रस को शहद के साथ देना चाहिए।

खाँसी, क्षय, श्वास और रक्त-पित्त पर—अडूसे के पत्तों को उबाले और हाथ से मसल कर उनका रस निकाले। उसमें शक्कर मिलाये और जब तक वह शहद की तरह गाढ़ा न हो जाय, उसका पाक करे। इसके बाद उसमें बहेड़े और हल्दी का चूर्ण मिलाकर लगातार सेवन करे।

गाढ़े कफ़ पर—गरम चाय में अडूसे का रस, शक्कर, शहद और दो चने के बराबर संचल डालकर सेवन करना चाहिए।

श्वास और कास पर—अडूसे के काढ़े में शक्कर और शहद मिलाकर दे अथवा अडूसा के रस में शहद और सेंधा डालकर सेवन कराये।

बिच्छू के विष पर—काले अडूसे की जड़ को ठंढे पानी में घिसकर काटे हुए स्थान पर लेप करना चाहिए।

शीतला से बचने के लिए—अडूसे के रस और मुलहठी का सेवन करना चाहिए।

क्षयादिक पर—अडूसे के पत्तों के काढ़े मे शहद और मिश्री डालकर पिलाये। इससे क्षय, रक्त-पित्त, कास, कफ और पित्त-जन्य ज्वर का नाश होता है।

त्रिदोष पर—अडूसे के पके हुए पत्तों को उबाल कर उनका रस निकाले और उसमें अदरक का रस, थोड़ा तुलसी का रस और शहद डाले। इसके बाद उसमें मुलहठी घिसकर सेवन करे।

रक्त-पित्त पर—अडूसा के पत्तों के रस का सेवन करना चाहिए।

मुखरोग पर—अडूसे के रस में शहद मिलाए और उसमें गौरीसर की जड़ को उबाल कर उसका लेप करे।

रक्त-पित्त, ज्वर, श्वास और कास पर—अडूसे, अंगूर और हर्रे के काढ़े में शहद और शक्कर डाल कर देना चाहिए।

मूत्राघात पर—अडूसे के काढ़े को पिलाना चाहिए।

पुरानी खाँसी और उसके साथ आने वाले जीर्ण-ज्वर पर—एक तोला अडूसे का रस, एक तोला शहद और चार रत्ती छोटी पीपल का चूर्ण मिलाकर चाटना चाहिए। श्वास के लिए भी यह प्रयोग लाभ दायक है।

रक्तपित्त (नाक और मुँह से खून गिरने) पर—एक तोला अडूसे का रस और एक तोला मिश्री मिलाकर देना चाहिए।

प्रदर पर—एक तोला अडूसे का रस और एक तोला

मिश्री मिलाकर रोज तीन वार देना चाहिए। इससे सब प्रकार का प्रदर दूर होता है।

शीतला से वचने और क्षय पर—अडूसे का एक पत्ता और मुलहठी का एक टुकड़ा (लगभग तीन माशा का) पावभर पानी में डाले और उनका अष्टमांश काढ़ा वनाये। क्षय के लिए यह रस बहुत ही उपयोगी है; वल्कि कहा तो यहाँ तक जाता है कि जिस गाँव में अडूसे का पेड़ होता है, वहाँ क्षय के रोगी को मृत्यु से डरने का कोई कारण नहीं। अडूसे के पत्तों का रस मामूली विधि से नहीं निकलता; बल्कि उन्हें सेंकने पर (पुट-पाक से) अच्छी तरह रस निकलता है।

अडूसे का अवलेह वनाने की विधि—एक सेर अडूसे के रस में पावभर शकर डालकर मंदाग्नि पर पकाये। जब रस अच्छा गाढ़ा (तारवाली चाशनी की तरह) हो जाय, तब उसमें आधा सेर शहद और आधा पाव छोटी पीपल डालकर मर्तवान में भरकर रख देना चाहिए। तैयार हो जाने पर इस अवलेह को काम में लाना चाहिए। यह जीर्णज्वर, पुरानी खाँसी और क्षय के लिए बहुत ही उपयोगी है।

कपूर

कपूर के पेड़ जापान, सुमात्रा, फारमोसा, वोर्नीओ आदि देशों में होते हैं। चीन और हिन्दुस्थान में भी ये कहीं-कहीं दीख पड़ते हैं। इन्हे संस्कृत और वंगला में कर्पूर, हिन्दी और गुजराती में कपूर, मराठी और फारसी में कापूर, कर्नाटकी में

कपूर, तैलिङ्गीमें कपूरामु, अरबी में काफूर केशरी, तामील में कैंफोरा आफिसिनेरम और अँग्रेजी में कैंफर कहते हैं। पाँच-दस प्रकार के पेड़ों से कपूर निकलता है। हिन्दुस्थान में केले की जाति का एक पेड़ है, उससे कपूर निकाला जाता है। कपूर, पेड़ के गर्भ से निकलनेवाला गाढ़ा अथवा स्वतः जम जाने वाला नैसर्गिक तैल है। राजनिघंटुकार (नरहरि पंडित) ने कपूर की तीन जातियाँ बतलाई हैं—(१) भीमसेनी कपूर (इसे संस्कृत में पोतास या पांसु, हिन्दी में बरास, कपूर, गुजराती में बरास, लैटिन में ड्रायो बोलानोरस केम्फारा और अँग्रेजी में बोर्नियो कैंफर कहते हैं।) (२) पत्री कपूर, (३) चीनी कपूर (इसे संस्कृत में चीनक या कृत्रिम कहते हैं) यह तीनों जाति का कपूर आजतक बराबर प्रचलित है।

कपूर—कड़वा, तीखा कुछ ठण्ढा, कण्ठदोषनाशक और कृमिनाशक होता है। नेत्रविकार पर लेप करने के लिए, मूत्राघात पर इन्द्रिय में डालने के लिए और ज्वरातिसार में हिंगुल, अफीम आदि पित्तविसर्जन और दाह-शामक पदार्थों के साथ कपूर का मिश्रण लिखा हुआ है। राजनिघंटुकार ने वात रोग, दाँत हिलना, दाँतों की अशक्ति आदि रोगों पर क र के तेल का उपयोग बतलाया है। भीमसेनी कपूर के पेड़ को चीरते समय उससे जो कपूर का पतला रस निकलता है, वह, या दूसरी विधि से बनाया हुआ कपूर का तैल ही उपयोगी होता है। हृदय का कम्प, अपस्मार, शुक्रनाश अथवा नींद में सहसा वीर्यपात होना, आदि विकारों पर कपूर बहुत उपयोगी है; परन्तु वह थोड़े प्रमाण में देना चाहिए। थोड़े प्रमाण में उसकी मात्रा आधी से लेकर एक रत्ती

तक है। मध्यम प्रमाण में एक से पाँच रत्ती तक देने से आह्लाद और शान्ति मिलती है। श्वास, पुराने संधिवात और योनिशूल में दो-तीन रत्ती के प्रमाण मे देना चाहिए; अधिक प्रमाण में देने से हृदय में कम्प होकर थकन उत्पन्न होती है। हकीम लोग कपूर को ठण्डा तथा मस्तक और हृदय को उत्तेजन देने वाला मानते हैं। आर्यवैद्यक में भीमसेनी कपूर को कामोत्तेजक और वीर्यस्तंभक माना गया है; परन्तु यूनानी हकीमों का मत इससे उल्टा है। इसी प्रकार वैद्यक में भीमसेनी कपूर को आँख के लिए बहुत ही हितकारी बतलाया गया है; परन्तु हकीम लोग आँख में डालने का निषेध करते हैं। वैद्यक ग्रन्थ मे अनेक वीर्यस्तंभक और आँखों की औषधियों में भीमसेनी कपूर का उपयोग बतलाया गया है तथा उसके गुण भी अनुभव में आते रहते हैं। ऊपर बतलाये हुए कपूर के अनेक गुणों से डॉक्टर लोग भी सहमत हैं। कपूर की बहुत अधिक मात्रा देने से कभी--कभी मृत्यु होने के उदाहरणों का एक अमेरिकन डाक्टर ने वर्णन किया है। *

---

* मुसलमान ग्रन्थकार कपूर को ठण्डा और भेजे तथा हृदय को जागृत करने वाला मानते हैं। अन्य कई प्रकार के रोगों में वे इसका उपयोग करने की प्रशंसा करते हैं, परन्तु नेत्र-रोग में व्यवहार करने का निषेध करते हैं।

गर्भवती स्त्री कपूर की अधिक मात्रा को हजम कर सकती है। इससे गर्भ का पता लगाया जा सकता है। एक जैन ग्रन्थ में लिखा है कि गर्भ की परीक्षा करने के लिए एक सेर दूध में चार टंक कपूर देना चाहिए। एक सैलानी सत हैजे के रोगी को खाँड के साथ कपूर देने की आज्ञा करते है। कपूर, शरीर के और व्रण के जीवों का नाश करता है, ऐसा अनेक प्रयोगों से सिद्ध हुआ है।

साधारण कपूर—मधुर, कड़वा, शीतल, सुगन्धयुक्त, लघु, नेत्र्य, लेखन, वृष्य, तीखा, प्रीतिकारक, मृदु और मदकर होता है; तथा कफ, दाह, तृषा, रक्तपित्त, कण्ठरोग, नेत्ररोग, विष, पित्त, मुख की विरसता, दुर्गंध, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह और मल की गंध का नाश करता है। ताजा होनेपर यह स्निग्ध, कटु, उष्ण और दाहकर होता है; तथा पुराना होने पर दाह और शोष का नाश करता है। यह स्वच्छ करने से उपयोगी होता है।

भीमसेनी कपूर—मीठा, शीतल, वृष्य, कटु और तीखा होता है; तथा, तृषा, दाह, रक्तपित्त और कफ का नाश करता है।

उपयोग

ज्वरातिसार पर कर्पूर का रस—कपूर, शुद्ध हिंगुल, अफीम, नागरमोथा, इन्द्रजव और जायफल को समभाग लेकर अदरक के रस में, इनकी एक-एक रत्ती के बराबर गोलियाँ बनाकर देना चाहिए। इससे बुखार में दस्त लगना, मामूली दस्त, छहों प्रकार की संग्रहणी और रक्तातिसार के विकार शान्त होते हैं। कपूर को कपड़ों और पुस्तकों में रखने से उनमे दीमक नहीं लगती। कपूर, खुला रखने से उड़ जाता है। इसलिए उसे डिब्बी में भरकर और काली मिर्च के साथ रखना चाहिए। एक अँग्रेज डॉक्टर का मत है कि कपूर सब ज्वरों पर चलता है। कपूर के पानी मे पेड़ के बीज भिगो रखने से बहुत दिनों के बाद बाहर निकालने पर वे जमीन में बोते ही उग जाते हैं।

बिच्छू के विष पर—पान में, इमलीके बीज के बराबर कपूर डालकर खिलाना चाहिए।

कपूर की शान्ति करनेवाले महुआ, कस्तूरी और केशर हैं; प्रतिनिधि सफेद चन्दन और वंशलोचन है।

घाव में कीड़े पड़ने पर—घाव में कपूर भरना चाहिए।

खाज आदि पर कपूर का मरहम—एक तोला कपूर, एक तोला सफेद कत्था और आधा तोला सेंदुर को एकत्र करके काँसे के बर्तन में डाले और उसमें दस तोला घी डालकर उसे हाथ से मलकर १२१ बार पानी से धोये। यह मरहम घाव, गरमी के छाले, शरीर की खुजली और जले हुए तथा सड़े हुए जख्मों के लिए भी बहुत उपयोगी है।

वच्छनाग (सिंगिया) के विष पर—कपूर को पानी में मिलाकर देना चाहिए।

गरमी के चकत्तों पर—कपूर का जलाने के बाद बचा हुआ शेष भाग घी में मिलाकर लगाना चाहिए।

झुनझुनी पर—जिस जगह झुनझुनी आती हो, उस जगह कपूर का तैल मलना चाहिए।

बच्चों के कृमि पर—गुड़ में थोड़ा-सा कपूर डालकर देना चाहिए।

दाँत के कीड़े दूर करने और दाँत-दर्द पर—दाढ़ के नीचे कपूर रखना चाहिए।

आँखों में फूली पड़ने पर—बड़ के दूध में कपूर पीसकर अंजन करना चाहिए। इससे दो महीने की फूली का निश्चय ही नाश हो जाता है।

मूत्राघात पर—कपूर के चूर्ण की कपड़े में बत्ती बनाकर धीरे-धीरे शिश्न-द्वार में डालना और रखना चाहिए।

पलक के बाल खिर जाने पर—कपूर को नीबू के रस में मिलाकर चुपड़ना चाहिए।

दुखते हुए अंग के वेदना-शमन के लिए—कपूर को खरल मे डालकर महीन होने तक घोटे और बाद में चौगुना तैल डालकर पुनः घोटे, इससे सब कपूर पिघल जायगा। यह तैयार हुआ तैल थोड़ी देर मलकर चुपड़ना चाहिए।

नहारू पर—कपूर को घी के साथ खिलाना चाहिए।

बुखार में पसीना लाने के लिए—चार या पाँच रत्ती कपूर पान में डालकर खिलाना चाहिए। आधे घण्टे के अन्दर पसीना आकर ज्वर कम हो जाता है।

सिर-दर्द पर—कपूर को घी में मिलाकर मलना चाहिए।

पेट-दर्द पर—चार-पाँच रत्ती कपूर शकर के साथ खिलाना चाहिए।

स्त्रियों के ऋतु सम्बन्धी सब विकारों पर—केले के साथ कपूर देना चाहिए।

नाड़ी की गति तेज़ करने के लिए—थोड़ी-थोड़ी मात्रा में कपूर रोज़ देने से क्रमशः नाड़ी की गति तेज़ होती जाती है। कभी-कभी नींद आने के लिए अफ़ीम की जगह भी इसका उपयोग किया जाता है।

सर्दी से सिर दुखने पर—कपूर का चूर्ण सुँघनी की तरह सूँघने से सर्दी कम होकर सिर-दर्द दूर होता है।

छाती के रोग में—कपूर की धूनी श्वासोच्छ्वास के साथ देनी चाहिए।

गर्भाशय के दर्द पर—कपूर को घी में मिलाकर अँगुली से नाभि के नीचे जरा मलना चाहिए और तीन-चार रत्ती शकर के साथ खिलाना चाहिए।

भ्रांति (चक्कर आना) पर—चौलाई पकाकर उसके पानी के साथ कपूर देना चाहिए।

दमे पर—दो-तीन रत्ती कपूर मे उसीके बराबर हींग मिलाकर देने से रोगी को आराम मालूम होता है और वह शान्ति से सोता है।

कपूर का तैल—कपूर को उससे चौगुने गरी के या शुद्ध तिल के तैल में पिघलाना चाहिए। यह तैल संधिवात से दुखते हुए जोड़ों, जोड़ों की सूजन, शरीर की गाँठ, जख्म और सब जगह के दर्द पर चुपड़ने से शीघ्र आराम होता है।

अजीर्ण, बदहज़मी या किसी कारण से हृदय की धड़कन बढ़ जाने पर—कपूर और हींग की गोली बनाकर देना चाहिए।

प्रसव के पहले या बाद में शूल उठने पर—तीन रत्ती कपूर दो रत्ती कस्तूरी के साथ देना चाहिए।

हृदय की धड़कन क्रमशः कम होती जाने और बहुत दिनों के ज्वर और प्लेग पर—दो रत्ती कपूर और एक रत्ती कस्तूरी को पान में डालकर देना चाहिए।

शय्याव्रण न होने के लिए—कपूर और कत्था रोज़ सुबह-शाम उस जगह लगाना चाहिए।

आँखों में गरमी मालूम होने या बहुत जागने से आँख दुखने पर—कपूर का चूरा आँख में आँजना चाहिए। कई लोग नींद न आने (जागने) के लिए कपूर को आँख में आँजते हैं।

हारसिंगार

*हारसिंगार के पेड़ बहुत बड़े नहीं होते। इसमें गोल बीज आते हैं। इसके फूल अत्यन्त सुकुमार और बड़े ही सुगन्धित होते हैं। पेड़ को हिलाने से वे नीचे खिर पड़ते हैं। वायु के साथ जब दूर से इन फूलों की सुगन्ध आती है, तब चित्त बहुत ही आनन्दित होता है। इसे संस्कृत गुजराती ओर मराठी में पारिजातक तथा हिन्दी में हारसिंगार कहते हैं। इसके फूलों की डण्डियों को सुखाकर पानी में डालने से बढ़िया पीला रंग तैयार हो जाता है। किसी औषधि भस्म को पीले रंग की करने के लिए इन डण्डियों के रंग का उपयोग किया जाता है। हारसिंगार के पत्तों को चबा कर खाने से भी जीभ पीली हो जाती है।

उपयोग

ढोरों को कोदो का विष चढ़ने पर—हारसिंगार के पत्तों का रस निकाल कर ढोरों को पिला देना चाहिए।

खाज पर—हारसिंगार के पत्ते और नाचनी का आटा एकत्र पीसकर चुपड़ना और दही में सोना गेरू घिस कर पिलाना चाहिए। अथवा हारसिंगार के पत्ते दूध में पीस कर लेप करना चाहिए।

गलगंड पर—हारसिंगार के पत्ते, बाँस के पत्ते और फल्गु के पत्ते एकत्र पीस कर सात दिन तक लेप करना चाहिए।

---

* यह वृक्ष वनों और उपवनों में होता है इसके फूल की डण्डी केसरिया रंग की होती है। इन डण्डियों को पीस कर कपड़े रंगे जाते हैं। इसके फल चपटे और छोटे होते हैं तथा पत्ते एकदम कड़े होते हैं।

उदकमेह पर—हारसिंगार की अन्तर्छाल का अष्टमशां काढ़ा पिलाना चाहिए।

अरुंषिका (सिर के दाद, खुजली आदि रोग) पर—हारसिंगार के बीजों को पीस कर लेप करना चाहिए।

सर्पदंश पर—हारसिंगार के पत्तों का या छाल का रस निकाल कर पिलाना चाहिए।

दाद पर—हारसिंगार के पत्तों का रस चुपड़ाना चाहिए।

पारी से आने वाले ज्वर पर—हारसिंगार के हरे पत्तों को अच्छी तरह पीस कर उसमें गुड़ मिला कर गोली बनाये और ज्वर की पारी से एक पहर पहले पानी के साथ खिलाये। गोली एक पैसे भर यानी एक छोटी सुपारी के बराबर होनी चाहिए।

वायु से अंग दुखने पर—हारसिंगार के पत्तों को अच्छी तरह कूट कर उसमें गरम पानी डाल कर थोड़ा रस निकाले और यह रस एक तोला लेकर उसमें एक तोला अदरक का रस और थोड़ी मिश्री डाल कर सुबह-शाम पीनी चाहिए और जिस जगह जोड़ों में दर्द होता हो, उस जगह हारसिंगार के पत्ते अच्छी तरह गरम करके बाँधने चाहिए।

सुपारी

सुपारी के पेड़ की ऊँचाई तीस-चालीस हाथ होती है। इसकी टहनियाँ ताड़ के जैसी होती हैं। यह वृक्ष सह्याद्रि पर्वत के सब प्रदेशों में होता है; परन्तु मंगलोर, तालेचेरी, कोचीन, हुबली, गोमांतक, श्रीवर्धन और श्रीवसई में इसकी उत्पत्ति अधिक

होती है। श्रीवर्धन से जो सफेद सुपारी आती है, वह बहुत ही उत्कृष्ट होती है। सुपारी का पेड़ चिकना होता है। सुपारी को संस्कृत में पूग, हिन्दी में सुपारी, गुजराती में सोपारी, मराठी में पोफल, कर्नाटकी में अडि के-मारा, तैलिङ्गी में पोकाकाया, क्रमकमु, तुलू में कांगु, तामील और मलाका में कमुकू, पूगम्, फ़ारसी में पोपील, अरबी में फोफिल, लैटिन मे एरिकाकेटेच्यु और अंग्रेजी मे बिटलनट पाम कहते हैं। छीलकर उबालने से सुपारी लाल हो जाती है। बिना उबाले जो सुपारी सुखा ली जाती है, वह सफेद होती है। नरम सुपारी को उबालने से चिकनी सुपारी होती है। सुपारी का व्यवहार हिन्दुस्थान में बहुत ज्यादा होता है। इसे पान में डालकर और अकेले भी खाया जाता है। गुजरात मे सिकी हुई सुपारी (सेकेली सोपारी) खाने का रिवाज है। यह सिकी हुई सुपारी खाने में स्वादिष्ट होती है। सुपारी को तोड़ने से जो रस निकलता है, वह चिकना होता है। वह रस लकड़ियों पर और नावों पर लगाया जाता है। सुपारी को उबालने के बाद जो पानी बचता है, उसे पकाकर उसके पिण्डे बनाकर रखे जाते हैं। उन्हें सुपारी के फूल कहा जाता है। प्रसूता स्त्रियों के लिए मसाले की जो सुपारियाँ बनाई जाती हैं, उनमें सुपारी के फूल का अच्छा उपयोग होता है। सुपारी की एक जाति ऐसी है, जिसकी सुपारी आधी सुपारी की सी मालूम होती है।

साधारण सुपारी—मोहक, तूरी, स्वादिष्ट, रुचिकर, सारक, मधुर, गुरु, किंचित् तीखी, पथ्य और दीपन होती है; तथा मुखवैरस्य, त्रिदोष, उल्टी, क्लेद, मल, कफ, वायु, पित्त और दुर्गन्ध का नाश करती है।

गीली (कच्ची) सुपारी—अभिष्यंदी, गुरु, तूरी, शुद्धि-कारक और सारक होती है, तथा दृष्टि और अग्निमांद्यकारक और मुखमल, रक्तदोष, पित्त, कफ, उदर, और आध्मान का नाश करती है।

सूखी सुपारी—रुचिकर, पाचक, रेचक, वातल तथा स्निग्ध होती है, और त्रिदोष और कण्ठरोग का नाश करती है। बिना पान में डाले ज्यादा खाने से यह पाण्डुरोग और सूजन उत्पन्न करती है।

पकी हुई गीली सुपारी—छेदक और त्रिदोष नाशक होती है।

पकी हुई सूखी सुपारी—वातल, स्निग्ध, और त्रिदोष नाशक होती है।

चिकनी सुपारी—सब दोष दूर करती है।

तैलंगण-आंध्र में उत्पन्न हुई सुपारी—तूरी, पकने के समय मधुर और किंचित् खट्टी होती है; तथा कफ, वायु और मुखजाड्य की नाशक होती है।

कोंकण के चौल प्रान्त की सुपारी—अग्नि दीपक, पाचक, बलकर, रसाढ्य और कफ नाशक होती है।

रोठी (बहुत मजबूत होने वाली) सुपारी—तीखी, तूरी, उष्ण, अग्निदीपक, रुचिकर और पित्तज होती है; तथा मलावष्टंभ का नाश करती है।

वलगुली सुपारी—रुचिकर, पाचक और अग्निदीपक होती है; तथा त्रिदोष, आम, मलावष्टंभ और मेद का नाश करती है।

चंदा पुरी सुपारी—रस के समय मधुर, तीखी, स्वादिष्ट तूरी, रुचिकर, अग्निदीपक, पाचक और कफ-नाशक होती है।

गुहागरी सुपारी—मधुर, तूरी, तीखी, पाचक, द्रावक, लघु, विशद, मलावष्टंभक और आध्मानवायु की नाशक होती है।

नेलवती सुपारी—मधुर, रुचिकर, कण्ठशुद्धिकर, लघु, पाचक, सारक, कांतिकर, रसाल और त्रिदोष नाशक होती है।

सुपारी के पेड़ से निकलने वाला चिकना रस—शीतल, संमोहक, गुरु, पकने के शमय उष्ण, खारा, खट्टा, पित्तज और वायु का नाशक होता है।

उपयोग

आमवात पर—अच्छी रोठी सुपारी लेकर रात को पानी में गला दे और सुबह पीस ले। फिर पुरानी इमली का गाढ़ा कल्क करके उसमें वह पिसी हुई सुपारी मिलाकर निगल जाये। बाद में गरम पानी के कई घूँट पीना चाहिए। इस योग से दस्त साफ होकर आमवात दूर होता है।

आधाशीशी पर—आधी सुपारी-सी दीखने वाली जाति की सुपारी को घिसकर लेप करना चाहिए।

विसर्प और चकत्तों पर—ठण्डे पानी में चिकनी सुपारी का चूर्ण मिलाकर चुपड़ना चाहिए या चिकनी सुपारी को घिसकर लेप करना चाहिए।

कृमि पर—सुपारी का चूर्ण गरम पानी के साथ देना चाहिए।

खुजली पर—सूखी सुपारी की छाल को जलाकर उसके कोयले को तिल के तैल में मिलाकर चुपड़ना चाहिए।

गाल की सूजन तथा फोड़े पर—चिकनी सुपारी, इमली के बीज और गूगल को गरम पानी मे घिसकर दिन में दो-तीन बार लेप करना चाहिए।

बीजोरा

बीजोरा, नीबू की ही एक जाति है। इसके पत्ते लम्बे और मोटे होते हैं। इसके फल बड़े होते हैं। उनके अग्रभाग पर छोटे बिन्दु के जैसी नोक होती है। बीजोरे को संस्कृत में बिजपूर, मातुलुंग, हिन्दी मे बीजोरा, गुजराती में बीजोरूं, मराठी में महालुंग, बंगला में टावालेबु, कर्नाटकी में माघवल, महाफलागिड, तुलू में थापल, मलाका मे मादलानारकं, तैलिङ्गी मे दवाकाया, फारसी में तुरंज, अरबी में उतरंज, लैटिन में साइट्रसरसिडा, साइटस्मेडिका और अंग्रेजी में साइट्रस कहते हैं। यह फल पथ्यकर, रुचिदायक, और पित्तशामक होता है। यह जितना पुराना होता है, उतना ही गुणकारी और सुगन्धित हो जाता है। बीजोरे का रंग ऊपर से पीला और अन्दर से लाल होता है। यह स्वाद मे कुछ कड़वा-सा होता है, परन्तु इसके अन्दर जो सफेद और बड़े बीज होते हैं, उनका गूदा मीठा होता है और उनका पाक बनाया जाता है। उसे खाने से अशक्त लोगों में शक्ति आती है। बीजोरे का मुरब्बा अच्छा बनता है। इसके रस का शरबत बनाया जाता है। इसके मुरब्बे मे इलायची, जावित्री आदि मसाले डालकर लोग कई वर्षों तक रख छोड़ते हैं। बीजोरा कई रोगों के लिए उपयोगी है।

बीजोरे का फल—खट्टा, तीखा, ऊष्ण, कण्ठशुद्धिकर, लघु, प्रिय, दीपन, रुचिकर, स्वादिष्ट और जिव्हा तथा हृदय को शुद्ध करने वाला है; तथा श्वास, कास, वायु, कफ, तृषा, पित्त, हिचकी, अरुचि और रक्तपित्त का नाश करता है।

कच्चा फल—पित्तवात, कफ और रक्तदोष उत्पन्न करता है। मध्यम प्रकार का (आधा कच्चा) फल भी कच्चे फल के समान गुणों वाला है।

पक्का फल—उत्तम वर्णकारक, हृद्य, बलकर और पौष्टिक होता है; तथा शूल, अजीर्ण विबंध, वायु, कफ, दम, अग्निमांद्य, खाँसी, अरुचि और सूजन का नाश करता है।

फल की छाल—कड़वी, दुर्जर, स्निग्ध, उष्ण और गुरु होती है; तथा कृमि, वायु और कफ का नाश करती है।

फल की छाल का रस—स्वादिष्ट, शीतल, गुरु, धातु-वर्द्धक, स्निग्ध, कफकर और वातपित्तनाशक होता है।

फल की छाल के अन्दर का भाग—शूल, पित्त, अरोचक, वात, कमर के रोग और उदर-सम्बन्धी रोगों का नाश नाश करता है। और भेदक होता है।

बीजोरे के अन्दर की केसर—दीपन, मेध्य, लघु, ग्राही और रुचिकर होती है, तथा गुल्म, उदर, श्वास, कास, हिचकी वात मदात्यय, उन्माद शोष, विबंध, अर्श और उल्टी का नाश करती है।

केसर का रस—पार्श्व, बस्तिशूल, कफ, अरुचि, वायु, दम, खाँसी और उल्टी का नाश करता है।

बीजोरे के बीज—कड़वे, पथ्य, दीपन, गर्भप्रद, दुर्जर,

गुरु, उष्ण और बलकर होते हैं; तथा कफ, अर्श, सूजन, वायु और पित्त का नाश करते है।

बीजों के अन्दर का गूदा—गुरु, शीत, स्वादिष्ट, स्निग्ध और बलप्रद होता है; तथा वायु और पित्त का नाश करता है।

बीजोरे के मूल—अर्श, कृमि, विशूचिका, मलबंध और शूल का नाश करते हैं।

मीठा बीजोरा—शीतल, मधुर, गुरु, वृष्य, दुर्जर और स्वादिष्ट होता है; तथा त्रिदोष, पित्त, दाह रक्तदोष, मलबंध, दम, खाँसी, क्षय और हिचकी का नाश करता है।

जङ्गली बीजोरा—तीक्ष्ण, उष्ण, रुचिकर और खट्टा होता है; तथा वायु, आमदोष, कृमि, दम और कफ का नाश करता है।

बन में होनेवाली बीजोरी के गुण—खट्टी, उष्ण, तीखी, रुचिकर और अम्लदोष कर होती है; तथा वात, कृमि और श्वास का नाश करती है।

बीजोरी के फल—दीपन, ग्राहक, शीतल और लघु होते हैं तथा वायु और रक्तपित्त का नाश करते हैं।

उपयोग—

कृमि पर—बीजोरे की सूखी छाल का काढ़ा बनाकर पिलाना चाहिए।

सुख से प्रसव होने के लिए—बीजोरे के मूल और महुए की छाल अथवा मुलहठी का समभाग चूर्ण करके तीन माशा शहद और घी के साथ देना चाहिए। इससे स्त्री को सुख से प्रसव होता है। अथवा बीजोरी के मूल कमर से बाँधना चाहिए।

अपस्मार पर—बीजोरा, नीबू और निर्गुंडी का रस एकत्र करके तीन दिन नाक में नस्य करना चाहिए; इससे अपस्मार (मृगी) रोग दूर होता है।

बच्चों की उल्टी (छोटे बच्चों के बार-बार दूध गिरने) पर—बीजोरे के मूल को थोड़े दूध में घिसकर पिलाना चाहिए और मूल का वही टुकड़ा गले से बाँधना चाहिए।

दाह और पित्तशामक शरबत—बीजोरे के रस में शकर डालकर उसका पाक बनाकर रखे। फिर उसमें ठण्ढा पानी मिलाकर पीना चाहिए।

गर्भस्थान की शुद्धि के लिए—सफेद मोचरस के मूल दूध में घिसकर उसमें बीजोरे के बीज पीसकर कपड़े से छाने और रजोदर्शन होने के दिन से लेकर चार दिन तक पिलाये।

हिचकी पर—बीजोरे का रस शहद और संचल डालकर पिलाना चाहिए। अथवा बीजोरे के रस में सोंठ, आँवले, छोटी पीपल और शहद डालकर चटाना चाहिए।

शूल पर—बीजोरे के फल का या मूल का स्वरस शहद और जवाखार डालकर पिलाना चाहिए। इससे कुक्षिशूल, हृदय-शूल और शरीर के दारुण वायु आदि के रोग दूर होते हैं।

उल्टी पर—बीजोरी के मूल पानी में घिसकर उसमें शहद डालकर पिलाना चाहिए।

उल्टी और जुलाब पर—बीजोरे के मूल, अनार के मूल और केसर पानी में पीसकर पिलाये।

कर्णशूल पर—बीजोरे, आम और अदरक का रस थोड़ा गरम करके कान में डालना चाहिये।

शीघ्र प्रसूति होने के लिए—बीजोरी के मूल और सफेद चिरमिटी (घुँघची) के मूल घी में घिसकर पिलाना चाहिए।

हृद्रोग, शूल और क्षय पर—बीजोरे के रस मे छोटी पीपल का चूर्ण और मक्खन डालकर पिलाना चाहिए।

गर्भधारण के लिए—एरण्ड के और बीजोरे के बीज पीसकर घी के साथ देना चाहिए। अथवा एक पके हुए बीजोरे के सम्पूर्ण बीज ऋतुकाल में खाने के लिए देने चाहिए।

कान बहने पर—बीजोरे के रस में सज्जीखार का चूर्ण डालकर कान में टपकाना चाहिए।

नशे पर—बीजोरे के अन्दर की केसर और अनारदाने खिलाने चाहिए।

अरुचि पर—बीजोरे की केसर शहद के साथ खिलाना चाहिए।

मुख संबंधी कफवात रोग, शोष, जड़ता और अरुचि पर—बीजोरे की केसर, सेंधा नमक और काली मिर्च को एकत्र खरल करके गोली बनाकर मुख में रखना चाहिए।

पथरी पर—बीजोरा और सेंधा नमक एकत्र करके खाना चाहिए।

प्लीहोदर पर—दो तोला बीजोरे के गर्भ मे आधा तोला संचलखार डालकर रोज दो बार देना चाहिए।

बीजोरे का मुरब्बा—बीजोरे को छीलकर उसकी चीरें करे और एक बर्त्तन में पानी भरकर उसका मुँह कपड़े से बाँध-कर उस पर बीजोरे की चीरें रखे। बाद में बर्तन को ढकने से

ढककर आग पर चढ़ा दे। भाफ में उबली हुई उन चीरों को कपड़े में लेकर अच्छी तरह दबाकर अन्दर का पानी निकाल दे और शक्कर की गाढ़ी चाशनी बनाकर उसमें उन चीरों को छोड़ दे। यह मुरब्बा स्वादिष्ट और भ्रम तथा पित्त का शमन करने वाला होता है।

बीजोरे की बर्फी—उपर्युक्त ढंग से बीजोरे की चीरों को उबालकर बहुत देर तक सुखाने के बाद घी में तले। फिर ८ भाग वंशलोचन, ४ भाग इलायची, २ भाग तज, १ भाग छोटी पीपल, जायफल, जावित्री और केसर आदि मसाले समभाग लेकर सबका चूर्ण करे। फिर शक्कर का चाशनीदार पाक बनाकर उसमें सब औषधियाँ डालकर हिलाये। मिल जाने के बाद उतार कर एक चौड़ी थाली में फैला दे और बर्फी बनाकर रख ले। यह बर्फी रोज सुबह-शाम एक-एक या दो-दो तोला खानी चाहिए। इससे भ्रमपित्त-विकार का शमन होता है। यह बड़ी गुणकारी होती है।